ISSN 0970-9312

प्राइमरी शिक्षक

वर्ष 16 अंक 1 जनवरी 1991

प्राइमरी शिक्षक

सम्पादकीय सम्पर्क
प्रधान सपादक, पत्रिका प्रकोष्ठ, राष्ट्रीय शैक्षिक
अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद्
श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016
फोन : 652459
666047/4283

एक प्रति 2.00 रुपये, त्रैमासिक
वार्षिक मूल्य 8.00 रुपये

कृपया अपना चन्दा सहायक व्यावसायिक प्रबन्धक, प्रकाशन विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली - 110016 को भेजे।

प्राइमरी शिक्षक

वर्ष 16 | अंक 1 | जनवरी 1991

इस अंक में

फार्म 4

(नियम 8 देखिए)

प्राइमरी शिक्षक

1.	प्रकाशन स्थान	नई दिल्ली
2.	प्रकाशन अवधि	त्रैमासिक
3.	मुद्रक का नाम	ए. जे. प्रिन्टर्स
	क्या भारत का नागरिक है?	हाँ
	यदि विदेशी है तो मूल देश का पता	लागू नही होता
	पता	5, बहादुर शाह जफर मार्ग नई दिल्ली 110002
4.	प्रकाशक का नाम	डा. के.जे.एस. चतरथ
	क्या भारत का नागरिक है?	हाँ
	यदि विदेशी है तो मूल देश का पता	लागू नहीं होता
	पता	राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली - 110016
5.	मुख्य सम्पादक का नाम	राजेन्द्रपाल सिंह
	क्या भारत का नागरिक है?	हाँ
	यदि विदेशी है तो मूल देश का पता	लागू नहीं होता
	पता	राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली - 110016
6.	उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार-पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हो	राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली - 110016 (मानव संसाधन विकास मंत्रालय की स्वायत्त संस्था)

मैं के.जे.एस चतरथ एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर लिखे गये विवरण सत्य हैं।

ह.

डा के.जे.एस. चतरथ

प्रकाशक

शिक्षण प्रतिमान

❑ डा. अमरनाथ दत्त गिरि

शिक्षा मानव विकास का पर्यायवाची शब्द है जिसे शिक्षण के माध्यम से जानबूझकर अधिक त्वरित किया जाता है । शिक्षा की भांति शिक्षण का उद्देश्य भी बहुमुखी ही है । जैसे–शिक्षण के माध्यम से ज्ञान का विकास, भावनाओ का परिष्कार, व्यवहार में परिवर्तन, दूसरों के साथ रहने तथा सामंजस्य स्थापित करने की क्षमता का विकास, कौशल्यों का विकास, उत्तरदायित्व वहन करने की क्षमता का विकास आदि किया जाता है । शिक्षा के विभिन्न उद्देश्यों को एक ही उपागम से प्राप्त नहीं किया जा सकता । गंतव्य मे विभिन्नता के साथ वहां तक पहुँचने के साधनों में भिन्नता करनी पड़ती है । ज्ञान का विकास जिस पद्धति से किया जाता है, आत्मविश्वास का विकास उसी पद्धति से नहीं किया जा सकता । ठीक उसी प्रकार से बोलने की क्षमता और लिखने की क्षमता पैदा करने के लिए विभिन्न प्रकार के प्रयत्न करने पड़ते हैं । दुर्भाग्य से हमारी कक्षाओं में एक ही शिक्षण पद्धति (व्याख्यान) का प्रयोग करके ऐसा विश्वास किया जाता है कि शिक्षा के सभी उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है, किन्तु ऐसा सत्य नहीं है । हमारी शिक्षा व्यवस्था में चारों तरफ असन्तोष है । लोग यह अनुभव कर रहे हैं कि हमारे शिक्षा के उद्देश्यों वर्तमान शिक्षण पद्धतियों से प्राप्त नहीं हो सकते । शिक्षा के इस असफलता के और भी कारण हो सकते हैं परन्तु प्रमुख कारण यही है कि अध्यापक उद्देश्यों के उपयुक्त शिक्षण पद्धतियों का प्रयोग न करके आम सुविधाजनक रास्ता अपना रहे हैं । यदि हमें शिक्षा के विभिन्न उद्देश्यों को प्राप्त करना है तो विभिन्न उपागमों या प्रतिमानों का अनुसरण करना पड़ेगा । शिक्षण प्रतिमान का स्वरूप तथा परिचय निम्नांकित अनुच्छेदों मे प्रस्तुत किया गया है ।

शिक्षण प्रतिमान

शिक्षण प्रतिमान से तात्पर्य उस योजना से है जिसके अनुसार कक्षा का शैक्षणिक वातावरण निर्मित किया जाता है । 'छात्र–अध्यापक क्रिया की संरचना को शिक्षण प्रतिमान कहते हैं ।' शिक्षण का तात्पर्य उस वातावरण से होता है, जिसका निर्माण छात्रो के विकास के लिए किया जाता है । यह वातावरण सुनिश्चित कार्य–कलापों के द्वारा निर्मित किया जाता है और इन्हीं कार्य–कलापों के विवरण को शिक्षण प्रतिमान कहते हैं । इन्हीं कार्य–कलापों के माध्यम से बच्चों के ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं कौशल्यात्मक गुणों का विकास होता है । उदाहरणार्थ यदि शिक्षक चाहता है कि बच्चो को केवल सूचना मिले तो उन्हे खूब बढ़िया भाषण प्रदान करना होगा जिससे कि छात्रों को अधिक से अधिक सूचना प्राप्त हो सके । दूसरा शिक्षक जो चाहता है कि छात्रों में वाद–विवाद की क्षमता उत्पन्न हो, तर्क–वितर्क एवं खण्डन–मण्डन करें, समस्याओं को सुलझाने की क्षमता का विकास करें तो उसे कक्षा मे समस्या प्रस्तुत करके छात्रों से उसके विभिन्न पहलुओं पर सोचने,

अपना विचार प्रकट करने, दूसरों के विचारों का खण्डन–मण्डन करने का अवसर प्रदान करना होगा । तीसरा शिक्षक जो छात्रों की अन्तर्निहित शक्तियों का विकास करना चाहता है वह कक्षा मे छात्रों को अपनी भावनाओं, कलाओं, रूचियों को अभिव्यक्त करने तथा उनका विकास करने का अवसर प्रदान करेगा । चौथा शिक्षक जो अपने छात्रों में स्वयं काम करने के कौशल का विकास करना चाहता है जैसे उसकी लिखावट सुधारना चाहता है, तो वह बार–बार लिखने, सुधारने से लेखन का कौशल प्रदान करता है ।

उपर्युक्त चारों प्रकार के शिक्षक, शिक्षा के चार विभिन्न उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं और इसी के अनुरूप कक्षा में चार प्रकार के वातावरण का निर्माण करते हैं । चारों कक्षाओं में अलग–अलग क्रियाएं होंगी और चार प्रकार का वातावरण होगा । शिक्षण प्रतिमान इसी वातावरण से संबंधित है । इससे तात्पर्य वातावरण निर्माण करने वाली क्रियाओं का नियोजन है । अध्यापक कक्षा में क्या कार्य करेगा, छात्रों से क्या काम करवाएगा, इन कामों के परिणामस्वरूप छात्रों में किस प्रकार का विकास अथवा व्यवहार परिवर्तन होगा, इन क्रियाओ की सैद्धान्तिक आधारभूत मान्यता क्या है, इसके लिए किन उपकरणों की जरूरत पड़ेगी, इन्हीं सब बातों का स्पष्ट विवरण शिक्षण प्रतिमान के दौरान किया जाता है । जैसा कि उपर्युक्त विवरण में भी संकेत किया गया है कि शिक्षण के अनेक उद्देश्य होते हैं । उन्हीं के अनुरूप शिक्षण प्रतिमान भी अनेक हैं, जैसा उद्देश्य होता है उसी के अनुरूप कक्षा के कार्य का नियोजन होता है । शिक्षण प्रतिमान की अवधारणा इस भ्रामक मान्यता का खण्डन करती है कि सभी प्रकार के शैक्षिक उद्देश्य, सभी प्रकार के छात्रों को तथा सभी प्रकार के अध्यापकों द्वारा एक प्रकार के कार्य नियोजन का उपयोग किया जा सकता है । शिक्षा के उद्देश्य भिन्न होने के साथ–साथ अधिगमकर्ता के व्यक्तित्व में भी भिन्नता होती है । ये भी एक प्रकार के वातावरण से अपनी अधिकतम क्षमता का विकास नहीं कर सकते । उनके विकास के लिए अनेक उपागमों, प्रतिमानों का विकास करना आवश्यक है, ठीक उसी तरह से अध्यापक के व्यक्तित्व तथा क्षमता में अन्तर होता है । कोई अध्यापक विभिन्न पुस्तकों से ज्ञान अर्जित करके छात्रों को अधिक से अधिक सूचना प्रदान कर सकता है, कोई अध्यापक छात्रों में अपने अच्छे प्रजातंत्रीय व्यवहार से उनमें प्रजातांत्रिक गुणों का विकास कर सकता है । कोई अध्यापक अपने सद्गुणों एवं आदर्श चरित्र द्वारा छात्रों के विश्वासों और मूल्यो में विकास और परिवर्तन कर सकता है । अध्यापकों की दृष्टि से भी शिक्षण प्रतिमानों और उपागमों में अन्तर होना चाहिए ।

उपर्युक्त सभी तर्कों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कोई एक आदर्श शिक्षण पद्धति नहीं है जिससे शिक्षण के सभी उद्देश्य प्राप्त किये जा सकें, जिससे सभी प्रकार के छात्र लाभान्वित हो सकें और जिसका अनुसरण सभी अध्यापक कर सकें । विद्यालय में पढ़ाये जाने वाले विभिन्न विषयों को भी एक ही प्रकार से छात्रों तक नहीं पहुँचाया जा सकता । सामाजिक विषयों तथा वैजानिक विषयो को कक्षा योजनाओं में अन्तर करना पड़ेगा । जिस प्रकार विज्ञान को समाजशास्त्र की तरह नहीं पढ़ाया जा सकता, उसी प्रकार समाजशास्त्र को भी विज्ञान की तरह नहीं पढ़ाया जा सकता । इन्हीं विचारों को देखते हुये शिक्षक शास्त्रियों, मनोवैज्ञानिकों, अध्यापको एवं शैक्षिक विचारकों ने समय–समय पर अनेकों उपागमों की चर्चा की है । प्लेटों, अरस्तु, रूसो, डीवी, रोजर्स, ब्रूनर, पियाजे, आसूबेल, स्किनर आदि ने शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न व्यूह रचनाओं की चर्चा की है । इस बिखरे हुये सहित्य को इकठ्ठा करना, उनकों सैद्धान्तिक स्वरूप देना, उनके अनुरूप

पाठ–क्रियाओं का नियोजन करना, उनके शैक्षिक परिणामों को निर्दिष्ट करना तथा उनमें एकरूप वर्णन करने की भाषा प्रदान करने का प्रयास दो शिक्षा–विदों ने किया, जिनके नाम ब्रूस ज्वायस एवं मार्शविल हैं । इन दो शिक्षाविदो ने शिक्षण प्रतिमानों को वास्तविक कक्षाओं में प्रयोग करने के बाद अपनी पुस्तक "शिक्षण प्रतिमान" में प्रस्तुत किया है, जिनके आधार पर शिक्षण–कक्षाओं में नयी जागृति, नयी स्फूर्ति पैदा हुई ।

शिक्षण प्रतिमानों का वर्गीकरण

अनेक शिक्षण प्रतिमानों का पता लगाने के बाद तथा उनके सिद्धान्तों, संरचना, संसाधनों का विवरण तथा शैक्षिक उद्देश्यों का निर्दिष्ट प्रतिपादन किया गया । तत्पश्चात् इन प्रतिमानों को चार भागों में विभाजित किया गया । ये चारों भाग प्रतिमानों के दार्शनिक अवलोकन सैद्धान्तिक भेद को देखते हुये किये गये है, जिनके नाम इस प्रकार हैं–

1. सूचना प्रधान प्रतिमान
2. व्यक्तित्व निर्माण प्रधान प्रतिमान
3. सामाजिक प्रतिक्रिया प्रधान प्रतिमान
4. व्यवहार प्रधान प्रतिमान

1. सूचना प्रधान प्रतिमान – सूचना प्रधान प्रतिमान की श्रेणी में रखे हुये प्रतिमान मस्तिष्क को एक कम्प्यूटर की भांति मानते हैं । इनकी धारणा है कि मानव मस्तिष्क बाह्यय वातावरण से उद्दीपनों को ग्रहण करता है और उन उद्दीपनों का प्रक्रम करके समस्याओं के समाधान के रूप में परिणित कर देता है । मनुष्य के मस्तिष्क मे यह क्षमता होती है कि वह बाह्यय उद्दीपनो को ज्ञान में परिवर्तित कर देता है और यही ज्ञान उसकी बौद्धिक क्षमता कहलाती है । इसी बौद्धिक क्षमता के आधार पर मनुष्य ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र मे उन्नति करता है, सामंजस्य स्थापित करता है, और प्रकृति पर नियंत्रण करता है । यदि बाह्यय उद्दीपन व्यवस्थित ढग से मस्तिष्क रूपी कम्प्यूटर मे पहुँचाया जाय तो मस्तिष्क को उसको प्रक्रम करने में सुविधा होगी तथा अधिक से अधिक मानवीय विकास सम्भव हो सकेगा । इस वर्ग के शिक्षण प्रतिमानो का ध्यान ज्ञानात्मक पहलुओं पर अधिक है किन्तु इनका तात्पर्य यह नहीं है कि मानव विकास के अन्य पहलुओं की उपेक्षा कर दी जाय । इन प्रतिमानो से सर्वांगीण विकास कियाजा सकता है । लेकिन यह बौद्धिक विकास के ही माध्यम से सम्भव है ।

2. व्यक्तित्व निर्माण प्रधान प्रतिमान – दूसरे वर्ग के प्रतिमान शिक्षा द्वारा बालक के व्यक्तित्व का, उसके अन्दर निहित शक्तियों का स्वतन्त्रता के वातावरण में निर्माण करने का प्रयत्न करते हैं । इनका विचार है कि व्यक्ति शैक्षिक वातावरण में उतना ही स्वतन्त्र होगा जितना अपनी शक्तियों एवं रूचियों का प्रयोग कर सकेगा; उतना ही वह अपने व्यक्तित्व को पहचानेगा और विकास कर सकेगा । प्रत्येक व्यक्ति एक अनूठी जैविकीय इकाई है । इसका विकास तभी सम्भव है जब उसका समादर हो तथा उसके विकास का प्रयत्न किया जाये । इन प्रतिमानों के माध्यम से ऐसा प्रयत्न किया जाता है कि व्यक्ति अपना विकास करते हुये दूसरे व्यक्तियों तथा वातावरण के साथ स्वस्थ संबंध स्थापित कर सके ।

3. सामाजिक प्रतिक्रिया शिक्षण प्रतिमान – इस वर्ग के प्रतिमान, यह मानकर शिक्षण का आयोजन करते हैं कि सामाजिक स्थिति में ही व्यक्ति अपनी क्षमताओं को पहचानता है तथा उनका विकास करता है । इसीलिए कक्षा में सामाजिक वातावरण बनाने पर

प्रतिमानों का वर्गीकरण

तालिका 1.1 सूचना प्रक्रम प्रतिमान

प्रतिमान	प्रवर्तक का नाम	उद्देश्य
1. आगमनात्मक चिन्तक प्रतिमान	हिल्डाटाबा	आगमनात्मक मानसिक प्रक्रम का विकास करना ।
2. प्रेक्षा प्रशिक्षण प्रतिमान	रिर्चड सचमैन	शोध करने की क्षमता उत्पन्न करना ।
3. वैज्ञानिक प्रेक्षा प्रतिमान	जोसेफ स्वाब	समस्या समाधान कौशल उत्पन्न करना ।
4. प्रत्यय विकास प्रतिमान	जे. ब्रूनर	आगमनात्मक तर्क शक्ति का विकास करना ।
5. ज्ञानात्मक विकास प्रतिमान	प्याजे एवं साथी	साधारण मानसिक एवं तार्किक क्षमता का विकास करना ।
6. अग्रिम संगठक प्रतिमान	डेविड आसूबेल	सूचना प्रक्रम क्षमता का विकास करना ।
7. स्मृति प्रतिमान	कौरेन एवं लूकस	स्मरण करने की क्षमता का विकास करना ।

तालिका 1.2 व्यक्तित्व केन्द्रित प्रतिमान

प्रतिमान	प्रवर्तक का नाम	उद्देश्य
1. निदेशन मुक्त प्रतिमान	कार्ल रोजस	व्यक्तिगत आत्मबोध विकसित करना ।
2. अभिज्ञा प्रशिक्षण प्रतिमान	फ्रिज पर्लस एवं विलियम शुज	आत्म अभिज्ञा का विकास करना ।
3. सृजन प्रतिमान	विलियम गार्डन	सृजनशीलता का विकास करना ।
4. प्रत्यात्मक उपक्रम प्रतिमान	डेविड हन्ट	व्यक्तिगत जटिलता और नमनीयता का विकास करना ।
5. कक्षा–कक्ष मिलन प्रतिमान	विलियम ग्रेसर	आत्मबोध का विकास करना ।

तालिका 1.3 सामाजिक प्रतिक्रिया प्रतिमान

प्रतिमान	प्रवर्तक का नाम	उद्देश्य
1. सामूहिक अन्वेषण प्रतिमान	हर्बर्ट थेलेन एवं जान डीवी	प्रजातांत्रिक गुणों का विकास करना ।
2. सामाजिक प्रेक्षा प्रतिमान	मसीला एवं काक्स	सामाजिक समस्याओं के निराकरण की क्षमता उत्पन्न करना ।
3. प्रयोगशाला पद्धति प्रतिमान	बीथल एवं मेन	सामूहिक कौशल्यों का विकास करना ।
4. विधि शास्त्रीय प्रतिमान	ओलिवर एवं शेवर	समस्याओं का विधि शास्त्रीय समाधान करने की क्षमता उत्पन्न करना ।
5. भूमिका निष्पादन प्रतिमान	साफ्टेल एवं साफ्टेल	व्यक्तिगत एवं सामाजिक मूल्यों के समझने की क्षमता का विकास करना ।
6. सामाजिक अनुरूपण प्रतिमान	बुकाक एव गेजुको	निर्णय करने के कौशल्य का विकास करना ।

तालिका 1.4 व्यवहार परिवर्तन प्रतिमान

प्रतिमान	प्रवर्तक का नाम	उद्देश्य
1. प्रासंगिक प्रबंध प्रतिमान	बी. एफ. स्किनर	तथ्य, प्रत्यय, कौशल का विकास करना ।
2. आत्म–नियन्त्रण प्रतिमान	बी. एफ. स्किनर	सामाजिक व्यवहार एवं कौशल का विकास करना ।
3. शिथिलन प्रतिमान	रिम एवं उल्प	चिन्ता से मुक्ति पाने की क्षमता का विकास करना ।
4. तनाव मुक्ति प्रतिमान	रिम एवं उल्प	सामाजिक स्थिति में तनाव कम करने की क्षमता का विकास करना ।
5. प्रभाव प्रशिक्षण प्रतिमान	उल्प लजारस	सामाजिक स्थिति मे अभिव्यक्ति की क्षमता का विकास करना ।
6. प्रत्यक्ष प्रशिक्षण प्रतिमान	गायने, स्मिथ एवं स्मिथ	व्यवहार एवं कौशल का विकास करना ।

जोर दिया जाता है । बच्चा कक्षा में अन्य बच्चों तथा अध्यापकों के साथ वाद-विवाद, क्रिया-प्रतिक्रिया, सामाजिक तथा व्यक्तिगत समस्याओं के संदर्भ में अपनी शक्तियों को प्रेषित करता है तथा दूसरे व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है । इस वर्ग के प्रतिमान सामाजिक स्थिति में ही बालक का सम्पूर्ण विकास करने का दावा करते हैं । इसी सामजिक परिस्थिति में बच्चे का मस्तिष्क विकसित होता है, उसका व्यक्तित्व निर्मित होता है एवं उनके व्यवहारों में वांछित दिशा में परिवर्तन होता है । सभी प्रकार का मानवीय विकास इनके अनुसार सामाजिक क्रिया-प्रतिक्रिया फलस्वरूप विकसित होता है ।

4. ***व्यावहारिक परिवर्तन प्रतिमान*** – इस वर्ग के सभी प्रतिमान मनोविज्ञान के व्यवहारवादी सिद्धान्त पर आधारित हैं । इन प्रतिमानों का मुख्य प्रयत्न बच्चों के व्यवहार में परिवर्तन करना होता है । इनके विचार से अधिगम का तात्पर्य व्यक्ति के विचार में परिवर्तन होता हैं और शिक्षण के द्वारा छात्रों के व्यवहार में परिवर्तन करना ही शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है । इन प्रतिमानों का उपयोग शिक्षा के विस्तृत क्षेत्र में हो सकता है । ये सभी प्रतिमान उद्दीपन और पुनर्बलन पर नियंत्रण करने के सिद्धान्त से प्रभावित हैं । इनके विचार से किसी व्यक्ति में उद्दीपन और पुनर्बलन के नियंत्रण से किसी भी दिशा में व्यवहार परिवर्तन किया जा सकता है । किसी भी समाज में बच्चों की आदतें, नैतिकता, मूल्य, मान्यता इन्हीं सिद्धान्तों पर निर्मित होती हैं ।

उपर्युक्त वर्णित प्रतिमानों की चारों श्रेणियां यह नहीं दर्शाती कि वे एक-दूसरे के विरोधी हैं या वे एक दूसरे से बिल्कुल अलग हैं । यद्यपि कि वे शिक्षण के बारे में अलग-अलग विचार रखती हैं । अब तक शिक्षण के क्षेत्र में जो विवाद प्रचलित रहा है उसका निहितार्थ यही था कि एक ही प्रकार के शिक्षण से छात्रों का बहुमुखी विकास किया जा सकता है । इन प्रतिमानों के प्रतिपादकों का विश्वास है कि अनेक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विभिन्न प्रकार के शिक्षण व्यूह की आवश्यकता पड़ती है और इस सन्दर्भ में ऐसी आशा की जाती है कि सक्षम अध्यापक विभिन्न प्रकार के शिक्षण प्रतिमानों का ज्ञान तथा उनके प्रयोग की क्षमता विकसित करना चाहेगा । कई शिक्षा दार्शनिक का विचार है कि एक अध्यापक को एक प्रतिमान की अच्छी जानकारी होनी चाहिए, लेकिन ऐसा समझना गलत है । कोई भी अध्यापक इतनी सीमित क्षमता नहीं रखता कि वह केवल एक ही प्रतिमान पर कुशलता हासिल कर सके । बहुत से अध्यापक छः से आठ तक प्रतिमानों के प्रयोग में सिद्धहस्तता प्राप्त होते हैं । कतिपय प्रतिमान कुछ पाठ्यक्रमो के अधिक उपयुक्त होते हैं और अन्य के लिए उतने उपयुक्त नहीं होते । इस प्रकार पाठ्यक्रम के अनुसार अध्यापकों की भूमिका निर्धारित होती है । उदाहरण के लिए हाई स्कूल की कक्षा में जीव विज्ञान पढ़ाने वाला अध्यापक 'जीव विज्ञान प्रेक्षा प्रतिमान' का प्रयोग आवश्यक रूप से करेगा और प्राथमिक कक्षा में सामाजिक विषय पढ़ाने वाला अध्यापक मूल्य स्पष्टीकरण करने वाले प्रतिमानों का प्रयोग करेगा । प्रारम्भ में यदि एक अध्यापक उपयुक्त प्रतिमानों के मौलिक तत्वों पर अधिकार प्राप्त कर लेगा तो उसके पश्चात् अन्य प्रतिमानों को सीखता जायेगा एवं आवश्यकतानुसार कई प्रतिमानों को मिलाकर नये प्रतिमानों का निर्माण भी कर सकता है । एक विषय पढ़ाते हुये कोई अध्यापक कई प्रतिमानों का प्रयोग कर सकता है । उदाहरण के लिए एक सामाजिक अध्ययन का अध्यापक आगमन चिन्तन प्रतिमान से प्रारम्भ कर सकता है । तत्पश्चात् समूह अन्वेषण प्रतिमान का प्रयोग करता हुआ विधि शास्त्रीय प्रतिमान का समावेश कर सकता है । एक प्रबुद्ध और कुशल

अध्यापक शैक्षिक उद्देश्यों के लिए विभिन्न प्रतिमानों का कुशलता से सामंजस्य कर सकता है तथा आवश्यकतानुसार नये प्रतिमान का विकास करके उसका प्रयोग भी कर सकता है, किन्तु प्रारम्भ में उसे अलग-अलग प्रतिमानों के प्रयोग का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए । बाद में सिद्धहस्तता प्राप्त होने पर अपनी आवश्यकतानुसार प्रतिमानों को तोड़-मरोड़ कर प्रयोग कर सकता है ।

प्रतिमान विवेचन

किसी भी प्रतिमान का वर्णन करने के लिए चार प्रमुख बातों का निरूपण किया जाता है—

1. दिग्विन्यास
2. शिक्षण प्रतिमान
3. उपयोग क्षेत्र
4. शैक्षणिक उद्देश्य

दिग्विन्यास का वर्णन करते हुये प्रतिमान के मुख्य उद्देश्यों को निर्धारित किया जाता है । उसके सैद्धान्तिक मान्यताओं पर प्रकाश डाला जाता है । प्रमुख प्रत्ययों जिन पर प्रतिमान आधारित होता है उसका विवरण प्रस्तुत किया जाता है । दूसरे भाग में भी चार बातों का प्रयोग किया जाता है—

1. संरचना
2. सामाजिक व्यवस्था
3. क्रिया-प्रतिक्रिया सिद्धांत
4. आवश्यक संसाधन

दूसरा भाग किसी प्रतिमान का प्रमुख केन्द्र बिन्दु होता है । यहीं से किसी को पता चलता है कि किस क्रम में शिक्षण-छात्र-क्रिया-अनुक्रिया सम्पादित हुई । तीसरे भाग में यह निरूपित किया जाता है कि कोई प्रतिमान कक्षा में किन-किन विषयों को पढ़ाने में लाया जा सकता है । इस विवरण से यह भी स्पष्ट होता है कि किस आयु वर्ग के छात्रों के लिए कोई शिक्षण प्रतिमान उपयुक्त है तथा पाठ्यक्रमों का निर्माण कैसे किया जा सकता है? यहां यह भी संकेत प्रदान किया जा सकता है कि कोई प्रतिमान दूसरे प्रतिमानों के साथ किन बिन्दुओं पर मिलाया जा सकता है । अध्यापको को इसका प्रयोग करते समय क्या कठिनाइयाँ होंगी ? इनके निराकरण का भी संकेत किया जाता है । अन्त में प्रत्येक प्रतिमान कौन से मुख्य शैक्षणिक उद्देश्य प्राप्त करते हैं तथा कौन से गौण उद्देश्य प्राप्त करते हैं, इसका भी विवरण प्रस्तुत किया जाता है । किसी भी प्रतिमान का वर्णन करने के लिए ये चार प्रत्यय संरचना, सामाजिक व्यवस्था, क्रिया-प्रतिक्रिया सिद्धान्त एवं संसाधन का विवरण ब्रूस एवं मार्शा द्वारा प्रतिपादित किये गये हैं और इनसे कक्षा में प्रतिमान के नियोजन में सहायता मिलती है ।

संरचना

संरचना में किसी भी प्रतिमान का कार्यरूप वर्णन किया जाता है । उदाहरण के लिए अगर कोई अध्यापक किसी प्रतिमान का प्रयोग करना चाहता है तो, उसे क्या कार्य करना होगा, शिक्षण किस कार्य से प्रारम्भ करना होगा, उसके पश्चात् कौन सा कार्य करना होगा । संरचना का वर्णन पदों में किया जाता है । विभिन्न प्रतिमानों के अलग-अलग पद होते हैं । उदाहरण के लिए एक प्रतिमान अग्रिम संगठन से प्रारम्भ होता है जिसे अध्यापक मौखिक या लिखित रूप से प्रस्तुत करता है । यह अग्रिम संगठक प्रतिमान का प्रथम पद है । दूसरे पद पर छात्रों के समक्ष दत्त प्रस्तुत किये जाते हैं । [illegible] अधिगम

सामग्री से सम्बन्धित होता है जिसे पढ़ा जा सकता है, चित्र में देखा जा सकता है या अन्य किसी प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है । तीसरे पद पर छात्र संगठक प्रत्यय का संबंध नये विषय वस्तु से स्थापित किया जा सकता है । एक दूसरे प्रतिमान मे सबसे पहले छात्रों के सामने दत्त ही प्रस्तुत किया जाता है । दूसरे पद पर छात्रों से उन दत्तों का वर्गीकरण कराया जाता है । तीसरे पद पर छात्र द्वारा प्राप्त प्रत्यय का दूसरे व्यक्तियों द्वारा प्राप्त प्रत्ययों से तुलना कराई जाती है । दोनो प्रतिमान एक दूसरे के बिल्कुल प्रतिकूल पद को अपनाते हैं और दोनों का उद्देश्य भिन्न-भिन्न है । एक प्रतिमान छात्रों को अधिक से अधिक सूचना प्रदान करना चाहता हे और दूसरा प्रतिमान छात्रों में आगमनात्मक चिन्तन विकसित करना चाहता है । ❑❑

बी 4/56 बी,
हनुमानघाट,
वाराणसी

प्राथमिक शिक्षा-सार्वजनीकरण की समस्याएं एवं निदान

❑ हरिदास हर्ष

स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय सम्पूर्ण देश में 1,40,121 प्राथमिक विद्यालयों में 1,10,00,964 छात्रों का नामांकन प्राथमिक शिक्षा के अन्तर्गत था। संविधान की 45 वीं धारा के अन्तर्गत दस वर्षो के अन्दर 14 वर्ष तक की आयु के बालकों के लिए प्राथमिक-शिक्षा अनिवार्य करने का प्रावधान रखा गया। प्राथमिक शिक्षा के महत्व को सरकार द्वारा स्वीकारने के तथ्य का इसी से पता चलता है कि विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में प्राथमिक शिक्षा के लिए किये जाने वाले व्यय में निरन्तर वृद्धि की गई। उदाहरणार्थ प्रथम पंचवर्षीय-योजना में 93 करोड़ रूपये, द्वितीय पंचवर्षीय योजना में 99 करोड़, तृतीय पंचवर्षीय योजना में 209 करोड़ रूपये तथा चतुर्य पंचवर्षीय योजना में 322 करोड़ रूपये व्यय का प्रावधान प्राथमिक शिक्षा के विकासार्थ रखा गया। तदुपरांत पंचवर्षीय योजनाओं में राशि और बढ़ाई गई किन्तु वर्तमान में भी देश में प्राथमिक शिक्षा की स्थिति संतोषप्रद नहीं हैं। नई शिक्षा-नीति में भी प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण की अपेक्षा की गई है। देश के विकास में शिक्षा के महत्व को स्वीकारते हुए प्राथमिक शिक्षा रूपी नींव के मजबूती को नकारा नहीं जा सकता।

प्राथमिक शिक्षा स्तर पर ही व्यक्तित्व अभिवृति, आत्म-विश्वास, आदतें, अधिगम, कौशल तथा सम्प्रेषण-कौशल की नींव पड़ती है, फिर भी यह उपेक्षित रही है। अतः समग्र रूप से शिक्षा का स्तर निरन्तर गिरता जा रहा है।

प्राथमिक शिक्षा से संबंधित निम्नांकित समस्याए अभी भी दृष्टिगत होती हैं जिनका निराकरण संबंधित स्तर पर अपेक्षित है-

1. समुदाय के स्तर पर

- समुदाय की सहभागिता उत्साहजन्य नहीं है।
- समुदाय इसे सहज सरकारी प्रयास मानता है।
- प्राथमिक शिक्षा के महत्व से समुदाय परिचित नहीं है।
- शिक्षा और ग्राम विकास से समुदाय परिचित नहीं है।
- नामांकन के लिए अभिभावकों मे कोई रूचि नहीं है।
- अध्यापकों की समस्याओं के निवारण में समुदाय की कोई रूचि नहीं है।
- गांव में दलगत राजनीति तथा शिक्षा पर उसका दुष्प्रभाव।
- विद्यालय के लिये गांव में योग्य भवन की व्यवस्था न करना।

2. अध्यापक के स्तर पर

- अपने व्यवसाय में समर्पित भावना की कमी ।
- समुदाय से सम्पर्क में अरूचि ।
- ग्रामीण क्षेत्र में कार्य करने में अरूचि ।
- नामांकन की बढ़ोतरी के प्रति उदासीन ।
- पारस्पारिक दलगत राजनीति ।
- स्वयं के शैक्षिक स्तर के बढ़ाने में अरूचि ।
- वेतन का समय पर भुगतान न होना ।

3. प्रशासक के स्तर पर

- प्राथमिक शिक्षा को माध्यमिक शिक्षा या उच्च शिक्षा की तुलना में कम महत्व देना ।
- प्राथमिक शिक्षा में कार्यरत अध्यापकों का समस्याओं के निराकरण में सक्रिय न होना ।
- अध्यापकों एवं समुदाय के पारस्परिक विवादों के निराकरण में सक्रिय भूमिका न निभा सकना ।
- बिना ठोस कारण के समय-असमय स्थानान्तरण करने की नीति में बढ़ोतरी ।
- दलबन्दी के कारण की गई शिकायतों पर विशेष ध्यान देकर योग्य शिक्षकों को स्थानान्तरित करना या उन्हें हतोत्साहित करना ।
- उच्च अधिकारियों द्वारा प्राथमिक शिक्षा के स्तर में सुधार लाने का भरसक प्रयत्न नहीं करना ।
- शैक्षणिक उपकरणों की पूर्ति समय पर न करना ।

4. सरकार के स्तर पर

- प्राथमिक शिक्षा में बढ़ते राजनीतिक हस्तक्षेप को न रोक पाना । जिला परिषदों, पंचायत समितियों के अन्तर्गत प्राथमिक शिक्षा को देने के पश्चात् इसके स्तर और व्यवस्था में निरन्तर गिरावट आई है । सरपंचों, पंचो का अनावश्यक हस्तक्षेप ग्राम स्तर पर तो अध्यापकों को परेशान करता ही है किन्तु प्रशासक को प्रभावित कर ये राजनीतिज्ञ अध्यापकों का स्थानान्तरण भी करवा देते हैं, इनका भुगतान रूकवा देते हैं तथा शाला के स्तर को गिराने में नामांकन पर भी दुष्प्रभाव डालते हैं । सरकार का यह कर्तव्य है कि वह उनके हस्तक्षेप को रोके ।

उपर्युक्त समस्याओं के परिप्रेक्ष्य मे निम्न सुझाव विचारणीय है---

- अध्यापक, अभिभावक संबंधो में व्यापकता होनी चाहिए । दोनो को ही एक दूसरे की समस्याओं के निराकरण में हर समय रूचि लेनी चाहिए ।
- विद्यालय-भवन की सुव्यवस्था हेतु ग्राम सहयोग लिया जाना चाहिए तथा इसके लिए समुदाय के व्यक्तियों को अपनी रूचि से आगे आना चाहिए ।
- छात्रों के लिए शैक्षणिक उपकरण व खेल की सामग्री की यथोचित व्यवस्था प्रशासनिक स्तर पर समयानुसार की जानी चाहिए ।
- नामांकन बढ़ाने के लिये अध्यापक तथा अभिभावकों को संयुक्त रूप से ग्राम संपर्क करना चाहिए तथा विद्यालय में आने योग्य छात्रों के नामांकन कराने हेतु अभिभावकों को उत्प्रेरित किया जाना चाहिए ।
- समय-समय पर प्राथमिक विद्यालय के अध्यापकों को इस तथ्य की जानकारी लेनी

चाहिए कि संबंधित क्षेत्र में ऐसे कौन से बालक हैं जो विद्यालय में नहीं आ रहे है तथा विद्यालय में ऐसे छात्रों को लाने के लिये निरन्तर विचार करना चाहिये ।

- जो अभिभावक गरीब हैं तथा जिन्हें निशुल्क शिक्षा या अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा नियम की जानकारी नहीं है उन्हें विशेष जानकारी समय–समय पर दी जानी चाहिए ताकि वे विद्यालय से अपनापन महसूस कर सकें ।
- गरीब बच्चों के लिये पाठ्य–पुस्तकों की व्यवस्था के लिए भी स्थानीय अभिभावक एवं अध्यापक मिलकर क्षेत्रीय सहयोग से बुक–बैंक या किसी प्रकार के वित्तीय प्रबन्ध की व्यवस्था कर सकतें हैं ।

नामांकन के बाद छात्रों के निष्क्रमण की समस्या व्यापक रूप से दिखाई देती है । बहुधा बालक इस आयु में भेड़–बकरी चराने या अपने अभिभावकों के व्यवसाय में सहयोग देने के कारण विद्यालय छोड़ देते हैं । इस संदर्भ में निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं—

- निष्क्रमित छात्रों के अभिभावकों से सम्पर्क कर उन्हें इस बात के लिए सहमत किया जाना चाहिए कि वे अपने बच्चों को विद्यालय नहीं छुड़वायें ।
- जो अभिभावक छात्रो को जानबूझ कर नहीं भेजते, उन्हें ग्राम पंचायत स्तर पर, सामाजिक स्तर पर समझाने के अतिरिक्त समूह ने यह बात भी अभिव्यक्त की कि जब तक निष्क्रमण समस्या को रोका नहीं जायेगा तथा नामांकन को बढ़ाया नहीं जायेगा तब तक प्राथमिक शिक्षा का सार्वजनीकरण नहीं हो सकेगा । इसके लिए यदि आवश्यक हो तो यह प्रावधान किया जाना चाहिए कि—
- जो अभिभावक अपने बच्चो को विद्यालय में नहीं भेजते उन्हें सरकारी ऋण तथा अन्य सुविधाओं से वंचित किया जाना चाहिए ।
- राशन कार्ड बनाते समय भी इस तथ्य की जानकारी ली जानी चाहिए कि वे अपने बच्चों को पाठशाला में भेजतें हैं या नहीं ।
- पंच, सरपंच का चुनाव लड़ते समय भी इस तथ्य का प्रमाणीकरण कराया जाना चाहिए कि संबधित व्यक्ति ने विद्यालय जाने योग्य बालकों का नामांकन शाला मे करा दिया है ।
- भूमि आवंटन तथा ग्रामीण विकास परियोजनाओं से संबंधित लाभ प्रदान करने से पूर्व भी राजस्व विभाग तथा बैंकों को यह प्रमाण–पत्र सबंधित शाला के प्रधानाध्यापक से प्राप्त करना चाहिए कि संबंधित व्यक्ति के विद्यालय में नामांकन योग्य बालक शाला में आते हैं ।

इस प्रकार की आंतरिक पांबंदियों प्राथमिक शिक्षा के महत्व को प्रतिपादित कर सकेगी तथा इससे न केवल नामांकन की समस्या ही हल होगी बल्कि निष्क्रमण की समस्या पर भी अंकुश लगेगा ।

प्राथमिक शिक्षा में राजनीतिक हस्तक्षेप रोकने के लिये भी निम्नांकित कदम उठाये जा सकते है–

- योग्य अध्यापकों को पुरस्कृत किया जाना चाहिए ।
- अध्यापक के महत्व को समुदाय द्वारा स्वीकार किया जाना चाहिए तथा स्वय अध्यापक को भी अपनी गरिमा बनाए रखनी चाहिए ।

– अध्यापकों को अपना समय व्यर्थ की बातों में न खो कर बालकों के निरन्तर शैक्षणिक विकास की ओर तथा स्वयं के ज्ञान की वृद्धि की ओर लगाना चाहिए ।
– प्राथमिक शिक्षा में अध्यापन में महिलाओं को प्राथमिकता दी जाये तथा बालिकाओं के नामांकन के लिए विशेष प्रयास किये जायें ।
– जन–चेतना जागृत कर प्राथमिक शिक्षा के विकास में समुदाय का सहयोग लिया जाना चाहिए ।
– यह विकल्प भी किया जा सकता है कि नियुक्ति के समय 2 वर्ष गांव में कार्य करना अनिवार्य हो ।

यह भी अपेक्षित है कि–

– सरकार की प्राथमिक शिक्षा पर होने वाले व्यय में बढ़ोतरी करनी चाहिए ।
– शिक्षा के स्तर को सुधारने, व्यर्थ के स्थानान्तरण रोकने, अध्यापकों में गुटबन्दी रोकने के लिए सरकार एवं प्रशासन को प्रयास करने चाहिए ।
– प्राथमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम को इस प्रकार का बनाया जाना चाहिये जिससे प्राप्तांकों का बोझ कम हो तथा बालक की शैक्षणिक प्रगति अधिक हो ।
– खेल खेल में सिखाने जैसी प्रवृतियों के सफल संचालन हेतु खेल के साधन, विद्यालय में खेल मैदान की व्यवस्था आदि पक्षों पर भी प्रशासन को ध्यान देना चाहिए ।

यह एक वास्तविकता है कि शिक्षा प्रसार अधिकारी स्तर से भी मात्र निरीक्षण किया जाता है जो उपयुक्त नहीं है । पर्यवेक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए ताकि इस स्तर पर शिक्षा प्रसार अधिकारी का सहयोग एक निरीक्षण–कर्ता ही नहीं बल्कि सहयोगी मार्ग दर्शक के रूप में भी अध्यापकों को मिल सकेगा तथा वे अपने अध्यापन स्तर में सुधार भी कर सकेंगे । प्राथमिक शिक्षा में नियुक्ति के लिये सभी व्यक्तियों को ग्रामीण क्षेत्र में नियमित अवधि तक पुनः नियुक्ति दी जानी चाहिए । ममत्वशील महिलाओं को जो प्राथमिक शिक्षा में अध्यापन करना चाहती हैं, प्रशिक्षण देकर इस कार्य में लगाया जाना चाहिये । पाठ्यक्रम की पुस्तकों की छपाई विषय वस्तु इस प्रकार की हो जिससे बालक की रूचि पढ़ाई में हो सके–

– प्राथमिक विद्यालयों में एक अध्यापक ही नहीं होना चाहिए, कम से कम दो अध्यापकों की नियुक्ति होनी चाहिए ।
– प्राथमिक शिक्षा में ग्रामीण क्षेत्र में कार्यरत अध्यापकों को विशेष भत्ता या लाभ देकर उन्हें प्रोत्साहित किया जाना चाहिये, उनके आवास की व्यवस्था होनी चाहिये ।

यद्यपि सरकार ने वर्तमान में वेतन श्रृंखला में आशातीत बढ़ोतरी की है किन्तु भौतिक पक्ष के साथ–साथ प्राथमिक शिक्षा के अध्यापकों की मानसिकता में भी उत्साह–जन्य परिवर्तन अपेक्षित है जिसके लिए मात्र कुछ घोषणाएं ही पर्याप्त नहीं हैं । अपेक्षा है समाज, समुदाय, राष्ट्र के मन में अध्यापको के प्रति सहानुभूति की एव अध्यापकों द्वारा अपने विषय और व्यवसाय के प्रति गौरवान्वित महसूस करने की । ❑❑

पुरानी आबादी,
नजदीक पुराना डाकघर
श्री गंगा नगर (राज.)

आदिवासी छात्रों का शैक्षिक जीवन

❑ डा. खेमराज शर्मा

स्वतंत्रता के पूर्व हमारे देश में आदिवासी शिक्षा के लिए बहुत कम काम हुआ । हमारी कुल जनसंख्या का एक चौथाई भाग आदिवासियों की जनसंख्या है । शासकीय प्रणाली को सुचारू रूप से चलाने के लिए शिक्षा का उपयोग केवल उच्च और मध्यम वर्ग के लोगों को प्रशिक्षित करने हेतु किया गया था ताकि शासकीय कार्य सुचारू रूप से चल सकें । स्वतंत्रता के पश्चात् शासन ने जनजाति तथा अन्य पिछड़े वर्गों की शिक्षा के लिए कार्य किया ताकि ये लोग राष्ट्र की मुख्य धारा से जुड़ सकें । जनजाति की शिक्षा के अतिरिक्त इनके कल्याण एवं सर्वांगीण विकास के लिए शासन ने अनेक योजनाएं प्रारम्भ की । शिक्षा के क्षेत्र में एक ओर शिक्षा के समान अवसर प्रदान किये गये और दूसरी ओर आर्थिक और सामाजिक उत्थान के लिए उनकी शिक्षा को निशुल्क और अनिवार्य किया गया । गणवेष और छात्रवृत्ति का प्रावधान शासन ने किया । इन सब उपायों के बावजूद आदिवासी शिक्षा में जितना सुधार आना चाहिए था वह नहीं आया । शिक्षा में गुणात्मक सुधार लाने के उद्देश्य से केन्द्र 'तथा राज्य सरकार ने आदिवासी शिक्षा एवं कल्याण के लिए पृथक विभाग खोलें और इसके लिए अलग से वित्त व्यवस्था की गई । आदिवासी छात्र-छात्राओं के लिए आश्रम, स्कूल, छात्रावासों की व्यवस्था तथा पुस्तकों की निशुल्क व्यवस्था भी की गई । आदिवासी शोध-संस्थान खोले गये ताकि उनके पाठ्यक्रम, प्रशिक्षण और भाषा के ऊपर काम हो सके ।

आदिवासियों पर जो भी काम हुआ उसमे उनके सकारात्मक कार्यो एवं उनकी संस्कृति को अनदेखा किया गया । उनकी आवश्यकताओं को अनदेखा करके उनको मध्यम श्रेणी के व्यक्तियो के समान रखा गया । आदिवासियों की संस्कृति में सकारात्मक विशेषताएं हैं तथा इनमें व्यक्तिगत मनौवैज्ञानिक तथा ज्ञानात्मक व्यवहार, उनकी मानसिक सोच एवं सोचने की शैली मध्यम वर्ग के लोगों से भिन्न है फिर इनकी शिक्षा को हम समान अवसर के आधार पर नहीं आंक सकते । इनकी सीखने की शैली की सबसे प्रमुख विशेषता धीमें सीखने की गति है जिसकों अनदेखा नहीं किया जाना चाहिये ।

आदिवासी बालक बौद्धिक कार्य में गैर आदिवासी छात्रों की अपेक्षा धीमें होते हैं । धीमे सीखने एवं धीमें बौद्धिक कार्य करने की इनकी यह मानसिक शैली इनकी प्रमुख विशेषता है । अतः इनको बहुत ही सावधानी पूर्वक अध्ययन करके इनका मूल्यांकन किया जाना चाहिए ।

आदिवासी छात्र विभिन्न सामाजिक एवं आर्थिक परिवेश से आते हैं, इनमें पालक शिक्षा के प्रति जागरूक नहीं होते और वे पूर्ण रूप से शिक्षा के प्रति उत्प्रेरित नही होते । आदिवासियों के पालक स्वयं भी औपचारिक शिक्षा से वंचित है या उनमें इसकी कमी है । इनके पालक बेरोजगार या

अल्परोजगार हैं और उन्हें बहुत कम पैसा भरण–पोषण के लिए मिलता है । साधारणतः सभी आदिवासी लोग अकुशल कार्य में लगे रहते हैं और पूर्ण समय इनके पास रोजगार नहीं होता । इस वातावरण का आदिवासी छात्र के शैक्षिक जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ता है । परिवार में बच्चों को अनुशासन की शिक्षा शारीरिक दण्ड के रूप में प्राप्त होती है और उन्हें अनुशासन के लिए अपने बड़ों की आज्ञा का पालन करना होता है । इस सब वातावरण के साथ आदिवासी छात्र स्कूल में प्रवेश करता है ।

आदिवासी शिक्षा के विकास के अनेक प्रयत्न शासन ने किये लेकिन आशानुकूल उन्नति इस क्षेत्र में नहीं हो पा रही है । आदिवासी शिक्षा में पूर्ण होने से पहले बहुत से बच्चें स्कूल छोड़ देते हैं । कुछ कक्षा में असफल हो जाते और फलतः स्कूल आना बंद कर देते हैं, इससे शिक्षा में एक ओर जहां रूकावट आती है वहीं दूसरी ओर अपव्यय और अस्थिरता आती है । आदिवासी छात्रों के स्कूल छोड़ने के कारण नये छात्र स्कूल मे भर्ती होने से घबराते हैं, इससे छात्रों के स्कूल प्रवेश प्रतिशत में गिरावट आती है । आदिवासी छात्रों के परीक्षा परिणाम मे कम उपलब्धि के कारण भी आदिवासी छात्रों के परीक्षा परिणाम पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है । आदिवासी शिक्षा के विकास में वांछित उपलब्धि न होने का एक महत्वपूर्ण कारण आदिवासियों की शिक्षा को पूरी तरह न समझना तथा उसका तुरन्त लाभ प्राप्त न होना भी है । स्कूली शिक्षा में कम उपलब्धि तथा शिक्षा के प्रति उत्प्रेरणा, उसमे अपनें संबघ में मूल्यांकन, उसकी शैक्षिक एवं व्यवसायिक आकांक्षा का स्तर, उसका स्कूल के प्रति दृष्टिकोण, अध्यापक, पाठ्यक्रम, अध्ययन, सामाजिक संस्थाओं आदि के प्रति मूल्य का दृष्टिकोण उसकी शिक्षा के विकास के प्रमुख अंग हैं । आदिवासी छात्रों के शैक्षिक जीवन का अध्ययन करने के लिए यह प्रयास किया गया है ।

शोधकर्ता ने आदिवासी छात्रों के शैक्षिक जीवन के संबंध में अध्ययन करने के लिए 380 छात्रों का अध्ययन किया जिसमें 302 आदिवासी (126 भील और 176 भीलाला) तथा 78 गैर–आदिवासी छात्र थे । 380 छात्रों में 262 छात्र एवं 118 छात्रायें अध्ययन के अन्तर्गत थी । मध्यप्रदेश के खरगोन, धार और झाबुआ के आठ स्कूलों के छात्रों के आकड़ें एकत्र किये गए । शैक्षिक आकांक्षा (श्री शर्मा एवं गुप्ता) व्यवसायिक आकांक्षा (डा. ग्रेवाल), शैक्षिक दृष्टिकोण (चोपड़ा) स्वयं धारणा (पीयर्स एवं हैरिस) मानक टेस्टों के अतिरिक्त छात्रों की अनुपस्थिति, शैक्षणिक उपलब्धि, पालकों का शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण, पाठ्यक्रम विभिन्नता, अध्ययन अवधि, गृह–वातावरण, 'आरक्षण नीति, लड़कियों की शिक्षा, अनिवार्य शिक्षा आदि को छात्र के शैक्षिक जीवन को देखने के लिए इन तत्वों को देखा है ।

आदिवासी छात्रों की शैक्षिक जीवन शैली की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं ।

उपस्थिति

आदिवासी छात्रों की उपस्थिति लिंग और जाति (एफ–9.08, पी=.00001), जाति एवं पारिवारिक शिक्षा (एफ–4.63, पी=.00001), जाति और आय (एफ=2.74, पी=00005) के आधार पर सार्थक पाया गया है । उक्त विश्लेषण से एक महत्त्वपूर्ण परिणाम सामने आया है कि लोगों की जाति स्कूल के नियमित उपस्थिति में किसी प्रकार से बाधक नहीं है । अर्थात् जाति का नियमित उपस्थिति से नकारात्मक संबंध नहीं है । इस अध्ययन से यह ज्ञात हुआ कि गैर जनजाति छात्र, जनजाति छात्रों की अपेक्षा स्कूल में उपस्थिति के संदर्भ में अधिक नियमित होते है ।

उपस्थिति के संदर्भ में (माध्य=75.59, एन=302) और गैर–आदिवासी (माध्य=79.55, एन==78) छात्रों मे टी=2.93 पी < .01) सार्थक विभिन्नता पाई गई है ।

शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण

आदिवासी छात्रों का शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण ज्ञात करने से यह पता चला कि जनजाति और गैर जनजाति के छात्रों में शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण भिन्न है । शिक्षा के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण को विकसित करने में समाज का बहुत अधिक महत्व है । आदिवासी छात्रों (माध्य=104.60, एन=302) और गैर आदिवासी छात्रों (माध्य=103.62 एन=78) मे शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण में (टी=3.03 पी < .01) सार्थक भिन्नता पाई गई है ।

शैक्षिक आकांक्षा

आदिवासी छात्र (माध्य=44.38, एन=302) की शैक्षिक आकांशा गैर आदिवासी छात्रो (माध्य=46.48, एन=78) की अपेक्षा कम (टी=6.10, पी < .01) है । इससे ज्ञात होता है कि आदिवासी छात्र की उच्च शैक्षिक आकांशा अपने सहपाठी साथियों की अपेक्षा बहुत कम है ।

व्यवसायिक आकांक्षा

छात्रो की व्यवसायिक आकांक्षा का मापन और विश्लेषण करने से ज्ञात हुआ कि इसमें सार्थक भिन्नता है । आदिवासी छात्रो मे व्यवसायिक आकांक्षा का स्तर (माध्य=43.79 एन=302) गैर आदिवासी छात्रों की तुलना मे (माध्य=42.45, एन=78,) उच्च आकांक्षा का (टी–5.31, पी < .01) है । इससे ज्ञात होता है कि आदिवासी छात्रों में व्यवसाय अर्थात रोजगार प्राप्त करने की प्रबल आकांक्षा अपने गैर आदिवासी छात्रों की अपेक्षा अधिक है ।

स्वयंधारणा

(स्वयंमापनी) आदिवासी छात्र अपने संबध में क्या सोचते हैं इसके लिए शोधकर्ता ने पीयर्स और हैरिस के स्वयं मापनी टेस्ट के द्वारा उनका विश्लेषण किया । विश्लेषण से ज्ञात होता है कि आदिवासी छात्रो का अपने संबंध में आकंलन (माध्य=44.39 एन=302) गैर आदिवासी छात्रो की तुलना में (माध्य=54.63 एन=78) बहुत कम हैं और बहुत अधिक सार्थक भिन्नता (टी=6.14 पी < .01) पाई जाती है। इस विश्लेषण सेयह ज्ञात होता है कि आदिवासी लोग अपने संबंध में बहुत कम सकारात्मक दृष्टिकोण रखते हैं । इससे यह भी अनुमान लगता है कि वह अपनी क्षमताओं का पूरा उपयोग नहीं कर पाते । अत: यह आवश्यक है कि उन्हे उनकी क्षमताओं के पूरे उपयोग के लिए उत्साहित किया जाए ।

शैक्षणिक उपलब्धि

आदिवासी छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि जानने का मुख्य उद्देश्य यह है कि स्कूल के शैक्षिक उद्देश्य में वे कहां तक सफल हुए हैं । आकड़ो के विश्लेषण में सार्थक भिन्नता पाई गई और यह एक महत्वपूर्ण बात सामने आई कि छात्र की शैक्षिक उपलब्धि से आय और उसमें परिवार के आकार का कोई संबंध नहीं है । अर्थात् आय और परिवार का आकार शैक्षणिक उपलब्धि में किसी प्रकार से बाधक या सहयोगी नहीं है । आदिवासी छात्र (माध्य 47.4· एन=302) और गैर आदिवासी छात्र (माध्य=50.23 एन=78) मे सार्थक भिन्नता (टी–2.05, पी < .05 पाई गई ।

पालकों का शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण

आदिवासी और गैर आदिवासी पालकों के शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण में कोई भी भिन्नता नहीं

है । अर्थात दोनों ही वर्ग के लोग शिक्षा को एक आवश्यक जरूरत मानते हैं ।

पाठ्यक्रम की भिन्नता

आदिवासी छात्र क्या अपनी संस्कृति, भाषा एवं पर्यावरण के आधार पर अलग पाठ्यक्रम चाहते हैं या वहीं पाठ्यक्रम जो गैर आदिवासी लोग भी पढ़ते हैं, इस आशय को जानने के लिए दोनों समूह से प्रश्न पूछने और उसके विश्लेषण से ज्ञात हुआ कि दोनों समूह अपने-अपने व्यवसाय और आवश्यकतानुसार विभिन्न पाठ्यक्रम चाहते है ।

पारिवारिक वातावरण

छात्रो का पारिवारिक वातावरण अध्ययन के अनुकूल है या नहीं ? आंकड़ों के विश्लेषण से ज्ञात हुआ कि आदिवासी छात्रो का पारिवारिक वातावरण अध्ययन के अनुकूल नहीं क्योंकि बहुत कम सदस्य शिक्षित है जबकि गैर आदिवासी छात्रों का पारिवारिक वातावरण छात्रों के अध्ययन के अनुकूल रहता है ।

अध्ययन अवधि

अध्ययन समूह के छात्र कितने घंटे पढ़ाई करते हैं ? विश्लेषण करने से ज्ञात हुआ कि कोई भी छात्र नियमित निश्चित कुछ घंटे अध्ययन नहीं करता । सत्र के आरम्भ में छात्र बिलकुल भी अध्ययन नहीं करते लेकिन परीक्षा के समय यही छात्र अनेक घंटे अध्ययन करते है । इससे ज्ञात होता है कि छात्रों मे नियमित अध्ययन करने की आदत नहीं है ।

आरक्षण नीति

शिक्षण संस्थाओ एवं व्यवसाय में आरक्षण की नीति के संबंध में सार्थक भिन्नता पाइ गई । अधिकांश आदिवासी छात्र आरक्षण नीति के पक्ष में है और वह उसको नियमित चालू रखने के पक्ष में है, जबकि गैर आदिवासी छात्र इस नीति के पक्ष में नहीं हैं ।

लड़कियों की शिक्षा

लड़कियो को शिक्षा दी जाये अथवा नहीं यह जानने के लिए अध्ययन समूह के अधिकांश छात्र लड़कियो की शिक्षा के पक्ष में नहीं है । केवल आदिवासी छात्रायें ही लड़कियों को शिक्षा देने के पक्ष में हैं ।

अनिवार्य शिक्षा

प्राय. सभी समूह के छात्र अनिवार्य शिक्षा के पक्ष में हैं । केवल 15 प्रतिशत गैर आदिवासी छात्र जो शिक्षित परिवार के है तथा 17 प्रतिशत छात्र जो अशिक्षित परिवार के हैं, अनिवार्य शिक्षा के पक्ष में नही है ।

सुझाव

- आदिवासी छात्रों का अध्ययन करने के लिए उनकी ही भाषा में शैक्षिक आकांक्षा, व्यवसायिक आकांक्षा, शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण, स्वयं धारणा, अध्ययन आदत और आर्थिक और सामाजिक स्तर के लिए मानक टेस्ट बनाने चाहिए ।
- महाविद्यालय तथा व्यवसायिक क्षेत्र तथा रोजगार के संबंध में छात्रों को उचित मार्गदर्शन देना चाहिए ।
- छात्रो की शिक्षा समाप्ति के पश्चात् उनके व्यवसाय या नौकरी की व्यवस्था के लिए

मार्गदर्शन देना चाहिए ।

- अध्यापकों को यह मानना चाहिये कि आदिवासी छात्र सीख सकते हैं, ये पढ़ सकते हैं अतः उनके उद्देश्य की पूर्ति के लिए अध्यापको को कार्य करना चाहिए ।
- आदिवासी छात्र मूर्त और सकेतात्मक विचार विकसित करने में समर्थ हैं ।
- आदिवासी छात्रों के लिए पाठ्य-सामग्री की अत्यन्त आवश्यकता है जो कि उनके वातावरण और उनके अनुभव के अनुरूप हो । पाठ्य-पुस्तको का निर्माण आदिवासी छात्रों की समस्या एव आवश्यकता के आधार पर करना चाहिए ।
- इन छात्रों को पढ़ाने के लिए अध्यापकों को विशेष प्रशिक्षण देकर तैयार करना चाहिए ।
- बढ़ती हुई कीमतों को ध्यान मे रखते हुए आदिवासी छात्रो की छात्रवृत्ति भी समय समय पर बढ़ाई जानी चाहिये ।
- शिक्षा के समान अवसर प्रदान करने के लिये और भी अधिक आश्रम स्कूल तथा छात्रावास खोलने चाहिये ताकि दूर से आने वाले छात्र उचित वातावरण में पढ़-लिख सकें ।
- आदिवासियो को अपने बच्चो को स्कूल भेजने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए और शिक्षा के विभिन्न लाभों से एव उनके लिए शिक्षा में किये गये प्रावधान से उन्हें अच्छी तरह से अवगत करना चाहिए ।

❑❑

क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय
भोपाल, मध्यप्रदेश

क्यों भागते हैं बच्चे विद्यालय से ?

❑ रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'

शिक्षा की प्रक्रिया मे विद्यालय ही पूर्णतया जिम्मेवार नहीं है । अभिभावक की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है । अभिभावक अपने बच्चे को विद्यालय में प्रवेश दिलाकर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मान लेते हैं । बहुत कम अभिभावक ऐसे मिलेंगे जो समय-समय पर विद्यालय आकर अपने बच्चे के बारे मे पूछताछ करते हो । इन सब उपेक्षाओं से निबटने का कार्यभार सिर्फ विद्यालय कें कंधों पर आ पड़ता हे । विद्यालय की जरा-सी अनदेखी छात्र को 'एकाकी' जैसा बना देती है ।

प्रशासन, शिक्षण, पाठ्यक्रम, विद्यालय की भौतिक परिस्थितियां, कालचक्र आदि बहुत सारे ऐसे कारक हैं जो छात्र के उत्साह को अधमरा कर देते हैं । किसी एक कारक को दोष देकर हम अपने उत्तरदायित्व से नहीं बच सकते हैं । इन कारणों पर मिलजुल कर विचार किया जाना चाहिए ।

कल विद्यालय के प्राचार्य, विद्यालय खुलने से आधा घण्टा पूर्व विद्यालय में आ गए थे, आज एक घण्टा बीत जाने पर भी नहीं आए हैं । कल छुट्टी होने से घण्टाभर पहले खिसक गए थे, आज छुट्टी के बाद घण्टाभर बैठे रहेंगे । केवल प्राचार्य होने के कारण जब चाहे आने या जाने की छूट लेना अनैतिक है । आदत अनजाने ही शिक्षको को भी इस तरह की छूट का अभ्यस्त बना देती है । शिक्षकों की इस तरह की छूट सीधे तौर पर छात्रों को लापरवाह बनाती है । यह देखिए-वर्मा जी और शर्मा जी स्टाफ रूम मे बैठे भ्रष्टाचार के कारणों पर गरमा-गरम बहस कर रहे हैं । अगला कालांश शुरू हो गया है । मानीटर आकर कालांश शुरू होने की याद दिलाता है । वर्मा जी जरा बात रोककर मानीटर को हिदायत देते हैं- 'चुपचाप बैठो । मैं पाँच मिनट में आता हूँ ।' मानीटर जानता है कि वर्मा जी के पाँच मिनट का मतलब है पूरा पीरियड गोल करना । अब यह छात्रों के विवेक पर है कि वे बैठकर पढ़ें, जमकर शोर मचाएँ, श्यमपट्ट पर ऊल-जलूल लिखें, दीवार पर चित्र बनाएं या अच्छे बच्चों की तरह चुपचाप विद्यालय-परिसर की दीवार फाँदकर घर का रास्ता ले । वर्मा जी और शर्मा जी देश की चिन्ता मे घुले जा रहे हैं ।

प्राचार्य, छात्रों की समस्याओं को धैर्यपूर्वक सुनते हैं या उन्हें डाँटकर भगाने को ही प्रशासन समझते हैं, छात्रों की समस्याओ का निराकरण करते हैं या उन्हें झूठे आश्वासन देकर टाल देते हैं, छात्रों के साथ आत्मीयतापूर्ण व्यवहार करते हैं या 'बाघ-बकरी सम्बन्ध' में विश्वास करते है, असूर्यपश्य बनकर दफ्तर की काल-कोठरी मे बन्द रहते हैं या घुम-फिर कर विद्यालय की गतिविधि पर नजर रखते हैं, शिक्षकों के साथ सहज सम्बन्ध हैं या 'दो हाथ दूर हटकर चलने से ही प्रशासन ठीक चलता है' की सोच है। अच्छा काम करने वाले शिक्षकों की कभी-कभार सराहना कर देने से कार्य-क्षमता की ऊर्जा बनी रह सकती है ।

प्राचार्य का आचरण प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों ही रूपों से शिक्षकों एवं छात्रों को प्रभावित करता है, अतः विद्यालय के कार्यों को प्राचार्य की जागरूकता गति प्रदान करती है ।

शिक्षक, छात्रों से सीधे तौर पर जुड़े रहते हैं । छात्र विद्यालय से भागते हैं, इसका प्रमुख कारण शिक्षक ही है । यदि शिक्षण—कार्य प्रभावशाली होगा तो छात्र कालांश छोड़कर बाहर चले जाना पसन्द नहीं करेंगे । शिक्षण का स्थान 'ट्यूशन की दुकानों' ने ले लिया है । जब ट्यूशन पढ़ना छात्र की नियति बन गया है तो कक्षा में बैठे रहना उसको भारस्वरूप लगने लगता है । ऐसे बहुत से शिक्षक हैं जो कक्षा मे जाकर अपनी ट्यूशन की थकान उतारते हैं । पाठ्यक्रम में क्या परिवर्तन हुआ ? कौन—सी उपयोगी सन्दर्भ पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, इससे कोई सरोकार नहीं । ठेके पर लिखी 'गाइड' पढ़कर छात्र परीक्षा की वैतरणी पार करने का लक्ष्य बना लेते हैं । कक्षा में प्रश्न करने वाले छात्रों को अपमानित करना, कोई कुछ समझा है या नहीं इसकी परवाह किये बिना पढ़ाते जाना सामान्य बात हो गई है । अनुतीर्ण होने के डर से छात्र चुप्पी लगा जाते हैं । छात्रो के प्रति भेदभाव, स्वस्थ प्रतिस्पर्धा का अभाव, फेल कर देने की धमकी, विषयज्ञान का न होना, कक्षा में समय पर न पहुँचना ऐसे बहुत से दुःखद कारक हैं जो छात्रो के मनोबल को खण्डित करते हैं । विषय मे रूचि न होने के कारण छात्र विद्यालय से खिसक लेना अधिक सार्थक मानने लगते हैं । विद्यालय मे आते समय छात्र जितना खालीपन महसूस करते हैं, लौटने में इससे भी अधिक रिक्तता का अनुभव करते हैं ।

पाठ्यक्रम का निर्माण और परिवर्तन इतनी हड़बड़ी में किया जाता है कि सामान्य और विशिष्ट छात्रों की अभिरूचियों का तनिक भी ध्यान नहीं रखा जाता है । कभी—कभी तो यहां तक भी होता है कि निचली कक्षा के कुछ पाठ अगली कक्षा मे तथा अगली कक्षा में चल रहे पाठ निचली कक्षा में धकेल दिये जाते हैं । विद्यालयों में सही समय पर न पाठ्यक्रम पहुंच पाता है और न सही समय पर पाठ्य—पुस्तकों की आपूर्ति ही हो पाती है । छात्र क्या पढ़े और शिक्षक क्या पढ़ाए ? समयाभाव में जागरूक शिक्षक भी कोर्स पूरा करने की खानापूरी के सिवाय और क्या करेंगे ? जब पाठ्यक्रम सामान्य छात्र की समझ से परे होगा तो विषयवस्तु उसके लिए भारस्वरूप हो जाएगी । प्रबुद्ध छात्रो के लिए पाठ्यक्रम का अल्पांश भी चुनौतीपूर्ण न हो तो वे भी ऊब का अनुभव करेंगे । पाठ्यक्रम—निर्माण में सम्बन्धित शिक्षकों की भागीदारी की प्रायः उपेक्षा रहती है । उनके सुझाव नक्कारखाने मे तूती की आवाज बनकर रह जाती हैं । फिर एक जैसे पाठ्यक्रम में क्षेत्रीय सुविधाओं का भी ध्यान रखा जाए तो छात्र रूचि लेंगे, विद्यालय से ऊबकर भागेंगे नहीं ।

कुछ विद्यालय ऐसे भी हैं जिनकी हालत गौशाला से भी बदतर है । न पीने के पानी का प्रबन्ध है न शौचालय ही हैं । सफाई की बात सोचना तो सपना है । नन्हें—नन्हे बच्चे, ऊपर तपती हुई छतें; बिजली है ही नहीं । कक्षा—कक्ष के नाम पर कोठरियाँ । आवारा जानवर विद्यालय में विचरण करते रहते हैं । कोई चार दीवारी नहीं । बरसात मे खिड़कियों और छत से कमरे मे बेरोकटोक आता पानी इन सब समस्याओं की तरफ पीठ करके हम भावी पीढ़ी तैयार कर रहे हैं जिनके लिए विद्यालय किसी यातना केन्द्र से कम नहीं । नित्य—प्रति विद्यालयों में छात्रों की संख्या बढ़ती जा रही है, साधन उतने ही बौने होते जा रहे हैं । बच्चों के लिए पर्याप्त खेल का सामान होना तो दूर की बात; खेलने का स्थान तक नहीं है । पुस्तकालय और

वाचनालय की सुविधा भी सीमित है । बच्चे क्या पढ़ें यह सोचे बिना अनुपयोगी पुस्तके खरीद ली जाती हैं । वर्तमान सत्र में किस तरह की पुस्तकें बच्चो के हाथों मे पहुँचे, किस तरह की पत्रिकाए पढ़वाई जाएं । इस पर कभी शान्त मन से विचार नहीं हो पाता । सही योजना के अभाव में छात्र कुंठित होने लगते हैं । यही कुठा उन्हे विद्यालय से भागने पर विवश करती है ।

कालचक्र ठीक से निर्मित न होने पर विद्यालयों मे अव्यवस्था का वातावरण बना रहता है । अन्तिम कालाश मे प्राय. विभिन्न विषयों के वे कालांश आ जाते हैं जो पूर्व कालांशो के साथ समायोजित नहीं हो पाए थे । शिक्षक जानबूझकर भी इन कालाशों को छोड़ देते हैं तथा नियमित रूप से न होने पर भी छूट जाते हैं । छात्र इस लापरवाही का लाभ उठाकर विद्यालय से चले जाते हैं । खेल, कला संगीत, पुस्तकालय आदि की व्यवस्था यदि अंतिम कालांश में हो तो छात्र भाग जाने का मौका ढूढ लेते हैं । अन्तिम कालाश में यदि कोई पाठ्य-विषय नियमित रूप से पढ़ाया जाए तो इस प्रवृति को एक सीमा तक बन्द किया जा सकता है । यदि शिक्षक की शिक्षण-शैली रोचक होगी तो छात्र अतिम कालाश तक कक्षा मे बने रहेंगे । अंतिम कालांश मे छात्रों की उपस्थिति ली जाए जिससे व्यवस्था के स्तर पर भी इस दुष्प्रवृत्ति को रोका जाए ।

इस समय के निदान के लिए मिलकर प्रयास करना होगा । केवल दोषारोपण करना किसी समस्या का निदान नहीं हो सकता । प्राचार्य, शिक्षक, छात्र एवं परिवेश का युक्ति संगत तालमेल होना चाहिए तब छात्र अपना एक-एक पल आत्मीयतापूर्ण वातावरण मे सार्थक ढंग से बिताएगा । □□

स्नातकोत्तर शिक्षक
केन्द्रीय विद्यालय जे. आर. सी.
बरेली कैण्ट

बालक के जीवन में "आदतों" का स्थान

❑ हरिशंकर शर्मा

मानव का समूचा व्यक्तित्व आदतों का पुंज है । हमारी आदतो पर ही हमारा जीवन सुखी अथवा दुखी होता है । अपनी आदतों के ही कारण हम प्रेम या घृणा के पात्र बनते हैं । इन आदतों का निर्माण मानव स्वयं करता है और बाद में उनके वशीभूत हो जाता है । आदत मानव का एक प्रकार का अर्जित मानसिक गुण है । आदतो का आधार अभ्यास है । आदतो के निर्मित हो जाने पर हमारी मानसिक चेष्टाए उसी के अनुकूल दिशा में होती हैं । मानव–जीवन में जन्म–जात तथा अर्जित दो प्रकार की प्रवृतियां कार्य करती हैं । मूलवृतियों को हम जन्मजात तथा आदतों को हम अर्जित मानसिक प्रवृति कह सकते हैं । मूलप्रवृतियों की भाँति आदते भी हमें विशिष्ट कार्य करने के लिए प्रेरित करती है । अतः आदत को हम केवल मानसिक संस्कार मात्र मानकर नहीं बैठ सकते, वह एक क्रियात्मक प्रवृत्ति है ।

बहुत से मनोविज्ञानवेत्ताओं ने आदत को स्वयं क्रियात्मक प्रवृति न मानकर उसे एक क्रिया का विशेष पथ अवश्य माना है । आदत क्रियात्मक होती है । आदत तथा मूल प्रवृत्ति दोनो क्रियात्मक प्रवृत्तियाँ हैं । बालक जन्म के पश्चात् कुछ संस्कार और स्वभाव पाता है । भौतिक दृष्टि से उन्हें परम्परागत तथा आध्यात्मिक दृष्टिकोण से पूर्व जन्मगत संस्कार कहा जा सकता है । किन्तु आगे चलकर वातावरण के कारण बालक की आदतों का विकास होता है । आदतो का आधार अभ्यास ही है । मुख्यत. आदत के दो आधार हैं–

(1) मूलप्रवृत्तियाँ

(2) वातावरण जन्म संस्कार ।

जड़वादी तथा व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक आदतों मे संस्कारो को प्राधान्य देते हैं । चेतन्यवादी मनोवैज्ञानिक मूलप्रवत्तियों को प्रधान महत्व प्रदान करते हैं । जन्मजात आदतो का आधार मूलवृत्तियाँ हैं और अर्जित आदत का आधार वातावरण जनित सस्कार है । वस्तुत· वातावरण के संस्कार मूलप्रवृतियो की शक्ति पाकर आदतो में परिवर्तित हो जाते हैं । मूलप्रवृत्तियो में सरलता से परिवर्तन नहीं किया जा सकता, किन्तु आदतो मे परिवर्तन करना अपेक्षाकृत अधिक सरल है । विलियम जेम्स का कथन है कि "आदतों का निर्माण हमारे स्नायु तन्तुओ द्वारा स्नायुशक्ति के प्रवाह पर निर्भर है" । गाल्ट तथा हावर्ड इस कथन पर थोड़ा मतभेद रखते हैं । उनके कथनानुसार, "जन्म के समय मनुष्य के मस्तिष्क के भिन्न–भिन्न स्नायुओं में किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं होता, अनेक प्रकार के अनुभवों के पश्चात इस प्रकार के सम्बन्ध स्थापित होते हैं"। स्नायुओं का सम्बन्ध स्थापित होना ही आदतों का निर्मित होना है । परन्तु यह भौतिकवादियो का कथन दोषपूर्ण हैं । आदतो के निर्माण में तीन अन्य महत्वपूर्ण तत्व कार्य करते हैं–

1. इच्छाशक्ति

2. अव्यक्त मन और

3. रूचि

आदतो का निर्माण हमारी मानसिक क्रियाओं पर आश्रित है । इच्छाशक्ति इस निर्माण में प्रधान कार्य करती है । आदत की क्रियाएँ हमारे चेतन तथा अचेतन मन द्वारा संचालित होती है । अव्यक्त मन हमारी आदतों को शक्ति प्रदान करता हैं । जिस क्रिया की ओर हमारी रूचि होती है उसी ओर हमारी आदतों का निर्माण भी होता हैं । हमारी रूचि का आधार मूल–प्रवृत्तियाँ ही हैं । रूचि का उचित निर्माण करने के लिए ज्ञान आवश्यक है । प्रसिद्ध जर्मन मनोवैज्ञानिक हरबर्ट ने बालकों के सुधार के लिए उनका ज्ञान–वर्धन ही एक उपाय बताया है । ज्ञानवृद्धि के अनुरूप ही चरित्र का निर्माण होता है । चरित्र का निर्माण रूचि तथा आदतों के निर्माण पर ही निर्भर है । आदत के चार मुख्य लक्षण हैं–––

1. समानता

2. सुगमता

3. रोचकता

4. ध्यान स्वातन्त्र्य

आदत की क्रियाओ मे सदैव सदैव समानता रहती है । चूँकि आदत की क्रियाएँ अभ्यस्त होती है अत. उनमें सुगमता भी होती हैं । रूचि के कारण आदत का निर्माण होता है अतः आदत की क्रियाओं में रोचकता आ जाना सर्वथा स्वाभाविक है । आदत निर्मित हो जाने पर हमें उसकी क्रियाओं में अधिक सचेष्ट होकर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं रहती । वह स्वतः अत्यन्त स्वाभाविक रूप में चलती रहती है ।

आदत का मानव–जीवन में एक बहुत बड़ा महत्व है । आदत पर ही मानव का चरित्र आश्रित हैं । बाल्यावस्था में यदि ये आदतें डाल दी जाय तो बालक का सम्पूर्ण जीवन उक्त आदतों की भलाई या बुराई पर आश्रित होता है । प्रौढ़ों की अपेक्षा बालकों में आदतें अधिक सरलता से डाली जा सकती हैं । आदत से शक्ति का अपव्यय नहीं होता । अच्छी आदतों के निर्माण की आदत ही सबसे अच्छी आदत है । बालक के जीवन में अच्छी आदतों का निर्माण करना ही शिक्षा का सतत् लक्ष्य है । रूसो ने व्यक्ति को आदतों का गुलाम नहीं माना है अपितु स्वाभाविक स्वतन्त्र विकास के लिए यह नहीं होना चाहिए । आदत से शून्य मनुष्य का अस्तित्व कल्पना से परे वस्तु है । भली आदतों के अभाव में बालक उचित दिशा की ओर विकास नहीं कर सकता । आदत शक्ति संचय का एक बहुत बड़ा साधन है । शैशवकाल आदत डालने का सर्वोत्तम समय है । इस समय जो आदतें निर्मित हो जाती हैं वे प्रायः जीवन भर चलती रहती हैं । अभिभावको तथा शिक्षकों का कर्त्तव्य कि वे बालकों में भली आदतों का निर्माण करके अपने उत्तरदायित्व का पालन करे ।

प्रसिद्ध मनोविज्ञानिक विलियम जेम्स ने आदत विकास हेतु चार उपाय सुझाए हैं–

1. दृढ़ संकल्प

2. कार्यशीलता

3. लगन और

4. अभ्यास

दृढ़ संकल्प आदतों के निर्माण में अत्यन्त सहायक सिद्ध हुआ है । अच्छी आदतों के निर्माण मे इसका उचित उपयोग किया जा सकता है । यदि एक बालक की सुबह उठकर एक पाठ याद करने की दृढ़ संकल्पना है तो वह निश्चित ही नित्य उठकर पाठ याद करने की रूचि व आदत का विकास करेगा । संकल्प की दृढ़ता में इच्छाशक्ति का अपना प्राधान्य होता है । इरादों तथा सकल्पों की

दृढ़ता के साथ कर्मठ क्रियाशीलता की आवश्यकता है । कर्मठ क्रियाशीलता के अभाव में दृढ़ संकल्प तथा सुन्दर इरादो का कोई महत्व नहीं हैं । दृढ़ सकल्प तथा कर्मठ कार्यशीलता के निर्वाह के लिए सतत्–निरन्तर लगन की आवश्यकता है । लगन के अभाव में संकल्प और क्रियाशीलता अधिक दिनों तक नहीं टिक सकती । आदत अभ्यास का ही परिणाम है । अच्छी आदते कठिनाई से डाली जाती हैं किन्तु ये सरलता से छूट जाती हैं । बुरी आदतें सरलता से पड़ जाती हैं किन्तु बड़ी कठिनाई से छूटती हैं । भली आदतें इच्छा शक्ति को दृढ़ बनाकर चरित्र का विकास करती हैं किन्तु बुरी आदतें इच्छा शक्ति को दुर्बल बनाकर चरित्र को दूषित कर देती हैं । बालक का चोरी करना, अभद्र व्यवहार करना, शाला में देर से आना, कक्षा में बैठकर शोरगुल करते रहना आदि बालक की जटिल आदते हैं ये आसानी से नहीं छूटती । क्योकि ये मानसिक ग्रन्थियो के कारण जनित होती है अतः छूटना कठिन होता है । जिन आदतो को प्रकाशन का अवसर नहीं मिलता, वे स्वत छूट जाती हैं । आदत डालने के लिए बार–बार अभ्यास करना तथा उसे छोड़ने के लिए उसके विपरीत अभ्यास करना श्रेयस्कर है ।

नवीन मनोविज्ञान ने हमारी पूर्व धारणा में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिया है । इनके कथनानुसार प्रत्येक आदत का मूल अभ्यास नहीं वरन संवेग है । बुरी आदतो को मिटाने के लिए सम्बन्धित विकृत संवेग को नष्ट करना आवश्यक है । अन्यथा विपरीत आचरण से आदत छूट नहीं सकती । इसके लिए मनोविश्लेषण की आवश्यकता है । इस विचारधारा को हेड्फील्ड ने जन्म दिया । आपने अनेक प्रमाणों तथा प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि यदि दो घटनाओं की अनुभूति एक साथ हो तो जब भी एक प्रकार के अनुभव के संस्कार उत्तेजित होंगे तो दूसरे प्रकार के अनुभव के संस्कार भी स्वतः उत्तेजित हो उठेंगें, भले ही वे एक दूसरे के विपरीत ही क्यो न हो ।

कहने का अभिप्राय यह है कि आदत पर मानवी चरित्र आधारित है । अत चरित्र निर्माण के लिए अच्छी आदतो का निर्माण आवश्यक है । आदतों के निर्माण हेतू प्रो. सेण्ड ने स्थाईभाव को प्रमुख माना है । स्थाई भाव से मूलप्रवृत्ति तथा आदत का निर्माण होता है । हमारा आदतो के महत्व को बताने का एकमात्र उद्देश्य है माता–पिता, शिक्षक तथा अभिभावक बालक के उस बहुमूल्य समय की खोज करना जिसमें अच्छी आदतें डाली जा सकती हैं । यदि हम ऐसा नहीं कर रहे तो उनके साथ अन्याय तो कर ही रहे हैं साथ ही उनके सामाजिक अधिकार को भी नष्ट कर रहे हैं । यदि हम श्रेष्ठ आदतों का सृजन कर देते है तो उनका व्यक्तित्व उभर जाता है और वे कंठित होने से बच जाते हैं । आज बालक को समझना तद्नुरूप इच्छाशक्ति, आदर्श, आदत आदि का विकास करना बहुत आवश्यक हो गया है । ❑❑

व्याख्याता–गणित
राज. सी. उ. मा. वि., टोडमद
अजमेर (राजस्थान)

स्कूलों में समाजपयोगी उत्पादक कार्य

❑ डा. डी. डी. यादव

प्राथमिक स्तर पर समाजपयोगी उत्पादक कार्य प्रदान करने में हम साधारण तौर पर निम्नलिखित प्रकार से आगे बढ़ सकते हैं:-

1. बच्चे की स्वाभाविक जिज्ञासा की तृप्ति

बालक को समाजपयोगी उत्पादक कार्य प्रदान करने की शुरूआत कैसे की जाय यह प्रश्न पहली कक्षा के बालक के साथ उत्पन्न हो सकता है । बालको के बारे मे यह बात तो शत प्रतिशत सही है कि वे स्वभाव से ही जिज्ञासु होते है । उनके चारों ओर जो कामकाज की दुनियां है, उससे संबंधित ढेर सारे प्रश्न उनके मन में उठते रहते है । बस, हमें बालकों की इन मूल प्रवृत्ति का लाभ उठाते हुए उन्हें उनके चारों ओर के कार्य जगत से परिचित कराने का प्रयत्न करना चाहिए । उनके घर, पास-पड़ोस, तथा समुदाय में क्या कुछ काम-काज हो रहा है ? पुरुष क्या कर रहे हैं, मशीनें क्या कर रही है, क्या-क्या चीज़ें पैदा हो रही है, किस-किस प्रकार की दुकानें है; टूट-फूट और खराबी आ जाने पर वस्तुओं को कैसे सुधारा जा रहा है, कौन किस तरह अपनी रोजी-रोटी कमा रहा है ? इस तरह की ढेर सारी बातें बच्चों के समझने की है जिनकी ओर हमें ध्यान देना चाहिए । बच्चो के प्रश्न सभी प्रकार के होते हैं-कार्य कैसे हो रहा है, क्यों हो रहा है, ऐसा क्यों नही हो रहा, इत्यादि । बहुत से जिज्ञासा पूर्ण प्रश्नों का समाधान इस स्तर पर अध्यापकों द्वारा किया जाना आवश्यक है । बालको के प्रश्नों का कोई बहुत ही तकनीकी समाधान यहां आवश्यक नहीं । उन्हे बहुत ही सरल रूप में परन्तु सही-सही, मोटी-मोटी बाते बतलाई जानी चाहिए ।

2. वास्तविक परिस्थितियों से कार्य का अवलोकन

प्रारम्भिक कक्षाओं में समाजपयोगी उत्पादक कार्य प्रदान करने की दृष्टि से अवलोकन अथवा निरीक्षण विधि का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है । इन कक्षाओं में बालकों को जिस रूप मे बाह्य जगत में तरह-तरह के कार्य होते रहते है, उनको उनके उसी रूप मे दिखाने के प्रयत्न किए जाने चाहिए । इसके लिए बालकों को अध्यापकों के नेतृत्व में भ्रमण के अवसर भी प्रदान किए जा सकते है और कार्य जगत में होने वाले कार्यो के समीप उन्हे लाया जा सकता है । विद्यार्थी, जो कुछ हो रहा, उसका सूक्ष्म अवलोकन कार्य-जगत से सम्बन्धित परिणामो पर पहुंच सकते हैं । अध्यापक उनकी जिज्ञासाओ तथा शंकाओं का समाधान कर सकता है और उन्हें किसी विशेष कार्य से सम्बन्धित ज्ञान और कौशल की जानकारी प्राप्त करने में सहायता प्रदान कर सकता है । विद्यार्थी इस प्रकार वास्तविक में कार्य करने वाले व्यक्तियों के सम्पर्क में आ कर उनसे आवश्यक प्रश्न पूछ सकते हैं तथा उनके कार्य और कार्यप्रणाली को

अवलोकन कर कार्य सम्बन्धी आवश्यक अनुभव ग्रहण कर सकते हैं । एक माली पौधे को किस प्रकार रोप रहा है, दवाई किस प्रकार छिड़की जा रही हैं, साइकल और स्टोव की मरम्मत कैसे की जा रही है, मंडी में किसानों के अनाज को कैसे खरीदा जा रहा है और दूसरे लोग इसे फिर किस प्रकार खरीद रहें है, मजदूरों द्वारा मकान की नींव कैसे भरी जा रही है तथा कमरों के फर्श और छत कैसी बनाई जा रही है, एक हैंड पम्प लगाने वाला मिस्त्री जमीन में किस प्रकार सुराख करके पानी निकालने की कोशिश कर रहा है, इत्यादि ऐसे बहुत से कार्य है जिनके अवलोकन द्वारा विद्यार्थी इन कार्यों से सम्बन्धित आवश्यक ज्ञान और कौशल को ग्रहण करने मे समर्थ हो सकते हैं । अध्यापको और विद्यालय अधिकारियों का यह कर्त्तव्य है कि वे बालकों को अधिक से अधिक ऐसे अवसर जुटाने का प्रयत्न करें ताकि वे कार्य–जगत से प्रयतक्ष सम्पर्क स्थापित करके अध्यापक के मार्ग निर्देशन में स्वयं अपने अवलोकन द्वारा विभिन्न कार्यो से सम्बन्धित अनुभवों को ग्रहण कर सकें ।

3. अनुभवी व्यक्तियों को आंमत्रित करना

विद्यालय में ऐसे व्यक्तियों को आमन्त्रित किया जाए जो उन क्रियाओं का प्रदर्शन कर सके जिनके द्वारा वे अपनी जीविका कमाते हैं । एक साबुन बनाने वाला या क्रीम तथा स्याही बनाने वाला बालकों को यहाँ आ कर बताए कि वह काम कैसे करता है । एक रेडियों, पंखा या सिलाई की मशीन ठीक करने वाला मिस्त्री यह समझाए कि इन वस्तुओं की देख–भाल कैसे की जाती है अथवा छोटी–मोटी खराबी आने पर उन्हें कैसे ठीक किया जा सकता है ? स्वाभाविक है ऐसे सभी कार्यो में बालक रूचि लेंगें और जो कुछ हम उन्हें अपने व्यवस्थापन और पुस्तकों के माध्यम से सिखाना चाहते हैं, उससे बहुत कुछ अधिक ज्ञान और कौशल वे इस रूप में अर्जित कर सकेगें । अतः अध्यापक और विद्यालय अधिकारियों को चाहिए कि कार्य–जगत से सम्बन्धित अनुकूल रूचि, दृष्टिकोण तथा कौशल उत्पन्न करने के लिए कार्य–जगत से सम्बन्धित अनुभवी व्यक्तियों को यदाकदा अपने विद्यालय में बुलाते रहें ।

4. अन्य विद्यार्थियों द्वारा बनी वस्तुओं की प्रदर्शनी करना

छोटे बालकों में अनुकरण की प्रवृत्ति बहुत अधिक पाई जाती है । एक विद्यालय में बड़ी कक्षाओं के विद्यार्थी जो कुछ करते हैं, उसका अनुकरण सहज ही छोटी कक्षाओ के विद्यार्थियो द्वारा कर लिया जाता है । समाजपयोगी उत्पादक कार्य प्रदान करने की दृष्टि से बड़ी कक्षा के विद्यार्थियों के कार्य को प्रदर्शनियों में अनुकरण एवं प्रेरणा की सामग्री बना कर प्रस्तुत किया जाना चाहिए । छोटे विद्यार्थी जब यह देखेगें कि कितने उपयोगी सामान का उत्पादन तथा नवीन मॉड़लों का अन्वेषण उनसे बड़ी कक्षाओं के विद्यार्थियों ने किया है जो उनमें भी ऐसा कुछ करने की प्रबल इच्छा उत्पन्न होगी । आवश्यकता पड़ने पर वे इन कार्यो से सम्बन्धित आवश्यक जानकारी और कौशल भी अपने बड़े भाईयों से ग्रहण कर सकते है और इस तरह से अनायास ही वे बहुमूल्य समाजपयोगी उत्पादक कार्य ग्रहण करने में समर्थ हो सकते हैं ।

5. अपने हाथ से कार्य करने के अवसर प्रदान करना

छोटे बालकों को अवलोकन तथा अनुकरण सम्बन्धी सभी आवश्यक अनुभव प्रदान करने के पश्चात् स्वयं अपने हाथ से उन्हे कार्य करने के अवसर प्रदान करना भी बहुत आवश्यक है ।

प्रारम्भिक कक्षाओं के बालको से यद्यपि विभिन्न कार्यो से मम्बन्धित श्रमिक दक्षता, कार्यकुशलता और परिश्रमशीलता की आशा नहीं की जा सकती, परन्तु उत्पादन सामग्री की अच्छाई–बुराई सम्बन्धी मोटी–मोटी बातें तथा कौशल सम्बन्धी साधारण प्रवीणताओं का अर्जन उनके द्वारा अवश्यही इस स्तर पर हो जाना चाहिए ताकि औज़ारों के इस्तेमाल से सम्बन्धित उनका संकोच दूर हो सके ।

कागज, ऊन, सूत और मिट्टी के कार्य को छोटे बच्चों द्वारा अच्छी तरह से किया जा सकता है । अपने हाथ से घरेलू सस्ते रंग तैयार कर ये बच्चे चित्रकार और रंगसाज भी बन सकते है । घरो में फालतू समझ कर फैंकी जाने वाली तथा बाजार में सस्ते दामों पर बिकने वाली सामग्री से इनके द्वारा बहुत ही सुन्दर और उपयोगी वस्तुओं का निर्माण किया जा सकता है । प्रश्न यह नहीं कि इन बच्चों द्वारा कितनी सस्ती या साधारण सामग्री का निर्माण हो रहा है । प्रश्न यह है कि, क्या इनके निर्माण द्वारा बालकों को अपना सृजनात्मक प्रतिभा या रचनात्मक प्रवृत्ति को सन्तुष्ट करने का अवसर मिल रहा है या नहीं । उनमें हाथ से काम करने के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण विकसित हो रहा है या नहीं । जहां तक छोटे बालकों का प्रश्न हैं, हम देखते है कि ये मिट्टी तथा इस प्रकार की साधारण सामग्री द्वारा वस्तुएं तैयार करने तथा मरम्मत जैसे कार्य करने में बहुत रूचि लेते हैं, यहां तक कि वे अपने बढ़िया कपड़ों तथा चेहरे पर मिट्टी या कालिख आदि लगने की भी परवाह नहीं करते । हमें बालकों के इस स्वाभाविक उत्साह को बनाये रखना चाहिए । इस प्रकार के कार्यो को करते समय अध्यापक को यह ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि बालकों में काम करने सम्बन्धी अच्छी आदतें ही विकसित हो तथा कार्य और कार्यप्रणाली से सम्बधित उनकी सभी जिज्ञासाओं तथा शंकाओं का समाधान उन्हें मिलता रहे । इस स्तर पर बालको को कार्य प्रणाली से सम्बन्धित आवश्यक मुख्य–मुख्य सिद्धान्तों की जानकारी कराने का प्रयत्न अध्यापक द्वारा किया जाना चाहिए । किसी भी परिस्थिती में बालको को कार्य प्रणाली का वैज्ञानिक और तकनीकी गहराईयों में उतारने की चेष्टा प्राथमिक कक्षाओं में नहीं की जानी चाहिए क्योंकि इस प्रकार के ज्ञान को ग्रहण करने की न तो बालकों में मानसिक योग्यता ही पाई जाती और न ऐसा करने की इस स्तर पर कोई आवश्यकता है । इस प्रकार इस स्तर पर विद्यार्थियों को किसी गम्भीर तथा जटिल उत्पादन या मरम्मत सम्बन्धी कार्य में न उलझा कर सरल कार्यो जैसे गुड़िया, फीरकी बनाने, मोमबत्ती, चाकू, साबुन तथा अन्य कागज, मिट्टी आदि से सम्बन्धित कार्य करने में ही लगाने के प्रयास किए जाने चाहिए ।

माध्यमिक स्तर पर समाजपयोगी उत्पादक कार्य

प्राथमिक स्तर की पढ़ाई समाप्त कर बच्चे जब माध्यमिक स्तर में प्रवेश करते है तब उनसे आशा की जाती है कि उन्हे समाजपयोगी उत्पादक कार्य सम्बन्धी साधारण औज़ारों का प्रयोग करना आता हो, वे छोटे–मोटे मरम्मत के कार्य कर सकते हों तथा थोड़ी बहुत उपयोगी सामग्री का उत्पादन और निर्माण कर सकते हों । उनके इस प्रकार के ज्ञान, कौशल, रूचि तथा अभिवृत्ति के ऊपर ही आगे दिए जाने वाले अनुभवों की नीव रखी जानी चाहिए । माध्यमिक स्तर पर दिए जाने वाले अनुभवों के बारे में निम्न बातों को सामने रखकर चलना चाहिए–

1. औज़ारों के प्रयोग में अधिक कुशलता विकसित करना

इस स्तर पर बालकों का शारीरिक विकास इतना हो चुका होता है कि उनके अंग–प्रत्यंगों की

कार्यक्षमता इतनी बढ़ चुकी होती है कि वे अपने हाथ से काम में सहायक औज़ारों का अच्छी तरह संचालन कर सकते हैं । अध्यापकों द्वारा इस स्तर पर विद्यार्थियों को औज़ारों में कुशल प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए । कम से कम शक्ति लगा कर अधिक से अधिक उत्पादन अथवा सही देखभाल और मरम्मत का कार्य किस ढंग से किया जा सकता है, इस बात की ओर पूरा ध्यान दिलाना चाहिए ।

2. अधिक उपयोगी उत्पादन कार्य में जुटाना

प्राथमिक स्तर पर जहाँ बालकों से हम छोटे–छोटे निर्माण, मरम्मत तथा सामाजिक उत्पादन कार्य की आशा करते हैं, यहां इस स्तर पर इस आशा में भी वृद्धि होनी चाहिए । अब बालक और अधिक ऊचें स्तँर पर उत्पादन कार्य में जुट सकते हैं, कुछ अधिक पेचीदा मशीनों, उपकरणों तथा घर और फैक्टरी में काम आने वाली वैज्ञानिक और तकनीकी वस्तुओं की देखभाल, मरम्मत आदि के कार्य कर सकते है । इस स्तर पर विद्यार्थियों द्वारा अपनी रूचि के समाजपयोगी उत्पादक कार्य का चुनाव कर अधिक आयोजित ढंग से आगें बढ़ने की बात सोची जानी चाहिए ।

जो कुछ भी बनवाया जाए अथवा जिस प्रकार के उत्पादक कार्यो को छाँटा जाए उनके ऊपर भी ध्यान दिया जाना आवश्यक है । यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि–

(क) ऐसे कार्यो के लिए जिस प्रकार की सामग्री की आवश्यकता हो, वह बहुत महंगी न हो तथा जहाँ तक हो सके आसानी से स्थानीय रूप में उपलब्ध हो सकती हों ।

(ख) कार्य प्रणाली सम्बन्धी तकनीकी सरल हो,

(ग) जो कुछ भी बने उसका या तो कलात्मक या मनोरजन सम्बन्धी मूल्य हो या वह दैनिक उपयोग में आती हो । विद्यार्थियो द्वारा बनाई जाने वाली वस्तुओं को नियोजित ढंग से बेचने आदि के प्रबन्ध पर भी इस स्तर पर पूरा ध्यान दिया जाना आवश्यक है ताकि एक ओर तो ऐसे कार्यो को करने में जो खर्च आता है, वह पूरा हो सके तथा दूसरी ओर बालकों में आत्मनिर्भरता की चाह विकसित हो सके । वे अपनी पढ़ाई सम्बन्धी आवश्यकताओं को स्वयं पूरा कर सकें । माता–पिता द्वारा इसका निस्सन्देह स्वागत ही होगा और बालकों को भी हाथ से काम करने की दिशा में एक मनोवैज्ञानिक सहारा मिलेगा ।

3. सैद्धान्तिक ज्ञान प्रदान करना

प्राथमिक कक्षाओ में हम क्रियात्मक अनुभवों पर ही जोर देते है तथा सैद्धान्तिक ज्ञान सम्बन्धी सूक्ष्म बातों को आगे के लिए छोड़ते जाते है । माध्यमिक स्तर पर यह कमी पूरी की जानी चाहिए । अब बच्चे जिन समाजपयोगी उत्पादक कार्य को ग्रहण करें, उनसे सम्बन्धित सभी प्रकार की वैज्ञानिक और तकनीकी जानकारी उन्हें प्रदान की जानी चाहिए । इसके लिए किसी भी कार्य से सम्बन्धित बातों को सैद्धान्तिक रूप मे कक्षा में पढ़ाया जाना चाहिए अथवा कार्य करते हुए ऐसा क्यों होता है, कोई मशीन कैसे कार्ब करती है, उसमें कहां और कैसे कोई खराबी उत्पन्न हो सकती है, फिर उसे कैसे ठीक किया जा सकता है, इन बातों को सैद्धान्तिक रूप में समझा जाना चाहिए । माध्यमिक स्तर के बालकों से यह आशा की जानी चाहिए कि वे सामग्री, औजार तथा कार्य प्रणाली से सम्बन्धित सभी आवश्यक सैद्धान्तिक बातों को अच्छी तरह लिख कर वर्णन कर सकें और आवश्यक चित्र इत्यादि भी जांच सकें । अध्यापक द्वारा इन सभी बातों पर इन कक्षाओ में ध्यान दिया जाना चाहिए ।

सुधार के प्रयत्नों को प्रोत्साहित करना

माध्यमिक स्तर पर बालक जो भी कार्य करते

है उन्हें पुराने तरीकों से ही करने पर जोर देना ठीक नहीं । हमें यह सोचना चाहिए कि कार्य करने के ढंगों में निरन्तर सुधार होता आया है और आगे भी होता रहेगा । कम शक्ति लगा कर, कम से कम समय में अच्छे से अच्छा कार्य किया जा सके, इसके लिए हमें साधनों में नया कार्य करने के ढंगों में जो भी सुधार हो सकते हैं, उन्हें प्रोत्साहित करना चाहिए । अन्वेषण और सृजनात्मक प्रतिभा वाले बालकों को इसके लिए पूर्ण अवसर प्रदान किए जाने चाहिए चाहे यह रंगों या डिजाइनों में कुछ और निखार लाने की बात हो और चाहे तैयार माल में अधिक चमक और नयापन लाने की समस्या, चाहे कोई मशीन किस प्रकार ज्यादा उत्पादन दे सकती हो, और चाहे जमीन से अथवा किसी जानवर विशेष से अधिक उत्पादन लेने की बात, कार्य करने के तरीकों में सुधार लाया जा सकता है । बच्चों को अपने ज्ञान क्षेत्रों जैसे विज्ञान और तकनीकी विषयों, कलात्मक और वाणिज्य आदि विषयों से सम्बन्धित ज्ञान आदि की सहायता ले कर समाजपयोगी उत्पादक कार्य सम्बन्धी क्रियाओं में जो कुछ भी नयापन वे ला सकते हो, लाने का प्रयत्न कराया जाना चाहिए ।

5. बालकों को समाज सेवा के कार्यों में लगाना

विद्यालयों में समाजपयोगी उत्पादक कार्य प्रदान किए जाने का मुख्य उद्देश्य विद्यालय और समाज के आपसी सम्बन्धों को अधिक गहरा और मधुर बनाना है तथा विद्यार्थियों की समाज उपयोगी कार्य में रुचि विकसित कर उन में हाथ से काम करने की आदत डालनी है । इस दृष्टि से माध्यमिक स्तर के बालकों को समाज सेवा के कार्यों में हाथ बटाने के अवसर उपलब्ध कराए जाने चाहिए । अध्यापक के नेतृत्व में विद्यार्थियों को समुदाय विशेष की चाहे वह शहरी हो या ग्रामीण आवश्यकताओं और कठिनाईयों को अनुभव कर उन्हें हल करने के लिए आगे आना चाहिए । आने-जाने के रास्ते ठीक नहीं है, पीने के पानी की समस्या है या किसी स्थान पर गन्दा पानी इकट्ठा हो कर मलेरिया का साधन बना हुआ है अथवा गन्दे नाले और मोरियो के रूके पानी ने नाक में दम कर रखा है, ऐसे सभी कार्यों में समाज सेवा के बहुमूल्य अवसर पड़े हुए हैं । इनकी ओर विद्यार्थियों को अवश्य ही मोड़ा जाना चाहिए ताकि वे वास्तविक समाजपयोगी उत्पादक कार्य प्राप्त कर समाज का अधिक से अधिक उपकार कर सकें ।

❑❑

प्रवक्ता, अध्यापक शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी.
नई दिल्ली

समाचार पत्र एवं बाल साहित्य

❑ विमला रस्तोगी

भारत को बच्चों का देश कहना अतिशयोक्ति न होगी । हमारी कुल जनसंख्या के 42% बच्चे 15 वर्ष से कम उम्र के हैं । सभी बच्चों की संख्या अनुमानतः 28 करोड़ से कम न होगी । दुनियां में कई देश ऐसे हैं जिनकी आबादी भी इतनी न होगी । अतः हमारे देश के बच्चो से एक अलग देश तक बन सकता है ।

आज के वैज्ञानिक युग में माता–पिता और शिक्षक सभी की आशाओं का केन्द्र दिन ब दिन बच्चे ही बनते जा रहे हैं । अभिभावक उन्हें डरा धमका कर उनपर किताबों का बोझ लादकर उन्हें अपनी आकांक्षाओं की कठपुतली बना देते हैं । इच्छाओं का बच्चों पर लादना उनके विकास की सबसे बड़ी बाधा बन जाती है । उसे बचपन में ही बड़ा बना दिया जाता है ।

यह सही है कि आज का बालक तेज, बुद्धिमान और बुद्धिजीवी भी है । उसकी मानसिक भूख बड़ी विकट है, वह उपदेश और धर्मनीति की कथाओं से लेकर इतिहास, मनोविज्ञान, भूत–प्रेत, परी और जासूसी कथाओं तक को पढ़ लेता है और पचा डालता है । अतः बच्चे के पठन–पाठन में अखबारों के माध्यम से बाल साहित्य की आवश्यकता और भी बढ़ जाती है ।

बच्चा एक अंकुर होता है, अंकुर ही नन्हा पौधा बनता है, नन्हा पौधा वृक्ष बन फलता–फूलता है । अंकुर रूपी इन बच्चों का संरक्षण के साथ मानसिक विकास होना बहुत जरूरी है । बच्चो को जीवन के नैतिक मूल्यों से अवगत कराने के साथ–साथ उन्हें आधुनिक संसार की नित नई खोजों और प्रगति की जानकारी देना आवश्यक है । यद्यपि आज का बालक अपने आसपास घटित होने वाली घटनाओं से अपरिचित नहीं है, उसका मन बहुत जिज्ञासु है, उसकी जिज्ञासाओं का क्षेत्र विस्तृत है । उसके जिज्ञासु मन की जिज्ञासा शान्त होनी बहुत जरूरी है जिसे केवल पाठ्य–पुस्तकें शान्त नहीं कर सकतीं । क्योंकि पाठ्य–पुस्तकें हर सप्ताह नई नहीं बन सकती, उसका उतना मनोरंजन भी नहीं कर सकतीं । यह काम हिन्दी के साप्ताहिक पत्रों में प्रकाशित होने वाली मैगजीन का 'बाल जगत', बच्चों का कोना' 'चुनमुन दुनियां' आदि बखूबी कर सकते हैं । इसमें बच्चो की जिज्ञासा शान्त करने के साथ–साथ उनका मनोरंजन करने की भी क्षमता होती है । बाल साहित्य की पहली विशेषता उसका मनोरंजक होना है । हिन्दी के लगभग सभी समाचार पत्रो में रविवार के दिन पूरा एक पेज बच्चों को समर्पित होता है जिसमें वैज्ञानिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, जासूसी और प्रेरक कथाओं के साथ–साथ जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से जुड़ी दुनियाभर की जानकारियां होती हैं यथा–

– मछली डूबकर मर सकती है ।
– कभी दिन आठ घन्टे का होता था ।
– कपकपी से हमें गर्मी मिलती है ।

- विश्व की दस लम्बी नदियां ।
- दुनिया का सबसे बड़ा घर ।
- जब बच्चों ने विमान चलाया – आदि कुछ जानकारियों के शीर्षक हैं । आइये हम अन्य पहलूओ की चर्चा करें ।

पत्रकारिता अपने आप में एक कला है

पुराने समय से आज तक पत्रकारिता ने अपने महत्व को बराबर बनाए रखा हैं । दिन ब दिन मीडिया प्रगति पर है और आज सबसे सशक्त संचार माध्यम है । समाचार पत्र पढ़ने से बच्चे का भाषिक कौशल, कल्पना–शक्ति, निरीक्षण–शक्ति और सामयिक जानकारी बढ़ती है । अखबारो में छपा बालसाहित्य मनोरंजन के साथ–साथ बच्चों की शिक्षा में भी सहायक होता है ।

मुख्य रूप से भाषा के चार पहलू हैं–

- पढ़ना
- लिखना
- सुनना
- चिन्तन करना या चिन्तन करके बोलना ।

इस प्रत्येक पहलू को समाचार पत्र अपने माध्यम से पल्लवित, पुष्पित करते हैं ।

पढ़ना

अखबार में प्रकाशित बाल साहित्य पढ़ने में रोचक होता है । कुछ अखबार बच्चो के पन्ने को रंगीन निकालते हैं इसीलिए और भी आकर्षक हो जाते हैं । रविवार के दिन विशेष रूप से बच्चे अपने इस पन्ने को पढ़ते हैं जो गागर में सागर छिपाए रहता है । इसको पढ़ने से उनकी पाठ्य–क्षमता, प्रवृति और गति सभी मे प्रगति होती है । अखबार पढ़ने वाला बच्चा अपनी पाठ्य–पुस्तक को शुद्ध और अच्छी तरह पढ़ लेता है । रविवार के दिन बच्चों के पन्ने पर एक आधुनिक परिवेश की कहानी तथा एक प्रेरककथा या विज्ञान कथा होती है जिसे पढ़कर बच्चा प्रेरणा के साथ कुछ अच्छी बातें ग्रहण करता है या कर सकता है । अध्यापक गण भी इन कहानियों मे छिपी शिक्षा को बच्चों को अच्छी तरह समझा सकते हैं । पाठ्य–पुस्तक से मिली–जुली कहानियां हल्की–फुल्की भाषा मे पढ़कर बच्चे को सुखद अनुभव होता है । चित्रकथा भी वह चाव से पढ़ता है ।

लिखना

रविवारीय समाचार पत्र मे एक या दो बालगीत अवश्य होते है जिनमे कुछ शिशु गीत कक्षा एक से कक्षा तीन तक के बच्चो के लिए होते है तथा बालगीत उससे अधिक आयु के बच्चो के लिए । बच्चा अपनी पसन्द का बालगीत अपनी कापी पर लिख सकता है, लिखकर उसे याद भी कर सकता है जैसे 'गड़बड़झाला' शीर्षक के बालगीत की कुछ लाइनें देखें–

कोयल के सुर मेढक बोले
उल्लू दिन में आंखे खोले
सागर मीठा, चन्दा काला
फिर क्या होगा,
गड़बड़झाला ।
दादा मांगे, दांत हमारे
रसगुल्ले हो, खूब करारे
चाबी अन्दर, बाहर ताला
फिर क्या होगा
गड़बड़झाला ।

इसे 'हास्य बालगीत' कहा जा सकता है । इसी तरह के अन्य गीत अपनी कापी पर लिखकर बच्चे याद करें । लिखने से जल्दी याद होता है और संजोयन की प्रवृत्ति बढ़ती है । आजकल सरकारी और पब्लिक स्कूलों में कोई एक विषय देकर अखबारों में से कटिंग काटकर उन्हें स्क्रैप पेपर पर चिपका कर फाइल बनवाई जाती हैं । कटिंग का विवरण बच्चे कटिंग के नीचे लिखते हैं, अधिकांशत. विज्ञान और खेलो के विषयो पर फाइल बनवाई जाती है । अखबारों को बच्चों के पाठ्यक्रम में शामिल करने का यह एक अच्छा तरीका है । बच्चे अपनी रूचिनुसार अखबार में से चुटकुले, पहेलियां या कोई विशेष जानकारी अपनी कापी पर उतार सकते हैं।

बालगीतों को अपनी कापी पर उतारने या लिखने के माध्यम से बालसाहित्य बच्चे में लेखन प्रवृत्ति को बढ़ावा दे सकता है जो अत्यन्त आवश्यक है । अधिकांशतः देखा जाता है बच्चे पाठ्यपुस्तकों से संबधित लेखन के अतिरिक्त कुछ भी लिखना नहीं चाहते, आठवी या दसवीं कक्षा पास कर लेने के बाद भी उन्हें दो चार लाइनें लिखने में असुविधा महसूस होती है ।

सुनना

पढ़ने लिखने के बाद नम्बर आता है सुनने सुनाने का । अध्यापकों को चाहिए वह सप्ताह में एक दिन दो पीरियड कहानी, कविता, गीत, चुटकुले, पहेलियां आदि सुनने के लिए रखे । अध्यापक गण बाल साहित्य की इन विधाओं को याद कर सुनाने या लिखकर सुनाने के लिए बच्चो को प्रेरित करें । अपनी कक्षा में अपने सहपाठियों के समक्ष कविता, कहानी आदि सुनाने से बच्चे में साहस की वृद्धि होती है उसमें स्वय को व्यक्त करने की क्षमता का विकास होता है । अपने सहपाठियों के सामने कोई भी रचना सुनाने वाला बच्चा किसी विशेष अवसर (जैसे कोई त्यौहार और जयन्तियां आदि) पर पूरे स्कूल के समक्ष स्टेज पर सस्वर कविता पाठ कर सकता है, वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में भाग ले सकता है । सांस्कृतिक कार्यक्रमों में पुरस्कार जीत कर अपना व अपने स्कूल का नाम बढ़ा सकता है । अतः अध्यापकों को चाहिए कि कक्षा में छः या सात बच्चों के अलग-अलग ग्रुप बना दें, प्रत्येक ग्रुप का एक नाम रख दें और प्रत्येक ग्रुप को उसकी रूचिनुसार बाल साहित्य की कोई भी विधा याद कर सुनाने को दें । बच्चे आपस में मिलकर बाल नाटक भी खेल सकते हैं । संवाद बोलने से संप्रेषण क्षमता बढ़ती है । बाल साहित्य की विधाओं को सुनकर सुनाकर बच्चे भाषा के नए आयाम सीखते हैं ।

चिन्तन

पढ़ने के बाद चिन्तन कर बोलना भाषा का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू है । पढ़ने के बाद सोचने से बच्चे के अन्दर विश्लेषण करने की क्षमता का विकास होता है । बाल साहित्य की दृष्टि से हम इस पहलू को इस तरह चरितार्थ कर सकते हैं कि अध्यापक किसी एक समाचार पत्र में छपी कहानी को बच्चों को सुनाए फिर उनसे पूछे कि इसमें क्या शिक्षा छिपी है या लेखक इस कहानी के माध्यम से क्या कहना चाहता है । अध्यापक उस कहानी की एक-एक प्रति (फोटोस्टेट कराकर) प्रत्येक बच्चे को दे और उसे सोचने के बाद जवाब देने को कहे । प्रत्येक बच्चा चिन्तन और सोच विचार के बाद या आपस में खुसर-पुसर करके अप्रत्यक्ष रूप से उस कहानी में छिपी शिक्षा अध्यापक को बताएगा । वह सही अथवा गलत कुछ भी हो सकती है लेकिन बच्चे की चिन्तन शक्ति को अवश्य बढ़ाएगी । इस तरह का चिन्तन बच्चों को अपठित गद्यांश या पद्यांश में उसके प्रश्न उत्तर देने या शीर्षक बताने में सहायक होता हैं ।

कई स्कूलों में प्रार्थना के बाद उस दिन के समाचार पत्र की खास खास खबरें छात्र बारी बारी से सुनाते हैं । इन खबरों का चुनाव छात्र स्वयं करते हैं । यह चिन्तन कर बोलने की दिशा का ही एक सफल प्रयास है । जिन स्कूलों में ऐसा चलन नहीं है वह प्रारम्भ कर सकते हैं । रविवारीय बच्चों के पन्ने पर 'दिनमान टाइम्स' सप्ताह की खास खबरें छापता हैं ।

नैतिक मूल्यों की स्थापना

अपनी रविवारीय मैगजीन में बाल कहानी के द्वारा समाचार पत्र बच्चों में नैतिक मूल्यो के प्रति जागरूकता बढ़ा रहे हैं । नैतिक मूल्यो से संबंधित पाठ बच्चों की पाठ्य पुस्तक में भी होते हैं, किन्तु आजकल नगर महानगर फैल रहे हैं, जिन्दगी की भागदौड़ बढ़ गई है, संयुक्त परिवारों के टूटने से बच्चे दादा दादी और नानी के प्यार एवं कहानियों से वंचित हैं । छोटी सी आयु में उन्हें तरह-तरह की समस्याओ और तनावों से जूझना पड़ रहा है विशेषकर महानगरों के बच्चों को । तनाव से मुक्ति के लिए बच्चा मनोरंजन चाहता है । वह मनोरंजन पाठ्य-पुस्तकों से अधिक बाल कहानियों या बाल साहित्य में ढूंढता है । बच्चों की तनाव से मुक्ति और जीवन मूल्यों से उन्हें परिचित कराने के लिए बाल साहित्य की आवश्यकता तेजी से महसूस की जा रही है जो मनोरंजन के साथ-साथ जीवन में सदा काम आने वाले नैतिक मूल्यों जैसे- सदा सच बोलना, चोरी न करना, अच्छी संगति, बड़ों का आदर करना, मेहनत से जी न चुराना, चुगली न करना, अपाहिजों की मदत करना आदि, से बच्चो का संबंध स्थापित कर सकें, उन्हें अच्छाइयों के करीब ले जाए जिसके सहारे भविष्य में आने वाले प्रत्येक संकट का वह बिना डगमगाए सामना कर सके ।

समाचार पत्रों मे प्रकाशित होने वाली कहानियां, चित्र कथाएं, प्रेरक कथाएं किसी न किसी रूप में बच्चे को नैतिक मूल्यों से जोड़ती हैं । अतः बच्चों को पाठ्य-पुस्तकों के साथ-साथ सस्ता, सुलभ ज्ञानवर्द्धक अच्छा बालसाहित्य भी चाहिए । समाचार पत्रों का बाल साहित्य इस दिशा में अपनी भूमिका बखूबी निभा रहा है । इसके स्वरूप को और भी निखारा जा सकता है ।

सोवियत रूस में बाल साहित्य पर हमारे देश से बहुत अधिक ध्यान दिया जाता है । वहां पुस्तकों के दाम कम और छपाई अधिक आकर्षक है । वहां चलते-फिरते पुस्तकालय भी है । वहां बच्चों में पुस्तकें और समाचारपत्र बहुत लोकप्रिय हैं । अमेरिका जैसे विकसित देश मे अध्यापक और अभिभावक संघ है । एक नियत दिन संघ के अभिभावक सदस्य स्कूल में आकर बच्चों को कथा, कहानियां सुनाते हैं, उनसे सुनते है जिससे बच्चे का कई स्तरों पर मानसिक विकास होता है । बच्चा संचार माध्यमों से जुड़ा रहता है । भारत में भी बच्चों के लिए बाल विश्वविद्यालय की स्थापना की गई है ।

कल्पना शक्ति व रचना शक्ति का विकास

प्रारम्भ मे बच्चा कल्पना में जीता है । वह सच-झूठ, कल्पना और यथार्थ में अन्तर नहीं कर पाता । ऐसे में बच्चे को पढ़ने के लिए ऐसी सामग्री दी जाए जो उसे अपनी माटी, परिवेश, प्रकृति, पेड़-पौधे, और पशु-पक्षियों के साथ जोड़ सके, जिससे बच्चे का बौद्धिक विकास हो सकें या हम कह सकते है कि बच्चा बौद्धिक आकाश पा सके । इसके लिए समाचार पत्र मे प्रकाशित, बाल कविताएं, बाल गीत और लोक कथा एवं बाल कथाओं में

पेड़–पौधों और जानवरों के प्रति सहृदय रहने की प्रेरणा बच्चे को दी जाती है । पेड़–पोधों व पशु–पक्षियों का मानवीकरण करके कथाएं लिखी जाती है जिससे बच्चे का सीधा तादाम्य स्थापित हो सके । समाचार पत्रो का बाल साहित्य पढ़कर बच्चे की कल्पना शक्ति का विकास होता है । 'जनसत्ता' अपने रविवारीय परिशिष्ट के एक अलग कालम में बच्चों की स्वरचित रचनाए छापता है । 'चौथी दुनियां' नामक साप्ताहिक बच्चो के पन्ने 'चुनमुन दुनियां' का संपादन प्रत्येक सप्ताह किसी एक बच्चे से करता है । उस बच्चे का सचित्र परिचय प्रकाशित होता है जिससे बच्चे की अलग पहचान बनती है । बच्चा सृजनात्मक लेखन की ओर प्रेरित होता है । 'कहानी पूरी करो' शीर्षक से समाचार पत्र में कोई एक अधूरी कहानी प्रकाशित होती है, बच्चे उस कहानी को अपनी कल्पनाशीलता के आधार पर पूरी करके भेजते है, कहानी गुणवत्ता के अनुसार क्रम से बच्चों के नाम, पते प्रकाशित किए जाते है । कभी कभी प्रथम, द्वितीय, तृतीय पुरुस्कार भी दिए जाते हैं । कक्षा में अध्यापक गण भी बच्चे के मानसिक स्तर के अनुसार कोई भी विषय देकर उसपर कहानी या लेख लिखने के लिए कह सकते हैं । इसके लिए बच्चों को कम से कम 15 दिन का समय दिया जाए । लेखन संबंधी मोटी मोटी जानकारी बच्चों को देने के लिए समय समय पर स्कूल में बाल साहित्यकारों को भी आमन्त्रित किया जा सकता है । प्रतिवर्ष स्कूल मैगजीन में बच्चों की रचनाएं प्रकाशित कर अध्यापक उन्हें सृजनात्मक लेखन की ओर अधिक प्रवृत कर सकते है ।

भारतीय सभ्यता, संस्कृति का ज्ञान भी बालक पाठ्य–पुस्तकों के साथ–साथ समाचारपत्रों में प्रकाशित बाल–साहित्य में पा सकता है । तमाम प्रकार की जानकारियो का अथाह समुद्र होता है रविवारीय समाचार पत्र दैनिक हिन्दुस्तान में 'पिटारा' शीर्षक के अर्न्तगत देश–विदेश की सभी तरह की जानकारी गत वर्षो से लगातार दी जा रही है । दिमागी कसरत भी करातें है समाचार पत्र जिससे अप्रत्यक्ष रूप से बच्चे की बुद्धि प्रखर होती है ।

'बच्चो के पठन पाठन में समाचार पत्रों में प्रकाशित बाल साहित्य की *उपयोगिता*' विषय अत्यन्त विशद है । कुछ पन्नों में इसे नहीं बांधा जा सकता । दूरदर्शन के चमत्कारिक मोहजाल के बाद भी समाचार पत्र बच्चों के लिए अपनी उपयोगिता बनाए हुए हैं । केवल हमें यह जानने की जरूरत है कि समाचार पत्रों के माध्यम से बच्चों को क्या पढ़ाए ? कैसे पढ़ाए ? उसे क्रियात्मक रूप किस तरह दे ? उन्नति के प्रत्येक क्षेत्र मे प्रतियोगिता भरे इस युग में बच्चों के पठन–पाठन में समाचार पत्रो का महत्व बहुत अधिक है । इन्ही के द्वारा बच्चा समय के साथ आगे बढ़ना सीखता है ।

अध्यापक गण अभिभावकों को भी यह समझा सकते है कि समाचार पत्र लेना या बच्चे द्वारा पढ़ना धन व समय की बरबादी नहीं, सदुपयोग है । इसके अच्छे परिणाम दीर्घकालिक हैं । बाल साहित्य की लेखिका होने के नाते मैंने बच्चो के मनोविज्ञान का, उनकी प्रगति का, बड़ी बारीकी से अध्ययन किया है । मेरा 17 वर्षीय पुत्र 6 वर्ष की आयु से आज–तक नियमित रूप से समाचार पत्र पढ़ता है । पढ़ाई में खासे अच्छे नम्बर लाता है, उसका सामान्य ज्ञान विशाल है, मैं इसे समाचार पत्र तथा मैगजीन की ही देन समझती हूँ । ❑❑

127, गगन विहार
दिल्ली

शिक्षको ने लिखा है

वैदिक रीति से गुणा – निखिल विधि

❑ बैजनाथ शर्मा

जोड़–बाकी, गुणा–भाग की वैदिक क्रियायें बहुत पुरानी और अभ्यास करने पर बहुत ही सरल भी हैं। वैदिक रीति से गुणा करने की मूलतः दो विधियाँ हैं-

(1) निखिल
(2) अर्ध्वतिर्यक

निखिल विधि से गुणा

निखिल विधि से गुणा करने का सूत्र है–

''निखिलंनवत श्चरम् दशतः

अर्थात– (सभी 9 से और अन्तिम 10 से)

गुणनफल–प्रक्रिया

– सबसे पहले गुणा की जाने वाली संख्याओं को देखिए। ये संख्याएें (24 × 45), (135 × 195) . . . . आदि की भाँति समान अंकों की होगी या फिर (25 × 159), (135 × 21345) आदि की भाँति असमान अंकों की।

– दोनों संख्याओं का वास्ताविक गुणा करने से पूर्व संख्याओं के आधार खोजिए। आधार खोजते समय ध्यान रखिए–दो अकों की संख्या का आधार 10 से और तीन अको की संख्या का आधार 100 से भाज्य होना चाहिये और संख्या के निकटतम होना चाहिए। यह आधार होगा– 24 के लिये 30; 45 के लिये 50; 195 के लिये 200; आदि।

– यदि दोनों संख्याओ के आधार में बहुत अधिक अन्तर न हो तो बड़ी संख्या के आधार को ही दोनों संख्याओं का आधार माना जा सकता है।

– गुणनफल में इकाई का अंक ज्ञात करने के लिये दोनों संख्याओं को आधार में से अलग–अलग घटाइए और शेष बची हुई राशियों का आपस में गुणा कर दीजिए। यह गुणनफल यदि एक ही अंकों में है तो वही इकाई का अंक होगा और यदि गुणनफल दो या दो से अधिक अंकों में है तो उनमें जो अंक इकाई के स्थान पर होगा वहीं गुणनफल की इकाई का अंक होगा, (50–24=26) और (50–45=5) में इकाई 0। गुणनफल में इकाई का अंक ज्ञात करने के पश्चात् आगे की राशी को तीन प्रकार से जाना जा सकता है–

(अ) दोनो संख्याओं के योग (24+45=69) में से आधार को घटाकर $\frac{\text{आधार}}{10}$ का गुणा करने पर :– $(69-50) \times \frac{50}{10} = 95$

अथवा

(ब) दोनों शेष बची हुई संख्याओं के योग में से आधार को घटाकर $\frac{\text{आधार}}{10}$ से गुणा करने पर:- $[50-(26+5),] \times \frac{50}{10} -$ 95

अथवा

(स) बड़ी संख्या में से बड़े अन्तर (45−26=19) या छोटी सख्या में से छोटे अन्तर (24−5=19) को $\frac{\text{आधार}}{10}$ अर्थात $\frac{50}{10}$ से गुणा करने पर ।

– इस प्रकार तीनों तरीकों में से किसी भी तरीके से प्राप्त राशी में उस राशी को और जोड़ दें जो इंकाई का अंक जानते समय इकाई के पश्चात् शेष बची थी । यथा 26 और 5 का गुणा करने पर 0 को रखने के पश्चात् 13 को 95 में जोड़कर '0' के आगे रख दीजिए । संख्या होगी– 1080 । यही अभीष्ट गुणनफल है । यह तो हुआ समान अकों वाली संख्याओं का गुणनफल । यदि गुणा की जाने वाली संख्याओं में अंकों की समानता नहीं है तो गुणनफल प्रक्रिया कुछ भिन्न होगी ।

असमान अंकों वाली संख्याओं का 'निखिल' विधि से गुणनफल

मान लीजिए–

प्रश्न है– 24 × 159 का मान ज्ञात कीजिए ।

इन संख्याओं के गुणनफल के लिए आधार दो प्रकार से निश्चित किया जा सकता है–

(अ) दोनों संख्याओं के लिये एक ही आधार मानना ।

(ब) दोनों संख्याओं के लिये अलग अलग आधार मानना ।

पहली स्थिति में आधार बड़ी संख्या से आगे की 10 या 100 से भाज्य सख्या (160 या 200) को ही आधार मानना होगा और गुणनफल ज्ञात करने की शेष क्रिया ठीक ऊपर की भाँति होगी ।

दूसरे रूप में

– इकाई का अंक तो पहली भाँति ही ज्ञात किया जा सकता है, शेष परिवर्तन नीचे दिए हुए रूप में होगा–

– दोनो संख्याओं को उनके लिये माने गये आधारों में से घटाइए यथा–

24 के लिए आधार = 30
159 के लिए आधार = 160

आधार मे से मूल संख्याओ को घटाने पर

30 − 24 = 6 अर्थात इकाई का अंक 6 × 1 = 6 होगा ।
160 − 159 = 1

– इसके पश्चात् बची हुई राशियों 6, 1 को मूल संख्याओं में से अलग–अलग घटाइए–
24 − 6 = 18
159 − 1 = 158

– इस प्रकार बची हुई राशियों में से पहली राशि को दूसरी संख्या के आधार तथा दूसरी संख्या को पहली संख्या के $\frac{\text{आधार}}{10}$ से गुणा कर दीजिए; अर्थात्

$$18 \times \frac{16\not{0}}{1\not{0}} = 288$$

$$158 \times \frac{3\not{0}}{1\not{0}} = 474 \text{ आया}$$

- इन दोनों संख्याओं अर्थात 288 एवं 474 को जोड़कर आधा कर दीजिए और इकाई के अंक से आगे रख दीजिए यथा–

$\frac{288 + 474}{2} = \frac{762}{2} = 381$ को इकाई के अंक 6 से आगे रख दीजिए । यह संख्या होगी– 3816

यह अभीष्ट गुणनफल है ।

विशेष

- यह क्रिया प्रारम्भ में तो बड़ी कठिन प्रतीत होती है परन्तु अभ्यास करने पर बड़ी सरल लगने लगती है ।
- बड़ी संख्याओं के गुणनफल के लिये यह बड़ी उपयोगी विधि है ।
- यदि दो से अधिक कितनी ही संख्याओं का गुणनफल एक साथ ज्ञात करना हो तो वह दो दो के जोड़ों में ही करना पड़ेगा, यथा– 139 × 25 × 350 × 131 का गुणनफल ज्ञात करने के लिये पहले 139 × 25 तथा 350 × 131 का गुणनफल ज्ञात कीजिए और बाद में गुणनफलों का गुणनफल ।

आधार संख्या एक अंक के लिए 10; 50 से अधिक की संख्याओं के लिये 100 तथा 500 से अधिक की संख्याओं के लिये 1000 मानी जाय तो गुणा की प्रक्रिया और भी सरल हो जाती है ।

❑❑

लोकमान्य तिलक शिक्षक
प्रशिक्षण महाविद्यालय, डबोक
(उदयपुर)

ज्ञान पिपासा कैसे जागृत करें

❑ राजमल डांगी

तारों का अर्थ है जगमगाना । जगमगाते तारे दूसरों से प्रशंसा प्राप्त करने के लिये कोई प्रयास नहीं करते । तारों की बात इसलिये कही जाती है कि तारों के प्रकाश ने मेरे मनमन्दिर में ऐसी ज्योति जगाई कि मेरा ध्यान तन मन से उस भूख को तृप्त करने के लिये लालायिम रहता है, जिसे शिक्षा–शास्त्री 'ज्ञान पिपासा' कहते हैं ।

ज्ञान पिपासा क्या है ? क्या ज्ञान बालकों तक पहुँचाया जाता है ? क्या यह एक ऐसा वाद्य है जिसे बांसुरी की तरह जब चाहा तब सुर छेड़ दिया । क्या तोते कि भांति मस्तिष्क को व्यायाम देने का नाम ही 'ज्ञान पिपासा' है ? अनेक सवालों का जवाब नहीं मे दिया जा सकता है ।

तो फिर ज्ञान पिपासा कौन–सा उत्पादन है, इसे कहां और किस तरह पैदा किया जा सकता है ? आइये इस मंथन में शायद हमें ज्ञान पिपासा के कुछ तन्तु प्राप्त हो सकें और हम शिक्षक जगत के इस पहलू पर ऐसे सूत्रों और तथ्यों के प्राप्त करने में पूर्णतः न सही आंशिक रूप से ही सफल हो सकें ।

ज्ञान पिपासा तत्काल तैयार करनी पड़ती है । ज्ञान जो देना है, पुस्तकों में जो लिखा है उसे ऐसे ढंग से प्रस्तुत करने की क्षमता उत्पन्न करने के लिये पहले बालकों के चेहरे पर एक मिनीट तक निरीक्षण कीजिये । इस निरीक्षण विधि में कैमरामैन की बुद्धि का उपयोग करना है जो एक ही नजर में एक ग्रुप की स्थिति का अवलोकन कर लेता है । कैमरामैन की विधि से निरीक्षण करने से हमें शीघ्र ही कक्षा की स्थिति का पता चल जायेगा । बालकों की मनःस्थिति का पता लगाने की आदत बन जाने के कारण बाद में हमे इस काम में इतना आनन्द आने लगेगा कि कभी–कभी बालक आश्चर्य में पड़ जाते है कि अध्यापक को यह सब कैसे मालूम हुआ ।

बालकों के अन्तःकरण में झांककर देखना पड़ेगा कि वे क्या चाहते है ? इससे हम शीघ्र ही इस तथ्य पर पहुंच सकते है कि आज गम्भीर विषय में बालक रूचि लेगें अथवा उकता जायेगें । मुझे इस विषय में कपड़े के अच्छे दुकानदार से बड़ी प्रेरणा मिली जो आपकी सूरत और पाकिट का अन्दाज शीघ्र लगाकर ऐसा कपड़ा और कलर बताता है कि आपको पसंद ही आए । फिर उसका कपड़ा बताने का ढंग और कपड़ा देखकर आपका मन भी कपड़ा लेने को हो जायेगा ।

अक्सर नया विषय गम्भीर हो और कठिन हो तब कभी–कभी बड़ी समस्या पैदा कर देता है । खासतौर पर उस समय शिक्षक को भी उकताहट आ जाती है । उनकी छात्रों के समझने की क्षमता बिलकुल कमजोर हो जाती है । ऐसी स्थिति में मुकाबला करने के लिये मुझे बालक की दिनचर्या या वातावरण के माध्यम से उस विषय को समझाने में

बड़ी ही सफलता मिली । उदाहरण के तौर पर मैं नगर पालिका के कार्य विषय पर पढ़ाने के लिये कक्षा में गया । विश्रान्ति के पश्चात् छात्रों का ध्यान आकर्षित करने मे असुविधा होने पर दैनिक जीवनचर्या के माध्यम से विषय को सरल और रूचिकर बनाने में मुझे ऐसी प्रसन्नता हुई की शाला के पश्चात् में घर आकर विषयो को सरल बनाने की विधि पर कुछ समय तक मनन करता रहा ।

समय और परिस्थितियो के अनुसार हम उस विषय को यथार्थ जीवन से जोड़ कर विश्वसनीय रूप से नीचे स्तर के बालकों को उठाया जा सकता है । कक्षा से भागने वाले बालकों को दूसरे दिन भागने से रोका जा सकता है ।

केवल यहीं एक तरीका कोई 'रामबाण औषधी' है जिससे हम 'ज्ञान पिपासा' के क्षेत्र में अच्छी सफलता प्राप्त कर सकते है ऐसी बात नहीं । ऐसे अनेक साधनों की खोज की जा सकती है । सवाल चिन्तन–मनन का है । यदि हमें पढ़ाने मे रूचि है तो हम ऐसे उपाय ढूंढ ही लेगें जो शाला, शहर, बालकों, पालकों की स्थानीय विषम परिस्थितियों के होने पर हमें अपने लक्ष्य तक पहुंचने मे सहायता दे सकें ।

मनन और चिन्तन में रूकावट

मनन और चिन्तन एक आध्यात्मिक पहलू है जो शिक्षक इस क्षेत्र मे प्रयत्नशील रहते हे उन्हें वेतन, प्रतिष्ठा और समय का विचार नही रहता है । वे तो उस जुआरी की तरह अपने कार्य में मग्न रहते है जो हार जीत का ख्याल किये बिना निरन्तर बाजी लगाता रहता है ।

ज्ञान विकास के क्षेत्र में ज्ञान पिपासा जागृत करने से कक्षा में अनुशासन, विषय के प्रति प्रेम तो उत्पन्न होता ही है किन्तु सबसे बड़ी प्रसन्नता तो उस समय होती है जब बालक पढ़ाई में मग्न होता है । ❑❑

ज्ञान पिपासा
13/2, रामटेकरी, मन्दसौर,
मध्यप्रदेश

विचार

इक्कीसवीं सदी के द्वार पर शिक्षा का भविष्य

❑ डा. अश्वनी कुमार गौड़

भारत आज इक्कीसवीं सदी के द्वार पर खड़ा है । जिन बच्चों ने 1990 में जन्म लिया है, वे सन् 2001 तक अपनी प्रारम्भिक शिक्षा ही पूरी कर पायेंगें । उन्हें अनजाने में अनेक गम्भीर समस्याओं से जूझना होगा । इस सम्बन्ध में एल्विन टोफलर ने अपनी फ्यूचर शोक (1970) नामक पुस्तक में बतलाया कि भविष्य मे ऐसे अप्रत्याशित, औद्योगिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तन बहुत तेजी से होने जा रहे है, जिनसे उन लोगों को जो उनके लिये पहले से मनोवैज्ञानिक रूप से तैयार नहीं होंगें, गम्भीर झटका लगेगा । यही कारण है कि भविष्य के प्रति आज समाज का प्रत्येक वर्ग जागरूक हो रहा है ।

वस्तुतः समाज के कुछ व्यक्ति भूत कालीन घटनाओ का आलाप करते हैं । कुछको "वर्तमान" की चिन्ता होती है, तो कुछ भविष्य के बारे में सोचते हैं कि 21वीं सदी में समाज की क्या आवश्यकता होगी और इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये किस प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता पड़ेगी । इसी प्रत्यय को "शिक्षा के भविष्य" की संज्ञा प्रदान की गई हैं ।

वस्तुतः आज विश्व के प्रत्येक राष्ट्र के निवासियों ने अपने को "आने वाले कल" के लिये तैयार करना प्रारम्भ कर दिया है व "आने वाले कल" को नये-नये नामों से सम्बोधित किया हैं । इन नये-नये नामों में अन्तरिक्ष युग (स्पेस ऐज), सूचनायुग (इनफोरमेशन ऐज), इलेक्ट्रानिक काल (इलेक्ट्रोनिक इरा), टेक्नोलॉजी युग, उत्तर उद्योग समाज (पोस्ट इन्ड्रसट्रियल सोसाइटी) व विज्ञान तकनीकी क्रान्ति (टैक्नोलोजिकल रिवोल्यूशन) आदि प्रमुख नामों की संज्ञा प्रदान की जाती है । आल्विन टाफलर ने आगे आने वाले युग को अति औद्योगिक समाज (सुपर इन्ड्रसट्रियल सोसाइटी) वाला युग कहा हैं । इस नये समाज में व्यक्तियों की जीवन शैली, विभिन्नीकृत एवम् पुनः बदली जा सकने वाले शक्ति-श्रोतों पर आधारित होगी । इस युग में, उत्पादन की जो प्रणाली प्रचलित होगी, उसमें वर्तमान की अनेक फैक्ट्रीयां बेकार हो जायेंगी । परिवारों का स्वरूप बदलेगा और नये-नये संस्थान बनेंगे जिन्हें हम "इलैक्ट्रानिक घर (इलेक्ट्रानिक कोटेज) कह सकेंगे । इसी प्रकार भविष्य के विद्यालय तथा संस्थायें बदल जायेंगी ।

यहीं प्रश्न खड़ा होता है : किस प्रकार के भविष्य में भविष्य शास्त्रियों की रूचि होती है ?

भविष्यों के प्रकार

भविष्य तीन प्रकार के हो सकते हैं-

1. संभावित भविष्य

2. निश्चितता पूर्ण संभावित भविष्य
3. अभीप्सित पसन्द किये हुये भविष्य

संभावित भविष्य

ऐसे भविष्य जिनका घटित होना आवश्यक नहीं है, फिर भी घटित हो सकते है । हमारी अनेक कल्पनाये इसी श्रेणी के भविष्य् के अन्तर्गत आयेगी ।

निश्चितता पूर्ण सम्भावित भविष्य

ऐसे भविष्य जो निराधर कल्पनाओ पर आधारित न होकर, पूर्णतः तर्कपूर्ण आधारो पर घटित होते हैं । ऐसी तर्कपूर्ण कल्पनाये इसी श्रेणी के भविष्य मे आयेंगी ।

पसन्द किये गये भविष्य

ऐसे भविष्य जिन्हें साकार करने के लिये न केवल हम जिज्ञासु होते हैं अपितु तदनुरूप प्रयास भी करते हैं, उन्हें इस श्रेणी के भविष्य के अन्तर्गत रखा गया है ।

भविष्यशास्त्र मानव जीवन के भविष्य से सम्बन्धित होने के कारण, इसकी जीवन के प्रत्येक पहलू में रूचि होती हैं तथा यह पसन्द किये हुये भविष्यों में अधिक दिलचस्पी रखता हैं ।

वास्तव में कुछ लोग भूत के सुख–दुख गाते रहते हैं, कुछ को "आज" की चिन्ता होती है तो कुछ भविष्य में क्या–क्या विकल्प हो सकते हैं ? उनमें से किस–किस का हमें चयन करना है ? भविष्य मे कौन–कौन से अप्रत्याशित झटके आ सकते हैं जिनसे हमें आगामी पीढी व समाज को बचाना है आदि अनेक प्रश्नों पर चिन्तन करते रहते हैं किन्तु यह अटूट सत्य है कि वर्तमान पर भविष्य टिका हुआ हैं और वर्तमान को सहारा देने के लिये अतीत पीछे खड़ा हैं । अतः यह आवश्यक हो जाता है कि भविष्य की कल्पना के पहले वर्तमान को देखें, उसकी कमियों के आधार पर शिक्षा का पुनर्निर्माण करें ।

शिक्षा का भविष्य

समाज में नये–नये परिवर्तन होते हैं । परिणाम स्वरूप शिक्षा जगत में भी परिवर्तन होते जाते हैं । इन परिवर्तन के कारण ही शिक्षा गत्यात्मक प्रक्रिया के रूप मे जानी जाती है, क्योकि सामाजिक परिवर्तनो के प्रभाव से शिक्षा जगत अछूता नहीं रहता है, यही कारण है कि हमे इस सन्दर्भ में यह देखना होगा कि भविष्य में हमारी विभिन्न आवश्यकताये क्या–क्या रहेंगी और उन आवश्यकताओ की परिपूर्ति के लिये किस प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता पड़ेगी ? हमारी शिक्षा संस्थाओं का स्वरूप कैसा होगा ? हमारे शिक्षक कैसे होंगे ? व हमें अन्य व्यवस्थाये व तैयारियां किस प्रकार करनी होगी आदि अनेक प्रश्न विचारणीय हैं ।

आज सम्पूर्ण संसार में यह स्वीकार किया जा रहा है कि विद्यालयो में सिखाने–पढ़ाने के स्थान पर सर्वत्र सीखने का प्रर्यावरण तैयार किया जावे जिसमें सीखने वाला स्वयं अपनी प्रेरणाओं से प्रेरित होकर अनेक प्रकार के ज्ञान सीखने के अवसर देने वाली औपचारिक व अनौपचारिक व्यवस्थाओं का लाभ उठाये हुये अपने लक्ष्य की ओर बढ़े । किन्तु विधि की विडम्बना है कि वर्तमान शिक्षा में आमुग्र परिवर्तन की बात कही जाती है क्योंकि आज की शिक्षा नारे बाजी की शिक्षा है जो खोखले आदर्श व नारो रूपी अफीम के नशे में जनता को गुमराह रखती है जो जन साधारण को शोषणकर्ताओं का भौतिक, मानसिक और सांस्कृतिक तीनों रूपो मे दास

बनाये हुये हैं तथा उस पर राजनीतिज्ञ, समाज शास्त्री व सरकार आदि वाणी रूपी अस्त्रों से प्रहार कर रहे हैं। छात्र मूक श्रोता बनकर, "बेचारी शिक्षा" को दयनीय दृष्टि से देख रहे हैं क्योंकि वे कुछ कर पाने में असमर्थ हैं। यदि कुछ करते हैं तो उन्हें दिशाहीन उच्छखल कहकर नजरअन्दाज किया जाता है। जब तक शिक्षा का यह वर्तमान प्रारूप जिसे "बैंकिंग मॉडल ऑफ एजूकेशन" कहा गया है, नही बदला जाता और उसके स्थान पर आत्मा को झकझोर देने वाली तथा अपनी समस्याओ से स्वयं जूझने की सामर्थ्य उन्पन्न करने वाली शिक्षा का आत्मा के सबलीकरण वाली शिक्षा का प्रारूप, जिसे मैक्सिको के सुप्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री पावलोफ्रेरे ने अपनी बहुचर्चित पुस्तक "एजूकेशन ऑफ दी ओप्रेसड" (1973) में प्रस्तुत किया है, व्यवहार में प्रयोग नहीं किया जाता तो भारतीय समाज का शोषण व अन्य समस्याओं का अन्त नहीं हो पायेगा। अतः विश्व भर में, जो महान आश्चर्यजनक वैज्ञानिक व प्रौद्योगिक उन्नति हो रही है उनकी चुनौतियां भी भारतीय शिक्षा को स्वीकार करना होगी। ये निम्न प्रकार है–

- पिछले 50–60 सालों से ऐसे आविष्कारो की संख्या में वृद्धि हो रही है, जो कि दिल को दहला देने वाली है। इनका मानव जीवन के सभी पहलुओं पर प्रभाव पड़ रहा हैं।
- आज मानव के स्थान पर नई–नई मशीनें "सीखने के मॉडल" के रूप में कार्य कर रही हैं।
- आज मशीनों द्वारा, द्रुतिगति से होने वाले उत्पादन के फलस्वरूप उपभोक्ताओं में "उपभोग करो और फैंक दो" की मनोवृत्ति विकसित हो रही हैं।
- भविष्य में मूल्य परिवर्तित होने से मानवों की जीवन–शैली आज जैसी न होकर, जटिल एवम् गम्भीर होगी।
- टौफलरन अपनी पुस्तक "दी थर्ड वेव" मे सम्भावना व्यक्त की है कि भविष्य में घर "इलैक्ट्रानिक कौटेज" होंगे और अधिकांश लोग दफ्तरों या काम के स्थानों पर जाने के स्थान पर घर पर ही रहकर विद्युत यन्त्रो द्वारा, अपने दफ्तरों, अन्य कार्यालयों, केन्द्रों, पुस्तकालयों, संस्थाओं, व्यक्तियो से सम्पर्क बनाते हुये अपने जीवन साथियों के साथ मिलकर अपना काम करते होंगे।
- टौफ्लर के अनुसार मानव की पसन्दों मे जबरदस्त परिवर्तन होगा।

इस प्रकार उक्त चुनोतियों का सफलतापूर्वक सामना करने वाली व शिक्षा प्रदान करने वाली संस्थाओं का स्वरूप निम्नानुसार बनाना होगा–

- वृहद स्तर पर टेलीविजन, वीडियो, रेडियो, शिक्षण मशीन व कम्प्यूटर आदि का प्रयोग करते हुये जन साधारण को शिक्षित करना होगा।
- जन संख्या में अत्यधिक वृद्धि होने से शिक्षा का प्रसार करना होगा व विद्यालय भवन व साधनों का प्रयोग चौबीस घंटे पारियों में करना पड़ेगा।
- स्थान–स्थान पर विद्यालय खोलने के स्थान पर हमें "सीखने के जाल" निर्मित करने होंगे।
- नॉनफारमल एजूकेशन के अन्तर्गत खुले विश्वविद्यालय, पत्राचार पाठ्यक्रम व प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों की संख्या में वृद्धि करनी होंगी।
- नवाचारों हेतु प्रयोगशालाओं की व्यवस्था करनी होगी।

उक्त विशेषताओं से युक्त भविष्य की शिक्षा संस्थाओ में परम्परागत शिक्षकों की तुलना में नये प्रकार के शिक्षकों की आवश्यकता होगी जो भावी समाज मे नेतृत्व कर सकें । भविष्य का शिक्षक निम्न विशेषताओं से युक्त होगा–

- वह अपने विषय में ही नहीं अपितु विभिन्न क्षेत्रो में अच्छा ज्ञान रखता हो ।
- वह परिवर्तित भावी समाज के मूल्यों से युक्त व्यक्तित्व वाला हो ।
- वह भावी समाज मे होने वाले परिवर्तन, सामाजिक सुधार एवम् सामाजिक परिवर्तन के दर्शन का ज्ञाता हो ।
- वह नवीन तकनीकी, व्यावहारिक कुशलता, विधियों, प्रविधियों आदि क्षेत्रों में दक्षता से युक्त हो ।
- वह भावी समाज में होने वाले ज्ञान के विस्फोट हेतू उपयुक्त सामग्री का चयन कर सके ।
- वह टेलीविजन, रेडियो, वीडियों व शिक्षण मशीन आदि हेतु पाठ निर्मित करने में कुशल हो ।
- वह ऐसा सहृदय, प्रेरणादायक व जनतंत्रिय शिक्षक हो जो आत्मा को झकझोर देने वाली शिक्षा प्रदान कर सकें ।

निष्कर्षतः शिक्षक अपने छात्रों में सही प्रकार का ज्ञान, सही प्रकार के मूल्य, सही प्रकार की कुशलतायें व सही प्रकार के चिन्तन को उत्पन्न कर सकें । ऐसा वह निम्न प्रकार से कर सकता है—

प्रत्यक्ष शिक्षा

इसमे शिक्षक अपने छात्रो को भविष्य में होने वाले परिवर्तन, सम्भावनाओं, परिणाम सम्बन्धी ठोस जानकारी, अपने मत, आंकड़े, चित्र, रेखाचित्र, मॉडल, आदि प्रस्तुत कर सकते हैं ।

भविष्य सम्बन्धी खेल

इसमे शिक्षक अपने छात्रों मे विभिन्न खोजों, घटनाओं, विकल्पों आदि के द्वारा भविष्य के चेतना का विकास कर सकते हैं जैसे––

- इक्कीसवीं सदी में, भारतीयो का पारिवारिक जीवन कैसा होगा ?
- इक्कीसवीं सदी में कौन–कौन सी महत्वपूर्ण घटनायें घटने वाली है ?
- इक्कसवीं सदी मे विद्यालयो, शिक्षकों, छात्रों, शिक्षण विधियों, प्रविधियों आदि नवीन अभिनवों का क्या स्वरूप होगा ?
- इक्कीसवीं सदी में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक व्यवस्था का स्वरूप कैसा होगा ?

शिक्षक उपरोक्त प्रकार के प्रश्नों के समाधान हेतु, चिन्तन से भविष्य चेतना का विकास कर सकता है । इसके अतिरिक्त शिक्षक, विद्यालय में "फ्यूचर कौसिल" को संगठित करके भविष्य सम्बन्धी विषयों पर भाषण, गोष्ठी, सेमीनार, फिल्म शो, नाटक, ड्रामा, आदि आयोजित कराकर, छात्रो में भविष्य के प्रति चेतना का विकास कर सकेगा ।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि इक्कीसवीं सदी में मानव जीवन के संपूर्ण विकास के लिये भविष्य विज्ञान की बड़ी ही उपयोगिता है । ❑❑

शिक्षा संकाय, डी. ई. आई.
दयालबाग, आगरा

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद् नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित प्राइमरी शिक्षक एक त्रैमासिक पत्रिका है।

इस पत्रिका का उद्देश्य केन्द्रीय सरकार की शिक्षा नीतियों से संबधित आधिकारिक जानकारी को शिक्षको और सम्बद्ध प्रशासको तक पहुचाना है। इसका उद्धेश्य कक्षा में इस्तेमाल की जा सकने वाली सार्थक और सम्बद्ध सामग्री प्रदान करना भी है। भारत के विभिन्न केन्द्रो मे चल रहे पाठ्यक्रमों और कार्यक्रमो आदि के बारे मे समय समय पर इसमे सूचनाएं प्रकाशित होती रहती है। शिक्षा-जगत् मे होने वाली हलचलों पर विचार-विमर्श के लिए यह एक मच का काम भी करती है।

इस पत्रिका के प्रमुख स्तम्भ हैं—

(1) प्राथमिक शिक्षा से सबधित शैक्षिक नीतिया।

(2) प्रश्न और उत्तर।

(3) राज्यो के समाचार।

(4) कक्षा मे इस्तेमाल की जा सकने वाली सचित्र सामग्री।

स्कूलो के शिक्षको की रचनाए प्रकाशनार्थ आमत्रित हैं। हर प्रकाशित रचना पर पारिश्रमिक की व्यवस्था है। लेख हिन्दी या अंग्रेजी मे कागज के एक ओर लिखा होना चाहिए। सुविधा के लिए कृपया टाइप की गई या साफ-साफ, सुन्दर अक्षरो मे लिखी रचना की दो प्रतियां भेजे।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद द्वारा प्रकाशित महत्वपूर्ण पत्रिकाएं

1.	भारतीय आधुनिक शिक्षा, त्रैमासिक	: एक प्रति 4 रुपये, वार्षिक मूल्य	16.00 रु.
2.	प्राइमरी शिक्षक, त्रैमासिक	: एक प्रति 2 रुपये, वार्षिक मूल्य	8.00 रु.
3.	इंडियन एजुकेशनल रिव्यू (अग्रेजी), त्रैमासिक	: एक प्रति 9 रुपये, वार्षिक मूल्य	34.00 रु.
4.	जरनल आफ इंडियन एजुकेशन (अंग्रेजी), द्विमासिक	: एक प्रति 4 रुपये, वार्षिक मूल्य	22.00 रु.
5.	स्कूल साइंस (अग्रेजी), त्रैमासिक	: एक प्रति 4 रुपये, वार्षिक मूल्य	16.00 रु.
6.	द. प्राइमरी टीचर (अग्रेजी), त्रैमासिक	: एक प्रति 2 रुपये, वार्षिक मूल्य	8.00 रु.

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली- 110016 के लिए सचिव द्वारा प्रकाशित तथा ए जे प्रिन्टर्स, 5 बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली- 110002 द्वारा मुद्रित।

रजि नं. 32427/76

प्राइमरी शिक्षक

वर्ष 16 अंक 2 अप्रैल 1991

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्राइमरी शिक्षक

वर्ष 16 | अंक 2 | अप्रैल 1991

इस अंक में

सम्पादकीय

प्राथमिक शिक्षा और नई दिशाएं

काफी बड़े अन्तराल के बाद हमारी पत्रिका सम्पादकीय के साथ प्रस्तुत है । आन्तरिक कठिनाइयों के कारण हमारी पत्रिका के प्रकाशन तथा वितरण दोनों में ही व्यवधान पड़ा, जिसके लिए हमें सचमुच खेद है । किन्तु इस बीच प्रत्येक क्षेत्र में बहुत कुछ घट गया है, जैसे राममूर्ति समिति संगठित हुई और इसकी रपट भी पेश हुई। शैक्षिक चर्चायें देश-विदेश के घटनाक्रमों में कुछ इस प्रकार से उलझी कि सामूहिक सुनियोजित रूप से उनका प्रकाशन तथा प्रसार भी नहीं हो पाया ।

एक बात जो काफी स्पष्ट रूप से उभर कर आई है उसका सम्बन्ध इस स्तर की उपलब्धियों से है । अपने में प्राथमिक शिक्षा का स्तर उठ नहीं पाया है, लेकिन प्राथमिक विद्यालयों की दशा तथा उसके अध्यापकों में कई परिवर्तन हुए है । पुस्तकों के आकार तथा पाठ्य-वस्तु में सुधार हुआ है । अध्यापको के शैक्षिक स्तर को सुधारने के लिए अत्यन्त प्रयत्न हुए हैं किन्तु हम अभी भी किसी ठोस योजना को लेकर प्रस्तुत नहीं हो पाये हैं, अतः अपने में यह दुख की बात है कि हमारे सन्मुख कोई विशेष विकल्प भी नहीं है । अनौपचारिक शिक्षा अपना रूप बदलकर औपचारिक होने वाली है, यही सब हमें किसी प्रकार की सान्त्वना नहीं दे सकता । इस क्षेत्र में वास्तव में क्या हो जिससे न केवल हम राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के बनने में मदद कर सके वरना स्वयं राष्ट्र को एक आधुनिक स्तर दे पायें । हमारे जैसे राष्ट्र सदैव इसी कल्पना लोक में जीवित रहते हैं कि एक दिन हम भी विकसित देशों की भांति अपनी शिक्षा प्रणाली को साधन-सम्पन्न बनायेंगे तथा राष्ट्र के विकास के लिए कार्यरत होंगे। परन्तु यथार्थ शंकराचार्य के शब्दों में यह केवल "भ्रम " ही समझ पड़ता है । "कौन सोचेगा यह सब ?" यही हमारी आपकी चिन्ता का विषय नहीं होना चाहिए आगे आइये और कुछ कीजिए हमारा तो यही आह्वान है ।

❑ राजेन्द्र पाल सिंह

प्राथमिक स्तर पर कार्यानुभव

❑ डा. मंजीत सेन गुप्त

प्रस्तावना

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 ने कार्यानुभव को सोद्देश्य और सारगर्भित शारीरिक कार्य के रूप मे परिकल्पित किया है । इसका क्रियान्वयन सीखने की प्रक्रिया के अभिन्न अंग के रूप मे किया जाता है। कार्यानुभव कार्यक्रम के फलस्वरूप छात्रो द्वारा वस्तुओं अथवा समाजोपयोगी सेवाओं की सृष्टि होती है ।

प्राथमिक स्तर पर कार्यानुभव के उद्देश्य शिक्षा के सामान्य उद्देश्यों से मेल खाते है इस छोटी आयु में बच्चे केवल मात्र कापी-किताब से चिपके रहना पसन्द नहीं करते । उन्हे स्कूल, घर या समाज में चल रही असख्य क्रियाओं में भाग लेने में अत्यधिक आनन्द आता है । स्वयं कार्य करने की इस नैसर्गिक प्रवृत्ति का लाभ उठाकर कार्यानुभव क्रियाओं के माध्यम से उनमे स्वास्थ्य, पर्यावरण स्वच्छता तथा सौन्दर्य सम्बन्धी वांछित अभ्यासों का विकास किया जा सकता है । विभिन्न सेवा प्रदान करने वाले सस्थानो के अवलोकन द्वारा तथा बच्चो को छोटे-छोटे उत्पादक कार्यों मे संलग्न कर उनमे श्रम के प्रति जागरूकता उत्पन्न की जा सकती है ।

कार्यानुभव की विषय वस्तु

प्राथमिक स्तर पर कार्यानुभव क्रियाएं सरल और आनन्दप्रद होनी चाहिए । विद्यालय की दिनचर्या में इन क्रियाओं को कई रूपों मे सम्मिलित किया जा सकता है जैसे पर्यावरण अध्ययन के रूप मे, विभिन्न कार्य प्रक्रियाओं के आलोचना के रूप मे, स्थानीय तथा कम कीमत की सामग्री से उपयोगी वस्तुओ के निर्माण के रूप में तथा रोचक रचनात्मक क्रियाओ के माध्यम से पठन पाठन के रूप मे । इस आयु सीमा के बच्चो को यथासम्भव ऐसी क्रियाओं को करने का अवसर दिया जाना चाहिए जिनके माध्यम से उनकी कल्पना साकार हो सके । क्रियाओं के दौरान बच्चो द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार की सामग्रियों तथा औजारों के प्रयोग की गुंजाइश होनी चाहिए । छोटी-छोटी टोलियों या दलों में सामूहिक रूप से काम करना भी अपने आप मे एक लाभदायक अभ्यास है ।

स्वभावतया प्राथमिक स्तर के बच्चे किसी कार्यविशेष पर अधिक देर तक ध्यान केन्द्रित नहीं रख पाते । अतः इस स्तर पर भाति-भांति के क्रियाकलापो का समावेश करना उपयोगी होगा।

"क्या आप विद्यालय के आन्तरिक क्रियाकलापो या विद्यालय परिसर से संबंधित ऐसी छोटी-छोटी क्रियाओं की एक सूची बना सकते हैं जिनका कार्यान्वियन बच्चों के एकल या सामूहिक सहयोग से किया जा सके ?"

कार्यानुभव के लिए क्रियाओं का चयन

कार्यानुभव कार्यक्रम की सफलता बहुत हद तक

क्रियाओं के सही चयन पर निर्भर करती है । क्रियाओं के चयन मे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वे बच्चों के मानसिक व शारीरिक स्तर के अनुकूल हों, उनकी जिज्ञासा की संतुष्टि कर सकें तथा इनके माध्यम से उनमें कार्य के प्रति निष्ठा व सामाजिक मूल्यो का विकास किया जा सके । प्रत्येक क्रिया के तीन पहलू हो सकते हैं :

1. कार्य स्थितियो का निरीक्षण व समस्याओं की पहचान ।
2. कार्य स्थितियों में सक्रिय रूप से भाग लेना ।
3. उपलब्ध बेकार या कम कीमत की सामग्री द्वारा उपयोगी या कलात्मक वस्तुओं का निर्माण—

"उपर्युक्त मानदंडों को ध्यान में रखते हुए क्या अब आप ऐसी कार्यानुभव क्रियाओं की सूची बना सकते हैं जिनको आप अपने विद्यालय में लागू करना चाहेंगे ?"

कार्यानुभव का अध्यापन

प्राथमिक स्तर पर कार्यानुभव के लिए सम्पूर्ण विद्यालय समय सीमा का 20 प्रतिशत भाग सुरक्षित रखा गया है । उदाहरण के तौर पर यदि सप्ताह में 45 पीरियड की पढ़ाई होती है तो उनमे से 9 पीरियड कार्यानुभव के लिए निर्धारित किये जाने चाहिए। कार्यानुभव कार्यक्रम के क्रियान्वयन में विद्यालय के सभी अध्यापक यहां तक कि अन्य कर्मचारी भी भाग ले सकते है । कार्यानुभव के लिए विभिन्न स्कूली विषयों की विषय वस्तुओं से संबंधित अनेक क्रियाओं का चयन भी किया जा सकता है । इन कियाओं द्वारा न केवल विषयवस्तु को समझाने में आसानी होगी बल्कि साथ ही साथ विषयवस्तु के प्रभावी अध्यापन के लिए सहायक सामग्री का सृजन भी हो सकेगा । समय-समय पर आमंत्रित कुशल कारीगरों द्वारा कौशल का प्रदर्शन भी छात्रो की जिज्ञासा तृप्ति में सहायक होगा —

"क्या आप विभिन्न विषयों के पाठ्यक्रमों से संबंधित क्रियाओं की एक विस्तृत सूची बना सकते हैं ? क्रियाओं का चयन विषयवार कीजिए।"

एकल अध्यापक विद्यालयों में कार्यानुभव क्रियाओं के कार्यान्वयन करते समय छात्रों को पाँच अलग-अलग कक्षाओं में बाँटने की आवश्यकता नहीं है । उनको दो या तीन समूहों में, किये जाने वाले कार्यों के अनुरूप विभाजित किया जाना चाहिए । क्रियाओं को छात्रो द्वारा करवाते समय अपेक्षाकृत बड़े छात्रों की सहायता लीजिए जो अपने छोटे साथियों का मार्गदर्शन कर सकते है ।

आवश्यक सामग्री

कार्यानुभव के लिए आपरेशन ब्लेक बोर्ड के अन्तर्गत जो सामग्री विद्यालय को प्रदान की गई है उनका उपयोग किया जाना चाहिए । इसके अतिरिक्त भी विद्यालय में तथा आस-पास के समुदाय में से ऐसी अनेक बेकार वस्तुओं जैसे कागज़, अखबार, डिब्बे, गत्ते, खिलौनो आदि का संकलन किया जा सकता है जिनका उपयोग आसानी से छोटी-मोटी शैक्षिक चीजों को बनाने के लिए किया जा सकता हो । जैसे मारबल पेपर बनाना, रेखागणितीय मॉडल बनाना, लिफाफे थैले, कागज के खिलोने, फाइल कवर, झंडियाँ आदि बनाना —

"समुदाय व स्कूल में उपलब्ध ऐसी सामग्रियों या सुविधाओं की एक सूची बनाइए जिनका उपयोग कार्यानुभव क्रियाओं के लिए किया जा सकता है ।

उपसंहार

ऊपर दिए गये वर्णन से यह स्पष्ट है कि प्राथमिक स्तर पर बच्चों की विविध प्रकार की क्रियाएं उपलब्ध करानी चाहिए । क्रियाओ की एक ऐसी खुली सूची बनाई जा सकती

है जिसमें बच्चों के मानसिक व भौतिक विकास के अनुकूल यथासंभव विविधता प्रदान की गई हो। कार्यानुभव के कार्यान्वयन में विद्यालय-समूह (काम्पलेक्स) भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। प्राथमिक कक्षाओं में केवल उन सामग्रियों व औजारों को प्रयोगात्मक सूची में सम्मिलित किया जाना चाहिए जो कोमल व लचीली प्रकृति की हों। कार्यानुभव कार्यक्रम की विषय वस्तु एक ओर तो बच्चों की आवश्यकताओं पर आधारित होंगी तथा दूसरी ओर विद्यालय एवम् समुदाय में उपलब्ध सुविधाओं व संसाधनों द्वारा परिसीमित होंगी। आवश्यकता इस बात की है कि प्राथमिक अध्यापक बच्चों की प्राकृतिक नैसर्गिक रुझान को समझ व उनको चुपचाप बिठाकर व्याख्यान देने के स्थान पर शैक्षिक क्रियाकलापों में उनका सक्रिय सहयोग प्राप्त करें ताकि पठन-पाठन की प्रक्रिया सजीव, क्रियाशील और अनुभव प्राप्ति पर आधारित हो सके।

□□

प्रवाचक
शिक्षा व्यवसायीकरण विभाग
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और
प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली

प्राथमिक कक्षाओं मे रचना-शिक्षण

❑ भगवतीलाल व्यास

भाषा-शिक्षण में चार बुनियादी कौशल हैं — सुनना, बोलना, पढ़ना और लिखना। प्राथमिक स्तर के भाषा-शिक्षक को अपने छात्रों में ये चारों कुशलताएं विकसित करने के लिए यथेष्ट परिश्रम करना चाहिए।

रचना-शिक्षण का सम्बन्ध चौथी कुशलता अर्थात् "लिखने" से है। इस कुशलता के लिए पूर्वावश्यकताएं इस प्रकार होंगी —

1. अक्षरों की बनावट जानना, समान आकृति में अंतर जानना।
2. संयुक्त अक्षरों को इस प्रकार लिख सकना जिससे वे सही रूप में पढ़े जा सकें।
3. वाक्यों का सही गठन कर सकना।
4. विराम चिन्हों का सही प्रयोग कर सकना।
5. दो शब्दों के बीच की दूरी तथा दो पंक्तियों के बीच की दूरी में समान अंतर रखने का ज्ञान।
6. अनुच्छेद रचना के सामान्य नियमों की जानकारी।
7. वर्तनी की शुद्धता का ध्यान रखना।
8. देखकर लिखना, सुनकर लिखना आदि क्रियाओं का अभ्यास।

प्राथमिक स्तर पर रचना-शिक्षण के उद्देश्य

1. छात्र देखी गई, सुनी गई या अनुभव की गई सामग्री को लिखकर अभिव्यक्त कर सकेंगे। जैसे गांव का मेला, खेत का दृश्य, दवाखाना, बस स्टैण्ड, त्यौहार आदि विषयों पर स्वतंत्र रूप से आठ-दस वाक्य लिखना।
2. वे शुद्ध वाक्य रचना कर सकेंगे।
3. वे अपने भावों को लिखकर प्रकट कर सकेंगे।
4. वे अपने आयु-स्तर के अनुरूप मौलिक-चिन्तन का परिचय लिखित अभिव्यक्ति में कर सकेंगे।
5. वे लिखने के शिष्टाचार का पालन कर सकेंगे।

रचना-शिक्षण का महत्व

ऊपर जिन भाषायी कुशलताओं का जिक्र किया गया है उनमें सबसे पहली कुशलता बोलना है। बोलना वह कुशलता है जिसका उपयोग और अर्जन बालक विद्यालय आने से तीन–चार वर्ष पूर्व से कर रहा होता है अर्थात् परिवार और समाज रूपी पाठशाला में वह विभिन्न प्रसंगों पर मौखिक भाषा का उपयोग सीख चुका होता है फिर भी शाला में इस प्रथम कौशल के विकास की तरफ अपेक्षित ध्यान देना आवश्यक है, भाषा का सम्बंध अनुकरण और अर्जन से है इसलिए भाषा सीखने की प्रक्रिया लगातार चलती रहती है। शाला में भी और उसके बाहर भी।

भाषा शिक्षण को इस कौशल की ओर ध्यान देना इसलिए आवश्यक है कि —

1. बालक प्रवाहपूर्ण ढंग से बोल सकें।

2. वह शब्दों का शुद्ध उच्चारण कर सकें ।
3. वह अवसरानुरूप अपनी बात कह सकें ।
4. वह किसी दृश्य,अथवा घटना का अपने शब्दों में बोल कर वर्णन कर सकें ।
5. वह बोलने के शिष्टाचार का पालन कर सकें ।

मौखिक अभिव्यक्ति का सीधा संबध लिखित अभिव्यक्ति से है । देवनागरी लिपि की विशेषता यह है कि इसमें जो ध्वनि जिस तरह उच्चरित होती है उसी तरह लिखी जाती है । अंग्रेजी की तरह इसमें उच्चरित और लिखित भाषा में अंतर नहीं है-जैसे अंग्रेजी मे "सी" का उच्चारण दो प्रकार से होता है "क" और "स"-इसी प्रकार अंग्रेजी में बहुत सी ध्वनि मौन होती हैं अर्थात् उनका उच्चारण नहीं होता जैसे साइकालोजी में "पी" का उच्चारण नही होता, काम शब्द में "ल" का उच्चारण नहीं होता। परन्तु देवनागरी लिपि में इस तरह का कोई प्रावधान नहीं है ।

वर्तनी संबंधी शोधों से यह निष्कर्ष सामने आया है कि अशुद्ध वर्तनी के लिए अशुद्ध उच्चारण बहुत बड़ी सीमा तक जिम्मेदार है । इसलिए यदि हम एक भाषा अध्यापक के रूप में चाहते हैं कि हमारे विद्यार्थियों की लिखित अभिव्यक्ति त्रुटिपूर्ण न हो तो हमे उनकी मौखिक अभिव्यक्ति पर भी ध्यान देना होगा ।

कई विद्वान तो यहाँ तक मानते हैं कि अशुद्ध उच्चारण और अशुद्ध लिखित अभिव्यक्ति अधूरी शिक्षा की निशानी है ।

यदि हम संपूर्ण जीवन के संदर्भ में देखें तब भी हमें पता चलेगा कि मौखिक भाषा का उपयोग सामान्यतः सब लोग अपने कार्य-व्यवहार में करते हैं। जो किसी विद्यालय में नहीं पढ़े वे भी इसका प्रयोग करते हैं और विद्यालयों में पढ़े हैं वे भी करते हैं । यदि इन दोनों के अभिव्यक्ति के ढंग में अंतर नहीं है तो फिर विद्यालयों की आवश्यकता ही क्या है ?

इसलिए प्राथमिक शाला के अध्यापकों को चाहिए कि वह अपने छात्रों को अधिक से अधिक बोलने का अवसर दें । आगे जाकर यही बालक देश का नागरिक बनेगा। हमारे लोकतंत्र का अंग बनेगा ।

यदि हमने इसमें बोलने के सही ढंग का विकास नहीं किया तो शायद यह एक नागरिक के नाते भी अपनी भूमिका का उचित निर्वाह न कर सके ।

कई बार ऐसा देखा जाता है कि हम अध्यापकों को न बोलने वाले बच्चे ज्यादा प्रिय लगते हैं इसलिए हम उन्हें बोलने के लिए कहने की बजाय चुप रहने को कहते हैं । यदि बच्चा कोई जिज्ञासा प्रकट करता है तब भी हम डाट-डपट कर चुप रहने को मजबूर कर देते हैं । शायद इस भय से कि वह जिज्ञासा ऊटपटांग हुई तो कक्षा में हंसी फूट पड़ेगी या "अनुशासन" भंग हो जाएगा । कई बार अध्यापक स्वयं जिज्ञासा का समाधान नहीं जानता इसलिए वह उसे प्रकट होने का अवसर देने से पहले ही नष्ट कर देता है ।

पता नहीं यह हम अध्यापकों की कैसी विसंगतिपूर्ण मनस्थिति है जिसके कारण हमें खिलखिलाते फूल, लहलहाती और झूमती धान की बालियां, गुनगुनाते भौंरे, कल-कल करते झरने और पक्षियों का चहकना तो सहन हो जाता है पर बच्चों का खिलखिलाना, गुनगुनाना, उछलना, कूदना, बोलना, प्रश्न करना अच्छा नहीं लगता । सोचना चाहिए कि बगीचे के फूलों में और कक्षा की क्यारी में उगे इन फूलों में हम आखिर इतना फर्क क्यों करते हैं ।

आइए, हम अपने मूल विषय "रचना-शिक्षण" की ओर लौटें ।

हम यह जान चुके हैं कि मौखिक अभिव्यक्ति लिखित अभिव्यक्ति की नींव है और हम यह भी जानते हैं कि नींव कच्ची होगी तो इमारत बुलंद नहीं हो सकती इसलिए रचना शिक्षण की उन्नति के लिए —

1. हम अपने बच्चों की बात को धैर्यपूर्वक सुनें ।
2. बच्चों को किसी दृश्य, घटना या अनुभूति का वर्णन करने को कहें ।
3. उनसे प्रश्न करें ।
4. उन्हें भी प्रश्न करने के लिए प्रोत्साहित करें ।
5. उनके साथ किसी भी विषय पर, जो उनकी रुचि और स्तर का हो, बातचीत करें ।
6. उनके द्वारा की गई अभिव्यक्ति को उचित सम्मान दें ।
7. उत्तर का जितना अंश सही हो उसे मान्यता दें तथा अशुद्ध अंश को शुद्ध करने के लिए अवसर ही न दें बल्कि अपनी ओर से यथोचित संकेत भी दें ।

इन प्रयत्नों से यदि हमनें छात्रों की मौखिक अभिव्यक्ति का स्तर समुन्नत कर दिया तो लिखित अभिव्यक्ति और रचना-शिक्षण का कार्य भी काफी सरल हो जाएगा ।

रचना-शिक्षण के रूप

प्राथमिक स्तर पर मुख्यतः हम निम्नांकित तीन रूपों को आधार बना कर रचना-शिक्षण करवा सकते हैं —

1. कहानी, 2. लेख 3. पत्र

कहानी

कहानी बच्चों का सबसे प्रिय रचना रुप है । कहानी की घटना रूपी डोर से बच्चे का मन बंध-जाता है इसलिये उसे कहानी सुनना और लिखना बहुत आता है । अतः अध्यापक —

1. बच्चों को कोई छोटी सी कहानी सुनाये फिर उनसे सुने तथा बाद में लिखने को कहें ।
2. विभिन्न चित्रों के माध्यम से कहानी का विकास करवाएं। वह उन्हें एक-एक चित्र दिखाता जाए और चित्र पर तीन-चार वाक्य लिखवाए । इस तरह संपूर्ण कहानी चित्रों के माध्यम से विकसित करवाई जा सकती है । चित्र दिखाते समय अध्यापक कुछ प्रश्न भी करें ताकि चित्र में जो कुछ दिखाई दे रहा है उसके अतिरिक्त भी छात्र कुछ लिख सकें । उदाहरण के लिए "प्यासा कौआ" कहानी आप पढ़ा रहे हैं ।

पहले चित्र मै यह दर्शाया गया है कि एक कौआ पानी के घड़े की मुंडेर पर बैठा है लेकिन घड़े में पानी बहुत कम है इसलिए उसकी चोंच पानी तक नहीं पहुंच रही है ।

आप पूछ सकते है —

1. कौआ क्या सोच रहा होगा ?
2. यदि कौए की चोंच पानी तक पहुच जाती तो वह क्या करता ?
3. पानी को कौए की चोंच तक लाने की और क्या तरकीब हो सकती है ?

इन प्रश्नों के उत्तर चित्र में नहीं है किन्तु बालक के मस्तिष्क में हैं । बालक सोचता है और कई बार हम वयस्क लोगों से ज्यादा अच्छा सोचता है । हमें इस सोच का उपयोग रचना-शिक्षण में करने के लिए आवश्यक तैयारी करनी होगी ।

रूपरेखा देकर भी कहानी लिखवाई जा सकती है । अधूरी कहानी को पूरी कराने का अभ्यास रचना-शिक्षण के अन्तर्गत करवाया जा सकता है ।

हर स्थिति में हमारा उद्देश्य छात्र की रचना-क्षमता को बढ़ाना है । कई बार एक शब्द के अभाव में पूरा वाक्य रचना में आने से रुक जाता है इसलिए जब हम रूपरेखा के आधार पर कहानी-रचना करवाएं या अधूरी कहानी पूरी करवाएं तब हमें कहानी में व्यवहार में लाये जा सकने वाले

शब्द भी देने चाहिए । ये शब्द छात्र के शब्द भंडार में तो जुड़ेंगे ही साथ ही उसके चिन्तन के लिए भी एक दिशा-संकेत देंगे ।

लेख-निबंध

लेख या निबंध जैसा शास्त्रीय शब्द मुझे प्राथमिक शाला स्तर के लिए थोड़ा भारी भरकम लगता है । अतः हम यह मान लें कि यहां लेख या निबंध से हमारा आशय वर्णन या विवरण मात्र है ।

लेख लिखवाते समय अध्यापक को चाहिए कि —

1. वह छात्रों के स्थानीय परिवेश को ध्यान मे रखे ।
2. छात्रों के अनुभव जगत से जुड़े हुए विषयों पर ही अधिकाधिक लिखने को प्रोत्साहित करें जैसे-मेरा घर, मेरा खेत, मेरा गांव, पर्व-त्यौहार, मेले-ठेले, पालतू पशु, विद्यालय आदि ।
3. उन विषयों पर लिखवाते समय भी व्यवहार की जाने योग्य शब्दावली दे देना उपयुक्त रहेगा ।
4. कोई भी कार्य बच्चों से करवाने से पहले हमें यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि हमारी अपेक्षाएं क्या हैं और बच्चों को यह भी समझा देना चाहिए कि उन्हें क्या करना है ?
5. कभी-कभी छात्रों की अच्छी लिखित अभिव्यक्ति के लिए यह भी सोचना जरूरी होगा कि यदि छात्रों को दिये हुए विषय पर हमें लिखना पड़ता है तो हम क्या लिखते ?

पत्र-लेखन

प्राथमिक कक्षाओं की पाठ्यपुस्तकों में पत्र शैली में एक न एक पाठ रहता है । घरों में पत्र आते रहते है, लिखे जाते हैं इसलिए बालक के मानस पटल "पत्र" का सम्प्रत्य मौजूद है ।

हमें केवल इतना सा सोचना है कि इस सम्प्रत्य और शैली की विशेषताओं का उपयोग अपने रचना-शिक्षण के लिए कैसे हो ?

इस स्तर पर साधारण पारिवारिक पत्र पिता, माता, भाई, बहिन, मित्र को कैसे लिखे जाते हैं यह बताया जाए अर्थात् पहले पत्र का ढांचा स्पष्ट कर दिया जाए फिर कुछ छोटे-छोटे विषय देकर पत्र लिखने को कहा जाए । जैसे —

1. अपने मित्र को एक पत्र जिसमें यह लिखो कि तुम्हारी पढ़ाई कैसी चल रही है ?
2. दूसरे गांव/शहरों में रहने वाले अपने भाई को पत्र लिखो जिसमें परिवार की कुशलता के समाचार हों ?
3. तुम्हारे पिताजी बाहर नौकरी करते हैं, उन्हें पत्र लिख कर खेती बाड़ी के बारे में सूचना दो ।

रचना-शिक्षण को प्रोत्साहित कैसे करें ?

वैसे तो अच्छे शिक्षण में प्रोत्साहन तत्व पहले ही शामिल रहता है फिर भी यहां कुछ उपाय दिए जा रहे हैं जिनसे रचना-शिक्षण को प्रोत्साहित किया जा सकता है —

1. रचना-शिक्षण के दौरान छात्रों की कुछ अच्छी प्रस्तुतियों को समय-समय पर कक्षा में प्रस्तुत कराया जाए ।
2. जिन छात्रों की प्रस्तुति कमजोर है उसके कारण ढूंढे जाएं तथा यथा संभव सम्बन्धित छात्रों को बताया जाए कि उनकी प्रस्तुति कमजोर क्यों है तथा वे इसे किस प्रकार सशक्त बना सकते हैं ?
3. कक्षा में एक बोर्ड लगाया जाए जिस पर अच्छी प्रस्तुतियों को प्रदर्शित किया जाए ।
4. इस बोर्ड पर कक्षा में करवाये गए रचना-कार्य के अतिरिक्त भी यदि छात्र स्वतः कुछ रचता है तो उसे प्रदर्शित किया जाए ।

5. कक्षा में शिक्षण करते समय कभी-कभी ऐसे अवसर निकाले जाएं बच्चों को मुक्त रचना के लिए छोड़ दिया जाए अर्थात् कोई चित्र बनाएं, कोई कहानी लिखें, कोई निबंध लिखें तो कोई पत्र लिखें ।
6. कल्पनोत्प्रेरक स्थितियां प्रस्तुत करते हुए छात्रों को स्वतंत्र अभिव्यक्ति करने के लिए कहा जाए जैसे —

(1) जब शाला की घंटी बजी ।
(2) जब विद्यालय आते समय मुझे चोट लग गई। मेरे साथी को चोट लग गई ।
(3) ऐसे मनाया स्कूल में पन्द्रह अगस्त का उत्सव ।
(4) जब मैंने एक अच्छा काम किया ।
(5) ऐसे बिताई मैंने गर्मी की छुट्टियां ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि रचना-शिक्षण से हम छात्रों की लिखित अभिव्यक्ति को परिमार्जित कर सकते हैं जिसका लाभ केवल भाषा विषय को ही नहीं बल्कि अन्य विषयों को भी प्राप्त होगा । बस, थोड़ा सा हम शिक्षकों को भी कल्पनाशील होना पड़ेगा, पूर्व-योजना बनानी पड़ेगी और महज छात्रों की कमजोरियां ढूंढने की जगह उनके सबल पक्षों को पहचानते हुए उन्हें यथोचित प्रोत्साहन देना होगा ।

❑❑

प्रवक्ता,
रा. वि. लोकमान्य तिलक टीचर्स कॉलेज
डबोक (उदयपुर)

भारत में माता-पिता शिक्षा : उद्देश्य एवं उपागम

❑ डा. कैलाश वशिष्ठ
❑ डा. अर्चना वशिष्ठ
❑ जगदीश वर्मा

माता पिता-शिक्षा की आवश्यकता

मानव जीवन के प्रारम्भिक वर्षों की ओर सम्पूर्ण समाज एवं सरकार का सर्वाधिक ध्यान होना चाहिए। मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों से यह स्पष्ट हो गया है कि शैशनास्था के प्रथम पाँच वर्षों में शारीरिक एवं मानसिक विशेषताओं का विकास अत्याधिक तीव्र गति से होता है तथा पर्यावरण का प्रभाव इस काल मे अत्याधिक पड़ता है। इस काल में हुई किसी भी प्रकार की विकास की क्षति की पूर्ति शेष जीवन में कदाचित कभी भी पूर्ण नहीं की जा सकती है।

वस्तुतः हाल ही में प्रारम्भिक बाल्यावस्था की पुर्नखोज हुई है, प्राचीन मान्यतायें ढह रही हैं। प्रारम्भ में मनोवैज्ञानिकों एवं माताओं का यह विचार था कि शिशु एक प्रतिक्रियात्मक प्राणी है जो उपस्थिति उद्दीपकों को प्रत्युत्तर देता रहता है। परन्तु नवीन अनुसंधानों से ज्ञात हुआ है कि शिशु में उत्सुकता, खोज-प्रवृति, जानकारी प्राप्त करना आदि लक्षण जन्मजात होते हैं। स्पष्ट है कि बच्चे को उपयुक्त अनुभव के अवसर प्रदान करना मुख्य लक्ष्य होना चाहिए। पहले मनोवैज्ञानिकों की यह धारणा थी कि पर्यावरण एवं वंशानुक्रम का प्रभाव पृथक नहीं किया जा सकता। दोनों की अन्योन्य क्रिया होती है। परन्तु अब नवीन धारणा आदान-प्रदान की है। हमारी वर्तमान बुद्धि आदान-प्रदान का ही परिणाम है। प्रारम्भ में गैसेल आदि का यह विचार था कि "सीखना" परिपक्वीकरण से पहले संभव नहीं हो सकता। दूसरे शब्दों में बच्चे को सिखाने कि लिए परिपक्वीकरण अथवा सीखने की तत्वरता विकसित होने की प्रतीक्षा करना आवश्यक था। परन्तु आधुनिक विचारधारा के अनुसार-यदि शरीर के बढ़ने की प्रतीक्षा मात्र करें तो परिपक्वीकरण भी नहीं होगा और सीखने की तत्परता भी विकसित नहीं होगी। नवीन सिद्धान्तवाद के अनुसार बालक की बीजभूत योग्यताओं का सृजन किया जा सकता है। अनुसंधान से यह भी पता चला कि प्रारम्भिक वर्षों में निर्मित स्वयप्रत्यय शेष विद्यालय जीवन में निष्पादन का निर्धारण करता है।

प्रायः माता-पिता बच्चों की प्रारम्भिक बाल्यावस्था की क्षमताओं से अनभिज्ञ रहते है। इसका प्रमुख कारण यह है कि छोटे बालकों की सीमाओं को अंधे होकर स्वीकार करते हैं। ऑस्कर के. भूरे ने बालकों को वाचन (रीडिंग) सिखाने हेतु टेपरिकार्डर, टाइपराइटर, और कम्प्यूटर को इस प्रकार संबधित करके उपयोग किया कि जिसके द्वारा तीन वर्ष की अल्पायु में ही बालक स्वरचित कहानियाँ लिखने एवं पढ़ने लगे।

इस प्रकार स्पष्ट है कि शेषवास्था की जटिल मानसिक गुत्थियों को समझने, सुलझाने तथा आज के गतिशील प्रौद्योगिकी युग के साथ ढालने हेतु प्रत्येक माता-पिता को इनका विस्तृत ज्ञान आवश्यक है। यह तथ्य पिकाटर्स इवीलिन एवं फारगो जीन के इस कथन से और पुष्ट होता

(I) दण्ड एव पुरस्कार ।

(2) सामुदायिक विकास।

अंत में हम कह सकते है कि आज का विश्व अनेकानेक जटिलताओं से परिपूर्ण है । इस जटिलता में आगामी पीढ़ियों को समाविष्ठ करने के लिए बाल्यजीवन एवं मनोविज्ञान के आधारभूत सिद्धान्तों एवं धारणाओं को जनसामान्य में प्रचारित एवं प्रसारित करना अत्यन्त ही आवश्यक है। इस दिशा में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर यूनेस्को महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। इसके अतिरिक्त विश्व के सभी विकासशील एवं विकासमान देशो में अनेक संस्थाए माता-पिता एव समुदाय शिक्षा को समुन्नत बनाने की दिशा में कार्यरत हैं । जैकॉब एबट ने भी अपनी पुस्तक "जेन्टिल मेजर्स इन दा मैनेजमेंट एण्ड ट्रेनिंग आफ दा यंग" में माता-पिता शिक्षा की अभिन्न अग माताओं को अवहेलना की ओर ध्यान आकर्षित किया है ।

"किसी भी बात की आवश्यकता नहीं है यदि माताओं के अन्दर दृढ़ता, निरंतर कार्यरत रहने की लगन, तथा उचित निर्णय की क्षमता हो । लेकिन दुर्भाग्य वश यही आधारभूत आवश्यकतायें, अन्यों को छोड़कर ऐसी हैं जिनके ऊपर माताओं का अधिकार कर पाना दुष्कर प्रतीत होता है । इसीलिए मुख्य रूप से अपने बच्चों को स्वय उनकी मानसिकताओं की अवहेलना करती है क्योंकि वे स्वयं को ही स्वंनियंत्रण प्रक्रिया मे नहीं रख सकतीं ।

❑❑

वरिष्ठ प्रवक्ता,
शिक्षा संकाय, दयालबाग एजूकेशनल इंस्टीट्यूट,
(डीम्ड विश्व-विद्यालय), दयालबाग, आगरा

शोध अनसंधित्सु,
शिक्षा संकाय, दयालबाग एजूकेशनल
इंस्टीट्यूट, दयालबाग, आगरा

विशेष शिक्षा में कम्प्यूटर की उपयोगिता

❑ मुकेश कुमार गुप्ता

जैसा कि सर्वविदित है कि प्रत्येक कक्षा में कुछ ऐसे बच्चे होते है जो अन्य बच्चों की अपेक्षा उतना नहीं सीख पाते जितना कि उन्हें सीख लेना चाहिए क्योंकि उन बच्चों की कुछ अपनी ही विशेष आवश्यकताएँ होती है जिनका पूरा होने पर ही उनके लिए सीखना आसान होता है अथवा सीखना सम्भव होता है और इन आवश्यकताओ की हम विशेष विधियाँ अपना कर ही पूरा कर पाते है ।

इस प्रकार के बच्चों को जो सीखने मे परेशानियाँ आती हैं । इन परेशानियों का कारण उनका मानसिक, शारीरिक अथवा ऐन्द्रिक रूप से पिछड़ापन होता है । जैसे मानसिक रूप से अवरुद्ध बच्चे जो बहुत धीरे-धीरे सीख पाते हैं अथवा कई बार दोहराने पर नहीं सीख पाते, कई बार प्रायः पढ़ाने वाला तक थक जाता है लेकिन वह बच्चे नहीं सीख पाते, कुछ शारीरिक रूप से विकलांग होते हैं जो सामान्य बच्चों की भांति नहीं सीख पाते उनकी पठन सामग्री बिल्कुल अलग तरह होती है । उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप ही उनको सिखाने की विधियाँ भी अलग-अलग होती है । इन्हीं अलग तरह की सामग्री को बनाने एवं प्रस्तुत करने को विशेष शिक्षा कहते है । संयुक्त राष्ट्र सघ के अनुमान के अनुसार ऐसे बच्चे जिन्हें सीखने मे परेशानी आती है उनकी संख्या 40 लाख के आस-पास है जो कि इस शताब्दी के अंत तक 60 लाख (मिटलर, 1984) के आस-पास हो जाएगी । अतः इन बच्चो के विकास एवं शिक्षा के लिए हमें आधुनिक तकनीकों को उपयोग में लाना आवश्यक है ।

आधुनिक तकनीकी विधियों का प्रयोग शिक्षा के क्षेत्र में भी आवश्यक है । जैसे कि पाठ्य-पुस्तकों का निर्माण तकनीकी विधियो द्वारा कहीं अधिक सरल एवं प्रभावशाली ढंग से किया जा सकता है । अध्ययन में पहले से ही फोटो ग्राफी, प्रोजेक्टर, टेलीविजन आदि उपयोग में लाये जाते हैं । आधुनिक युग में जबकि इस युग को कम्प्यूटर का युग कहा जाता है तो यह आवश्यक ही है कि कम्प्यूटर को भी शिक्षा के क्षेत्र मे प्रयोग करना चाहिए । इसी संदर्भ में एन. सी. ई.आर. टी. ने 1968 नवम्बर, मे एक रिपोर्ट प्रकाशित की थी जिसका नाम था कम्प्यूटर फार एजूकेशन । जिसमे यह सस्तुति की गई थी कि शिक्षा के लिए कम्प्यूटर होना चाहिए न कि कम्प्यूटर के लिए शिक्षा अर्थात् कम्प्यूटर को शिक्षा में एक साधक के रूप में प्रयोग किया जाना चाहिए ।

सभी जानते हैं जीवन के विविध क्षेत्रो में शिक्षा और भाषा की शिक्षा का विशेष महत्व है । इसी महत्व को समझाते हुए भारत सरकार के इलैक्ट्रानिकी विभाग द्वारा नवम्बर, 1982 में एक कार्यशाला आयौजित की गई थी । इसमें विभिन्न शैक्षिणिक संस्थानो को विद्वानों एवं कम्प्यूटर विशेषज्ञों ने विचार मथन कर कम्प्यूटर द्वारा भाषा-अधिगम व्यवस्था विकसित करने के लिए दिशा निर्धारण का कार्य आरंभ किया । चार दिवसीय कार्यशाला में संस्तुति की गई थी कि भाषा शिक्षण में संलग्न संस्थाओं को सुनियोजित परियोजना में लेकर कम्प्यूटर की सहायता से भाषा शिक्षण के कार्य को आगे बढ़ाना चाहिए ।

भारत में भी कम्प्यूटर का प्रयोग जीवन के विभिन्न व्यावसायिक शैक्षिक एवं अन्य क्षेत्रों में हो रहा है और इसको देखते हुए हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम कम्प्यूटर के बारे में अधिक से अधिक परिचित हो जाएं ताकि उसका उपयोग अधिक से अधिक अपने लिए अपने अनुसार कर सकें तथा अधिक से अधिक आवश्यक सामग्री जुटा सकें, अथवा ऐसी सामग्री का विकास कर लें जिसके आधार पर हम उसको अपने उद्देश्यों की पूर्ति हेतु प्रयोग में ला सकें, क्योंकि विशेष शिक्षा की अपनी अलग ही किस्म की आवश्यकताएं व अलग ही विधियाँ होती है ।

इस प्रकार के बच्चों मे जो कि उनकी भी तो मानसिक आयोग्यता अथवा शारीरिक आयोग्यता के कारण पिछड़ापन होता है को शिक्षा देने हेतु जो आवश्यक हे उसकी (1) या तो अधिगम सामग्री (लरनिंग मैटीरियल) मे विशेष सशोधन करके (2) या उस वातावरण जिसमें कि पठन क्रिया चल रही है में सशोधन करके पूर्ति की जा सकती है । क्योंकि यह अब मान्य धारणा है कि विशेष आवश्यक वाले बच्चे नहीं होते उनके ऊपर केवल विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है ताकि वह अपने और अन्य सामना बच्चों की दूरी को पूरा कर सकें ।

पहली आवश्यकता इन बच्चों की होती है । कम्यूनिकेशन और एक्सप्रेशन की ओर इस कमी को कम्प्यूटर भली-भांति पूरा करता है तथा वर्ड प्रोसेसर उन बच्चों के लिए सहायक है जिनको शारीरिक अथवा मोटर प्रोबलम होती हैं और यदि ऐसे बच्चे लेखन कार्य वर्ड प्रोसेसर से करते हैं तो उनमें आत्मविश्वास भी बढ़ता है और प्रतिस्पर्धा के लिए भी प्रोत्साहन मिलता है ।

जिनकी आवश्यकता होती है कि उनकी पठन सामग्री टास्क एनालाइसिस पर आधारित है तो कम्प्यूटर में टास्क एनालाइसिस बहुत ही सरल होती है । इसकी प्रोग्रामिंग टास्क एनालाइसिस पर ही आधारित होती है और इसमें जो भी पाठ्यक्रम वह चाहता है उसको पर्दे पर लाने के लिए कम्प्यूटर से उसे सूचना का आदान-प्रदान करना पड़ता है, और यह आदान-प्रदान करने के लिए यह कार्य एक खेल जैसा प्रतीत होता है। और बार-बार भी उसी पाठ्यक्रम को देखते हुए वह थकान महसूस नहीं करता बल्कि विभिन्न तरह से प्रदर्शन को वह एक खेल की विधि समझकर प्रत्येक बार नया उत्साह दिखाएगा । इस प्रकार कम्प्यूटर पाठ्यक्रम को एक रूचिपूर्ण और पसन्दीदा रूप में प्रस्तुत कर सकता है ।

एक अन्य महत्वपूर्ण आवश्यकता जो कि अध्ययन-वातावरण को उचित बनाने की है । उसमें भी सर्वमान्य है कि कम्प्यूटर एक ही सामग्री को कहीं अच्छी तरह प्रस्तुत कर सकता है क्योंकि कम्प्यूटर के साथ खेलते हुए अनुमान शक्ति सर्जनात्मक विचार तथा समस्या-समाधान की क्षमता विकसित होती है । (मेक्काल, 1982) के अनुसार (सीए एल) मे अध्ययन सामग्री की पुनरावृत्ति, रीनफोर्समेन्ट एवं, प्रेरणा बनाए रखने की कहीं अधिक क्षमता होती है । इस प्रकार के अध्यापन में इस प्रकार विभिन्न बच्चों की भिन्न-भिन्न आवश्यकताएं होती है जिसे कम्प्यूटर कहीं अधिक बेहतर तरीके से पूरा कर सकता है । जैसा कि एगर (1985) की संस्तुति से भी प्रदर्शित होता है । एगर के अनुसार माइक्रोमेट सीनियर मेन्टल हैन्डीकेप बच्चों को कहीं अधिक तरह से विभिन्न परिस्थितियों में सीखने का अवसर देता है । मेडीसन (1982) के अनुसार भी कम्प्यूटर को एक अध्यापन के साधन के रूप में प्रयोग किया जा सकता है तथा होव (1983) के अनुसार इस समय लगभग 9% सोफ्ट वेयर प्राइमरी स्कूल के लिए उपलब्ध हैं ।

कम्प्यूटर की उपयोगिता को विशेष शिक्षा के क्षेत्र में नकारा नहीं जा सकता है । हाँ यह प्रश्न अवश्य ही उठता है कि क्या भारत देश जिसकी अर्थव्यवस्था कमजोर हो तो कम्प्यूटर जैसी खर्चीली प्रणाली को विशेष शिक्षा के क्षेत्र मे प्रयोग में लाना चाहिए अथवा नहीं । तो इसके लिए आर्टिकल-45 जिसके अंतर्गत भारत सरकार द्वारा युनिवर्सेलाइजेशन आफ एजुकेशन, में 6 से 14 वर्ष की उम्र के सभी बच्चों को जरूरी शिक्षा देने को कहा गया है तो

यह भारत सरकार की जिम्मेदारी बन जाती है कि वह इन विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को भी सामान्य बच्चों के समान शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराये ।

दूसरे यह इतनी खर्चीली भी नहीं होगी क्योंकि एक बार साफ्टवेयर यदि बन जाए तो वह कहीं भी किसी भी अध्यापक के द्वारा प्रयोग में लाया जा सकता है तथा कहीं ज्यादा असरदार तरीके से विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को शिक्षा का अवसर मिलेगा और इस प्रकार उस सामग्री की पुनारावृत्ति बिल्कुल एक-समानरूप से संभव हो पायेगी जो अन्य किसी भी अति अनुभवी व कुशल अध्यापक से भी संभव नहीं है । साथ ही साथ आधुनिक तकनीक की उन्नति इतनी हो चुकी है कि यह पहले की भाति उतनी खर्चीली नहीं रह गई है ।

कम्प्यूटर को विशेष शिक्षा में प्रयोग में लाने का एक दूसरा पहलू इसकी उपयोगिता भी है क्योंकि यह निम्न प्रकार से अध्ययन के उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक होता है ।

1. अधिकतर कम्प्यूटर असफलता की ओर ध्यान नहीं देते और केवल सफलता को ही प्रोत्साहित करता है ताकि विधार्थी कम्प्यूटर के साथ खेलते हुए सही उत्तर पाने का उत्सुक बना रहता है ।
2. कम्प्यूटर में हम अपनी इच्छाओं के अनुसार रंग अथवा शब्दों का चमकीलापन बनाये रख सकते हैं और इस प्रकार यह बच्चों का ध्यान कहीं अधिक अपनी ओर खींचता है तथा पाठ्यसामग्री को रूचिपूर्ण एवं सीखने में आसान बनाता है ।
3. सबसे महत्वपूर्ण पहलू होता है बच्चे को प्रोत्साहन देना एवं उसकी रुचि बनाये रखना जो कि कम्प्यूटर भली भांति कर सकता है । कारण कम्प्यूटर एक इन्टरेक्टिव प्रक्रिया है न कि रीमेक्टिव इसमें बच्चे को सूचना देनी होती है कि कम्प्यूटर उस सूचना के आकलन के पश्चात बच्चे को जबाव देता है अर्थात् अगला प्रश्न देगा अथवा उसको सही जवाब देने के लिए कहेगा अतः बच्चे की रुचि बनी रहती है ।
4. कम्प्यूटर के साथ बच्चे को खेलने पर बच्चे की समस्या समाधान क्षमता कहीं अधिक हो जाती है और उसमें कन्क्रीट अवस्ट्रेक्ट आइडिया आते हैं ।
5. एक ओर उद्देश्य बच्चे में आत्मविश्वास का पैदा करना होता है । जब एक बच्चा कम्प्यूटर के साथ खेलते हुए सही उत्तर को खोज लेता है तो नए विचार उसके मष्तिष्क में अपने आप आने लगते है तथा वह उनको सीखने में सुविधानुसार समय लेता है । जो कि एक अध्यापक से मिलना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है ।
6. कम्प्यूटर द्वारा केवल बच्चा तथा कम्प्यूटर ही एक दूसरे के सामने रहते है । अर्थात् वन टू वन इन्टरेक्शन की स्थिति (जो कि विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए आवश्यक है) रहती है । अतः इस प्रकार हम उस बच्चे को पढ़ाने व सीखने की स्थिति को कहीं अधिक आसान व उसी को आवश्यकता के अनुरूप बना पाने में समर्थ हो पाते हैं ।
7. कम्प्यूटर बच्चे को अभ्यास करने हेतु भी बहुत उपयोगी होता है इसमें एक ही सामग्री कई बार समान तरह से दिखाई जाती है । जबकि अन्य किसी भी तरह से यह संभव नहीं हो पाती है और विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को अभ्यास की अति आवश्यकता होती है ।
8. वर्ड प्रोसेसर से बच्चे जिनको लिखाई में समस्या रहती है अपने सामान्य बच्चों की भांति लिख सकते हैं ।
9. सबसे महत्वपूर्ण बात कम्प्यूटर की यह है कि गलती को न तो गिनता है और नहीं गलतियों को बताता है । अतः एक बच्चा जो अध्यापक के सामने गलती करने पर लज्जित होता है वह गलती करने का भय कम्प्यूटर के साथ नहीं रहता, तथा इसमें कोई भी समयावधि सही उत्तर देने के लिए नहीं होती। बच्चा अपनी सुविधानुसार समय लेता है ।

10. कम्प्यूटर का एक यह भी महत्पवूर्ण पहलू है कि यह बच्चों को अपनी ओर आकर्षित करता है और बच्चों में सर्जनात्मक क्षमता का विकास करता है ।
11. कम्प्यूटर द्वारा ग्राफ, सारणियाँ एवं चित्र कहीं अधिक सुगम सरल तथा आकर्षक रूप से दिखाए जा सकते हैं ।

इन उपरोक्त तथ्यों के आधार पर यह न्यायसंगत होगा कि कम्प्यूटर का उपयोग विशेष शिक्षा में किया जाए । दूसरा तथ्य जंगीरा (1985) की रिपोर्ट से भी न्यायसंगत रहता है । जिसके अनुसार समाकलन शिक्षा (इन्टीग्रेशन आफ एजूकेशन) के अंतर्गत इन बच्चों को सामान्य कक्षाओं में अध्ययन की बात कही है । अतः यह हमारा दायित्व बन जाता है कि इन बच्चों को समान अवसर प्रदान करें । कम्प्यूटर को विशेष शिक्षा में उपयोगी बनाने के लिए उसके साफ्टवेयर भी भारतीय भाषाओं में होने चाहिए जो कि एक अति आवश्यक तथ्य हैं । कारण अधिकतर साफ्टवेयर विदेशी भाषाओं में ही उपलब्ध हैं । इस प्रकार का एक प्रोग्राम जो कि लरनिंग डिसएबल्ड बच्चों में दायीं-बायीं दिशा के ज्ञान कराने के लिए बनाया गया है वह यहां दिया जा रहा है । उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि इस प्रकार के प्रोग्राम बनाए जाने चाहिए, जिसमें कि हम कम्प्यूटर का उपयोग अधिक से अधिक प्रभावी ढंग से विशेष शिक्षा में कर सकें ।

दायें-बायें के ज्ञान कराने के लिए कम्प्यूटर प्रोग्राम

- ❑ कम्प्यूटर के पर्दे पर एक गुड़िया का चित्र
- ❑ बच्चे से पूछा जाये कि यह किसका चित्र है
- ❑ उसके गुड़िया का चित्र अथवा यह तो गुड़िया है कहने पर अगला चित्र
- ❑ गुलाब के फूल का चित्र दिखाया जाए
- ❑ फिर उससे मालूम किया जाए यह किसका चित्र है
- ❑ फूल का अथवा गुलाब के फूल का चित्र कहने पर
- ❑ दोनों चित्रों को एक साथ दिखाया जाए

गुडिया फूल

अब उत्तर न देकर बच्चे को बायें स्थान के लिए अंक 1 तथा दायें स्थान के लिए अक " 9 "को दबाना है

- ❑ बच्चे को बताना है कि फूल का चित्र गुड़िया के चित्र के किस तरफ है ।
- ❑ अक "9" दबाने पर, कम्प्यूटर के पर्दे पर एक हंसता हुआ चेहरा आएगा, एवं साथ ही साथ संगीत की मधुर आवाज तथा अगला प्रश्न आएगा ।
- ❑ अक "1" दबाने पर बच्चे को कुछ नहीं मिलेगा और उसे दुबारा दूसरा अक दबाना पड़ेगा ।
- ❑ अगला प्रश्न गुडिया का चित्र फूल के चित्र के किस तरफ है ?
- ❑ अंक "1" दबाने पर हँसता हुआ चेहरा एवं संगीत की धुन तथा अगला प्रश्न ।
- ❑ अब दोनों चित्रों की स्थिति बदलने पर :

फूल गुडिया

- ❑ अब फूल का चित्र, गुडिया के चित्र के किस तरफ है ?
- ❑ अंक "1' दबाने पर हंसता हुआ चेहरा, संगीत की धुन एवं अगला प्रश्न ।
- ❑ अंक "9" दबाने पर कुछ नहीं, अगला प्रयास करना पड़ेगा ।
- ❑ अब गुड़िया का चित्र फूल के चित्र के किस ओर है ?
- ❑ अक "9" दबाने पर, हंसता हुआ चेहरा संगीत की धुन एवं अगला प्रश्न ।
- ❑ "1" दबाने पर, केवल अगला प्रयास करना पड़ेगा ।

बच्चे को समझाया जा सकता है कि स्थितियाँ बदलने पर बायीं ओर की वस्तु दायीं ओर एवं दायीं ओर की वस्तु बायीं ओर हो जाती है । यदि बच्चा पढ़ने में समर्थ हो तो यही वाक्य कम्प्यूटर के पर्दे पर दिखाया जाए ।

- ❑ पर्दे पर एक चिड़िया का चित्र ।
- ❑ बच्चे से चित्र के बारे में पूछा जाए कि यह किसका चित्र है? बताने पर ।
- ❑ पर्दे पर चिड़िया के घोंसले का चित्र ।
- ❑ इसके बारे मे बच्चे से पूछा जाए कि यह किसका चित्र है? सही बताने पर ।
- ❑ पर्दे पर दोनों चित्रों को एक साथ दिखाया जाए ।

चिड़िया घोंसला

- ❑ बच्चे को बताना है? चिड़िया का चित्र, घोंसले के चित्र के किस ओर है ?
- ❑ अंक "1' दबाने पर अगला प्रश्न, हंसता हुआ चेहरा एवं संगीत की धुन ।
- ❑ अंक "9" दबाने पर पुनः प्रयास करिए ।
- ❑ अब बच्चे को बताना है कि घोंसले का चित्र, चिड़िया के चित्र के किस तरफ है ।
- ❑ अंक "9" दबाने पर हंसता हुआ चेहरा, संगीत की धुन एवं अगला प्रश्न ।
- ❑ अंक "1" दबाने पर, केवल अगला प्रयास करना पड़ेगा ।
- ❑ अब दोनों चित्रों की स्थिति बदलने पर ।

घोंसला चिड़िया

- ❑ चिड़िया का चित्र, घोसले के चित्र के किस ओर है ?
- ❑ अंक "9" दबाने पर, हंसता हुआ चेहरा, सगीत की धून एवं अगला प्रश्न ।
- ❑ अंक "1" दबाने पर, केवल दुबारा अंक दबाना पड़ेगा ।
- ❑ घोंसले का चित्र, चिड़िया के चित्र के किस ओर है ?
- ❑ अंक "1" दबाने पर हंसता हुआ चेहरा, संगीत की धुन एवं अगला प्रश्न ।
- ❑ अक "9" दबाने पर, दुबारा अंक दबाना पड़ेगा ।

जब भी बच्चे के पास 5 हंसते हुए चेहरे पर जमा हो जाए, उसको एक उनसे बड़ा चेहरा मिलेगा साथ ही यदि वह चाहे तो संगीत अधिक देर तक सुन सकता है ।

इसी तरह के और उदाहरण दोहाराये गए हैं । जिनमें चित्र इस प्रकार हैं

- ❑ तीसरे उदाहरण में गाय का चित्र एवं कुत्ते का चित्र
- ❑ चौथे उदाहरण में रंगीन मछली का चित्र एक मेंढक का चित्र
- ❑ पांचवें उदाहरण में एक फल एवं एक पेड़ का चित्र ।
- ❑ छठे उदाहरण में फुटवाल का चित्र एवं क्रिकेट के बल्ले का चित्र ।
- ❑ अब कम्प्यूटर के पर्दे पर पिछले उदाहरणों में दिखाए गए चित्रों में से कोई 5 चित्र एक साथ दिखाये जाएँ, जोकि बच्चे द्वारा अधिक पसंद किए गए हों, जिन चित्रों से एक विशेष प्रश्न संबंधित है उन चित्रों को चमकीला दिखाया जाता है ।

फूल, चिड़िया, मछली, गाय, फुटवाल

- ❑ बच्चे से पूछा जाए कि चिड़िया का चित्र मछली के किस तरफ है ?
- ❑ अंक "1" दबाने पर संगीत की धुन, हंसता हुआ चेहरा एवं अगला प्रश्न ।

- ❑ अक "9" दबाने पर दुबारा अक दबाने के लिए कहा जाए ।
- ❑ बच्चे से पूछा जाये फुटवाल का चित्र मछली के चित्र से किस तरफ है ?
- ❑ अक "9" दबाने पर, हसता हुआ चेहरा, संगीत की धुन एवं अगला प्रश्न ।
- ❑ अंक "1" दबाने पर दुबारा अक दबाने को कहा जाए ।
- ❑ बच्चे से पूछा जाए चिड़िया का चित्र फुटबाल के चित्र के किस ओर है ?
- ❑ अंक "1" दबाने पर हसता हुआ चेहरा, संगीत की धुन एव अगला प्रश्न ।
- ❑ अंक "9" दबाने पर अक दुबारा दबाने को कहा जाए ।
- ❑ बच्चे से पूछा जाए कि गाय का चित्र, फूल के चित्र के किस ओर है ।
- ❑ अंक "9" दबाने पर हंसता हुआ चेहारा, संगीत की धुन एव अगला प्रश्न ।
- ❑ अंक "1" दबाने पर दुबारा अंक दबाने को कहा जाए ।
- ❑ बच्चे से पूछा जाए कि फूल का चित्र, मछली के चित्र के किस ओर है ?
- ❑ अंक "1" दबाने पर हंसता हुआ चेहरा, संगीत की धुन एवं अगला प्रश्न ।
- ❑ अंक "9" दबाने पर दुबारा अंक दबाने को कहा जाए ।

अब आगे प्रश्नों में चित्र का स्थान जिस क्रम पर होगा वही अंक दबाने पर हंसता हुआ चित्र आयेगा तथा संगीत की आवाज मिलेगी अन्यथा दुबारा प्रयास कीजिएगा ।

- ❑ कुल कितने चित्र है ?
- ❑ अक "5" दबाने पर, संगीत की धुन हसता हुआ चेहरा एवं अगला प्रश्न
- ❑ मछली का चित्र बायें से किस स्थान पर है ?
- ❑ अंक "3" दबाने पर हंसता हुआ चेहरा, संगीत की धुन एवं अगला प्रश्न ।
- ❑ अन्य किसी भी अक के दबाने पर पुनः सही अंक दबाइए ।
- ❑ मछली का चित्र दायें से किस स्थान पर है ।
- ❑ अक "3" दबाने पर हंसता हुआ चेहरा, सगीत की धुन एवं अगला प्रश्न ।
- ❑ अन्य किसी भी अक को दबाने पर, दुबारा अंक दबाईए ।
- ❑ फूल का चित्र दायें से किस स्थान पर है ?
- ❑ अंक "5" दबाने पर हंसता हुआ चेहरा, संगीत की धुन एवं प्रश्न ।
- ❑ अन्य किसी भी अंक को दबाने पर अंक दुबारा दबाने के लिए कहा जाये ।
- ❑ गाय का चित्र बायें से किस स्थान पर है ?
- ❑ अंक "4" दबाने पर हंसता हुआ चेहरा, संगीत की धुन एवं अगला प्रश्न ।
- ❑ अन्य किसी भी अक को दबाने पर दुबारा अंक दबाना पड़ेगा ।
- ❑ गाय का चित्र दायें से किस स्थान पर है ?
- ❑ अंक "2" दबाने पर हसता हुआ चेहरा, सगीत की धुन एवं अगला प्रश्न ।
- ❑ अन्य कोई भी अक दबाने पर दुबारा अंक दबाना पड़ेगा ।
- ❑ चिड़िया का चित्र दायें से किस स्थान पर है ?
- ❑ अंक "4" दबाने पर हंसता हुआ चेहरा, संगीत की धुन एव अगला प्रश्न ।
- ❑ अन्य अक "9" दबाने पर दुबारा अंक दबाना पड़ेगा ।
- ❑ चिड़िया का चित्र बायें से किस स्थान पर है ?
- ❑ अंक "2" दबाने पर, हंसता हुआ चेहरा संगीत की धुन एवं अगला प्रश्न ।
- ❑ अन्य कोई भी अंक दबाने पर, दुबारा अंक दबाना पड़ेगा ।

- फुटवाल का चित्र बायें से किस स्थान पर है ?
- अंक "5" दबाने पर, हंसता हुआ चेहरा संगीत की धुन एवं अगला प्रश्न ।
- अन्य कोई भी अंक दबाने पर दुबारा अंक दबाना पड़ेगा ।
- फुटवाल का चित्र दायें से किस स्थान पर है ?
- अंक "1" दबाने पर हंसता हुआ चेहरा, संगीत की धु[illegible] ।
- अन्य अंक दबाने पर, दुबारा अंक दबाने के लिए कहा जाए ?

कम्प्यूटर प्रोग्रामर
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद,
नई दिल्ली ।

बच्चों में जिज्ञासा की प्रवृत्ति

❑ डा. राजीव कुमार

बच्चे स्वभावतः जिज्ञासु होते हैं। वे नई व अनोखी चीजों को देखकर उनके बारे में अधिक से अधिक जानने का प्रयास करते हैं। उनकी इस प्रवत्ति का उनके व्यक्तित्व के विकास में महत्वपूर्ण स्थान होता है।

यूँ तो जब नन्हें शिशु की देखने व सुनने की शक्ति विकसित होने लगती है तब नई-नई वस्तुएँ उसका ध्यान आकर्षित करने लगती हैं तथा एक वर्ष का होते-होते वह किसी भी नई वस्तु को हाथ पैरों के बल खींचकर, ढकेलकर, हिलाकर व मुहँ में चूँसकर देखने लगता है। किन्तु जब बच्चा चलना-फिरना शुरू करता है तो वह विविध प्रकार की नई व अनोखी वस्तुओं के सम्पर्क में आता है तथा उनसे नए-नए अनुभव ग्रहण करता है और वस्तुओं को देखकर, छूकर, उलट-पुलटकर, हिलाकर, पटककर आदि रूपों में अपनी जिज्ञासा प्रकट करता है।

तीन वर्ष तथा उससे ऊपर का काल बच्चे के लिए शक्ति एवं सक्रियता का समय है। अब जिज्ञासा घर के वातावरण से बाहर निकलकर पास-पड़ोस तथा विद्यालय तक पहुँचने लगती है। नई-नई और निराली चीजें बच्चे का ध्यान खीचती हैं तथा बच्चा उनके निरीक्षण एवं जाँच-परख में लग जाता है। चीजों के बारे में तरह-तरह के प्रश्न पूछने की प्रकृति प्रायः दो और तीन वर्ष की अवस्था के मध्य प्रारम्भ हो जाती है तथा छठे वर्ष तक अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच जाती है। नए-नए उद्दीपकों को देखकर बालक प्रश्नों की झड़ी लगा देता है। बारिश को होते देखकर एक चार वर्षीय बालक ने जिज्ञासा की— "यह पानी कहाँ से आता है ?" जब उसे बादलों के विषय में बताया गया तो उसने कोतूहल से प्रश्न किया, "बादल पानी कहाँ से लाता है ?" "बादल के पास यह पानी कैसे पहुँच जाता है ?" आदि-आदि। बच्चो की ऐसी अनेक जिज्ञासाएँ हो सकती है जिनका हल स्वयं न जानने के कारण या व्यस्तता के कारण माँ-बाप एव अन्य बड़े लोग उन्हें झिड़क देते है, "चुप रहो दिमाग मत चाटो।" या "चलो हटो, हमें काम करने दो।" बड़ो की इस प्रकार की झिड़कियों का बच्चे पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इससे बच्चा कुंठित हो जाता है तथा उसका मानसिक विकास अवरुद्ध हो जाता है। हमें यह समझना चाहिए कि जब हम बच्चे की जिज्ञासा को दबाने का प्रयास करते हैं तो हम न केवल उसकी ज्ञान-सम्बन्धी जरूरतों को दबाते हैं बल्कि हम उसकी सीखने की प्रवत्ति को भी कम कर देते हैं। जब बच्चे को अपने प्रश्नों के संतोषजनक उत्तर मिल जाते हैं तो उसकी जिज्ञासा शांत हो जाती है तथा उसे नया अधिगम-अनुभव प्राप्त होता है।

छः से बारह वर्ष की आयु के बीच के बच्चे अपने पिछले अनुभवों को याद कर पाने में समर्थ हो जाते हैं। उनका भाषायी विकास भी उनको नई-नई जानकारी स्वतः ग्रहण करने में सहायक होता है। उनकी तर्क शक्ति भी विकसित होने लगती है। अब बच्चे के प्रश्न 'क्यों' और 'कैसे' पर केन्द्रित हो जाते हैं। बच्चे की जिज्ञासा के ढंग में आने वाला यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण मोड़ है जो बालक के बौद्धिक विकास में अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

आज के इस वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति के युग में ज्ञान का विस्फोट हुआ है । अतः हमारे सामने ऐसी स्थिति पैदा हो सकती है कि हम बच्चे के प्रश्न का संतोषजनक उत्तर देने में अपने आप को असमर्थ पाएँ । ऐसी स्थिति में हमारी भूमिका यह होनी चाहिए कि हम उसे टालने या गलत उत्तर देने के बजाय उसे यह बता दें कि उसके प्रश्न का सही उत्तर मालूम करके उसे बाद में बता देंगे । या फिर उसका मार्गदर्शन किया जाए कि उसे अपने प्रश्न का उत्तर कहाँ से मिल सकता है ।

आज हमारे देश के अधिकांश विद्यालयों में प्रचलित शिक्षण पद्धतियाँ बच्चों की जिज्ञासा की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करने के बजाय उसे हतोत्साहित करती हैं। बच्चों को सूचनात्मक ज्ञान जोर-जबर्दस्ती से रटा-रटाकर देने का प्रयास किया जाता है। इससे बच्चों में सीखने के प्रति विरक्ति एवं अरुचि पैदा हो जाती है। इससे उनकी जिज्ञासा दब जाती है तथा वे उत्साहहीन हो जाते है।

कुछ अध्यापक अत्यधिक निर्देशों तथा अनुशासन में विश्वास रखते है। ऐसे अध्यापकों को यह समझना चाहिए कि ऐसा करके वे अपने छात्रों की स्वाभाविक जिज्ञासा को हतोत्साहित कर रहे हैं। अध्यापकों को कक्षा का वातावरण यथासंभव भयमुक्त बनाने का प्रयास करना चाहिए।

बच्चे अपने वातावरण से स्वयं ही बहुत कुछ सीख लेते है, इसलिए जहाँ तक संभव हो उन्हें स्वयं 'करके सीखने' देना चाहिए। इससे उनकी प्रतिभा का विकास होता है । बाल-केन्द्रित शिक्षा का यही लक्ष्य है कि अध्यापक बालक की प्रतिभा के विकास में सहायक बने ताकि उसके व्यक्तित्व का समुचित विकास हो सके ।

अध्यापकों को चाहिए कि वे अपनी कक्षा के वातावरण को नई-नई एवं आश्चर्यजनक घटनाओं और उद्दीपकों का समावेश कर उसे नवीनता एवं विविधता प्रदान करें । उससे अध्यापक बालकों की जिज्ञासा को बढ़ाकर उनकी सीखने की प्रवृत्ति को बढ़ा सकते हैं । छात्रों की जिज्ञासा को जागृत करने के लिए पाठ की शुरूआत छात्रों के सामने समस्यात्मक स्थिति पैदा करके की जानी चाहिए। शिक्षाविदों ने आगमन निगमन पद्धति, अन्वेषण पद्धति, प्रायोजना पद्धति आदि शिक्षण की विभिन्न प्रगतिशील पद्धतियों तथा उपागमों की खोज की है जिनके प्रयोग से सीखने की प्रक्रिया को जिज्ञासा एवं आभ्यान्तरिक अभिप्रेरणा पर आधारित किया जा सकता है ।

अध्यापक नए ज्ञान को विद्यार्थियों के सम्मुख विविध रूपों में प्रस्तुत कर सकते हैं । यदि संभव हो तो उन्हें नई पाठय सामग्री को सुनने (श्रव्य माध्यमों-रिकार्डस, टेप आदि द्वारा), देखने (दृश्य माध्यमों-चित्र, मानचित्र, रेखाचित्र, ग्राफ, फिल्म स्ट्रिप्स आदि द्वारा), सुनने व देखने (श्रव्य-दृश्य माध्यमों-सिनेमा, वीडियो टेप्स, अभिनय आदि द्वारा), चर्चा करने (वाद-विवाद, परिसंवाद आदि के द्वारा) तथा करके सीखने (खेल, पहेली, प्रयोग, अभिनय आदि द्वारा) का अवसर प्रदान करना चाहिए । इस प्रकार अध्यापक छात्रों की बोध शक्ति तथा अन्तदृष्टि को विकसित कर सकते हैं । इस कार्य में अध्यापकों का अतिरिक्त समय एवं प्रयास अवश्य लगेंगे लेकिन इससे अध्यापक पाठ में छात्रों की रुचि व जिज्ञासा पैदा करके तथा पाठ के विकास में उनकी सक्रिय भागीदारी के द्वारा शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया मे क्रांतिकारी सुधार ला सकते हैं ।

❑❑

शिक्षक-शिक्षा विभाग,
श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय
13, बांकेलाल नगर, जी. टी. रोड, अलीगढ़

विद्यार्थियों में अनुशासनहीनता-कारण और निवारण

❑ राम प्रकाश मेंहदीरत्ता

शायद ही कोई दिन ऐसा जाता हो जब समाचार पत्रों में विद्यार्थियो द्वारा किसी न किसी बहाने इधर-उधर किए गए उत्पात का व्यौरा न दिया गया हो। गाड़ियां रोकना, बसें जलाना, हड़तालें करना, अधिकारियों को घेरना आदि प्रतिदिन की साधारण घटनाएं होती जा रही हैं । आज एक शिक्षण-संस्था बन्द है तो कल दूसरी। कभी इस विश्वविद्यालय में उपद्रव हो रहे हैं तो कभी उस में । यह छूत निरन्तर फैल रही है । विद्यार्थियो द्वारा उत्पन्न समस्याएं हैं कि जिनका समाधान ढूंढना अभिभावकों, शिक्षाशास्त्रियों तथा राजनीति-विशारदों सभी की सिरदर्दी का कारण बन रहा है, किन्तु हाल यह है कि 'मरज बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की ।'

ऐसी विषम परिस्थिति में 'खिसयानी बिल्ली खम्भा नोचे' की कहावत चरितार्थ करते हुए जहाँ माता-पिता विद्यार्थियों की इस हुल्लड़बाजी की जिम्मेदारी शिक्षकों पर डालते हैं, वहां शिक्षक इसके लिए राजनीतिज्ञो को उत्तरदायी ठहराते हैं और वे बदले में अभिभावकों को ही दोषी सिद्ध कर इस विषैले चक्र को पूरा कर देते है । इस बीच विद्यार्थियों की अराजकता राजरोग की तरह समाज रूपी शरीर को भीतर ही भीतर खोखला किए दे रही है ।

किसी भी रोग की सही चिकित्सा के लिए सर्वप्रथम उसका समुचित निदान अपेक्षित होता है । विद्यार्थियों की इस बढ़ती हुई अनुशासनहीनता के कारणों की खोज भी ठीक वैसे ही जरूरी है । आज का विद्यार्थी कल का नागरिक है और भावी नागरिकों की समूची शिक्षा-दीक्षा का दायित्व भी वर्तमान सभी नागरिकों का सांझा है, फिर चाहे वे अभिभावक हों या शिक्षक, समाज सेवी हों या राजनीतिज्ञ । किन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि इस तरह शिक्षक अपनी जिम्मेदारी से बच सकते हैं । वस्तुस्थिति इससे सर्वथा भिन्न है । आधुनिक समाज में जबकि प्रत्येक साधारण नागरिक जीवकोपार्जन की समस्या से ही बेतरह उलझा हुआ है, माता-पिता के पास बच्चे की चारित्रिक शिक्षा के लिए न तो भौतिक साधन ही होते हैं तथा न पर्याप्त समय तथा शक्ति ही शेष रहती है । ऐसी दशा में अध्यापक वर्ग को छात्रों के न केवल मस्तिष्कीय विकास का ही ध्यान रखना है बल्कि उनके हृदय का भी भरसक संस्कार करना होगा । किन्तु खेद है कि आजकल की शिक्षा विद्यार्थी के बौद्धिक विकास में ही अपनी इति-कर्तव्यता मान बैठी है । फलस्वरूप उसका भाव-पक्ष अछूता रह जाता है और वह मानसिक कुण्ठाओं का आगार बन जाता है । ये मानसिक कुण्ठाएं ही उ[illegible] कालांतर में व्यक्तिगत रूप से चरित्र-भ्रष्ट तथा सामूहिक[illegible] रूप से अनुशासनहीन बना देती है । अतः भावात्मक दी[illegible] के बिना बौद्धिक शिक्षा एकांगी और अधूरी ही नहीं, अ[illegible] व्यक्ति और समाज दोनों के लिए अहितकर भी है, व[illegible]ोकि मूर्ख चरित्रहीन आदमी की अपेक्षा बुद्धियुक्त चरित्र-भ्रष्ट मनुष्य कहीं अधिक खतरनाक होता है ।

विद्यार्थियों में बढ़ती हुई अनुशासनहीनता का कारण कई लोग हमारे यहां की आर्थिक-कठिनाईयों को मानते हैं, तो कुछ विचारक पश्चिमी सभ्यता के दूषित प्रभाव को

इसका उत्तरदायी ठहराते हैं, किन्तुसूक्ष्म विश्लेषण से यह सिद्ध होता है कि अर्थाभाव तथा ऊपरी चकाचौंध उन्हीं को विचलित कर पाते हैं, जिनमें मानसिक दृढ़ता नहीं होती । अतः विद्यार्थियों को अनुशासन-प्रिय बनाने का सही ढंग उनका यथोचित मनोसंस्कार ही है । निःसन्देह अध्यापक इस क्षेत्र में सर्वाधिक योगदान कर सकते हैं । नीचे हम कुछ ऐसे सुझाव दे रहे है, जो सामान्य शिक्षा प्रणाली के अंग बनकर इस दिशा में परम सहायक हो सकते हैं ।

धर्म-शिक्षा

'धर्म-शिक्षा' का नाम सुनते ही बिदकने की आवश्यकता नहीं । ऐसी शिक्षा हमारी 'धर्म–निरपेक्षता' की विरोधिनी नहीं अपितु पूरक है । 'धारयेति इति धर्मः' के अनुसार जीवन के आधार-भूत शाश्वत सिद्धान्त यथा सत्य, अहिंसा, दया और परोपकार आदि सभी धर्मो में समान हैं । अतः पाठ्यक्रम में उनके समावेश से किसी भी मतावलम्बी को कोई आपत्ति नहीं हो सकती । यदि 'धर्म–शिक्षा' के नाम से चिढ़ हो तो इसे 'नीति-शिक्षा' की सज्ञा दी जा सकती है । यहां यह ध्यान रखना आवश्यक है कि इसे पाठ्यक्रम का अंग तो बनाया जाए, परन्तु औपचारिक परीक्षा का विषय नहीं ताकि यह लक्ष्य-भ्रष्ट न हो ।

व्यक्तिगत उदाहरण

कोमल-मति बालक बालिकाओं का मनोसंस्कार कक्षाओं में प्रदत्त सैद्धान्तिक शिक्षा की अपेक्षा अध्यापकों के व्यक्तिगत जीवन के उदाहरणों द्वारा कहीं अधिक प्रभावशाली ढंग से होता है । अतः अध्यापकों को न केवल अपना उज्ज्वल-पक्ष ही प्रस्तुत करना चाहिए बल्कि उन्हें यथार्थ में भी निष्कलंक जीवन व्यतीत करना चाहिए । अध्यापन-सदृश पुनीत-कार्य को जीविकोपार्जन के अन्यान्य व्यवसायों जैसे ही एक धन्धा मानने वाले जैसे-कैसे लोग यदि इस क्षेत्र में पदार्पण न करें तो इससे राष्ट्र का बड़ा हित होगा ।

आत्मगौरव की भावना

सच्चा अनुशासन वही है जो स्वान्तः प्रेरित हो और वास्तविक संयम वह है जो आत्म–संयत हो । अतः आवश्यकता इस बात की है कि नई पीढ़ी मे आत्म गौरव तथा स्वाभिमान की भावना प्रबुद्ध हो जाए । 'अमुक कार्य मेरी शान के खिलाफ़ है' की भावना दृढ़ होने पर किसी गर्हित कार्य से बचने के लिए धर्म-भीरुता की भी अधिक जरूरत नहीं होगी, क्योकि सभी मानव स्वाभिमान की रचना प्राणपण से करते हैं ।

उच्चाशयता

जीवन मे किसी ऊँचे लक्ष्य की स्थापना हमारी शक्तियों को एक निश्चित दिशा भी प्रदान करती है और इन्हे इधर-उधर भटकने से भी बचाती है । गम्भीर अध्ययन, देश-सेवा अथवा आत्मोन्नति जैसा कोई परमोदेश्य यदि विद्यार्थियो के मन में किशोरावस्था से ही घर कर जाए तो न केवल उनका अपना जीवन ही सुधरेगा बल्कि वह राष्ट्र की भी एक अमूल्य निधि सिद्ध होंगे । बाल-हृदय में इन ऊँचे आदर्शों की प्रतिष्ठा महापुरुषों के जीवन चरित्रों के समुचित अध्यापन से सम्भव है ।

वसुधैव कुटुम्बकम् का भाव

'यह समूची पृथ्वी मेरा परिवार है' और 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की भावना साथ–साथ चलती है । अपने जैसा ही दूसरों को मान लेने पर यह कदापि सम्भव नहीं कि हम कोई मानव-विरोधी कार्य करे । बच्चों में यह भाव छोटी आयु से ही भर देना चाहिए । 'सामाजिक अध्ययन' का विधिवत् अनुशीलन इस में बहुत सहायक सिद्ध हो सकता है ।

अन्त में यह दुहरा देना उचित होगा कि भावी पीढ़ी के चरित्र निर्माण का उत्तरदायित्व समाज के किसी एक वर्ग तक ही सीमित नहीं बल्कि सभी सामाजिकों को अपने-अपने क्षेत्र में अपनी-अपनी बुद्धि एवं योग्यतानुसार नवयुवकों का पथप्रदर्शन करने के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए, तभी यह गुरुत्व कार्य सकुशल सम्पन्न हो सकेगा ।

❑❑

प्राचार्य,
केन्द्रीय विद्यालय, अबोहर, (पंजाब)

विकलांग बच्चों के माता-पिता क्या करें

❑ नीलम अग्रवाल

विकलांगता जन्मजात हो या वातावरण जनित, शारीरिक हो या मानसिक वह किसी भी रूप में अभिशाप नहीं है। विकलांग समाज पर बोझ नहीं है, उसे आवश्यकता है उचित मार्गदर्शन, उचित व्यवहार एवं कुछ विशेष सुविधाओं की, क्योंकि एक विकलांग बालक अन्य सामान्य बालकों से कुछ क्षमताओं, योग्यताओं में भिन्न होता है। उसे किसी व्यक्ति की सहानुभूति की नहीं वरन् सहयोग की आवश्यकता होती है। इस सहयोग की अपेक्षा सर्वप्रथम वह अपने माता-पिता, आस-पास के वातावरण व समाज से करता है। इसलिए माता-पिता की जिम्मेदारी इस बच्चे के प्रति कुछ ज्यादा होती है। अतः वह बच्चे के प्रति अपनी हीन भावना व अपराध बोध को त्यागकर, उससे एक सामान्य बालक की भांति अपेक्षाएँ न रखकर संयम के साथ सहज व्यवहार करें, क्योंकि यही सहज व्यवहार बालक के विकास व आत्म-सम्मान की वृद्धि में सहायक सिद्ध होता है।

जिस परिवार में कोई विकलांग जन्म लेता है या किसी बीमारी या दुर्घटना की वजह से विकलांग हो जाता है, तो उस परिवार में एक मानसिक तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। माता-पिता को उसके पालन-पोषण व भविष्य को लेकर चिन्ता होना स्वाभाविक है, परन्तु इस चिन्ता और मानसिक तनाव को किसी भी परिस्थिति में उस विकलांग के समक्ष प्रकट न करे। यथाशीघ्र चिकित्सक, परामर्शदाता या कोई ऐसी संस्था जो उस विकलांगता से संबंधित क्षेत्र में कार्यरत हो, से मिलकर उसके सहयोग से अपना मानसिक तनाव दूर करें और सहज व्यवहार से बच्चे के विकास व भविष्य निर्माण में अपना योगदान दे, साथ ही साथ परिवार के अन्य सदस्यों को भी समझाकर उनका मानसिक तनाव दूर कर सहज व्यवहार के लिए प्रेरित करें। इससे विकलांग बालक में हीन भावना नहीं आयेगी और थोड़ी बहुत आ भी जाती है तो बालक को प्यार व सहयोग से दिन-प्रतिदिन के कार्य सीखने के लिए प्रोत्साहित कर उसे धीरे-धीरे स्वावलम्बी बनाएँ। इससे उसके मन में उत्पन्न हीन भावना स्वतः खत्म हो जायेगी। उसमें अच्छी आदतों के विकास के लिए अपने सामान को यथा स्थान रखना, खेल के स्थान को साफ-सुथरा रखना, नहाना, दाँत साफ रखना आदि कार्य करने सिखाएँ और उसे ऐसा करने के लिए प्रोत्साहित करें, जिससे वह कार्य करने में रुचि ले। विकलांग बालकों को सिखाते समय उपयुक्त सामग्री आवश्यक उपलब्ध हो, इससे बालक शीघ्र सीखता है, जैसे अगर हम उसे किसी जानवर के विषय में बता रहे हैं तो हमें उस जानवर को या उसके चित्र को बालक को अवश्य दिखाना चाहिए।

माता-पिता अपना खाली समय अधिकतर विकलांग बच्चे के साथ खेलने, बातचीत करने व नए-नए कार्य सिखाने में व्यतीत करें, और उसकी विकलांगता को ध्यान में रखकर उसके लिए खेल सामग्री व खेलने का प्रबन्ध करें, तथा इन खेलों को उसे समझाने के लिए खुद भी उसके साथ खेलें, इससे बालक को खुशी मिलेगी एवं उसका आत्मविश्वास बढ़ेगा और वह खेल-खेल में काफी कुछ खुद ही सीख जायेगा। किन्तु ऐसा करने के लिए माता-पिता को सामान्य बालक की अपेक्षा इन बालकों के साथ अधिक धैर्य, संयम व सहयोग की आवश्यकता होती है।

यदि बालक किसी कार्य को सीख या कर नहीं पा रहा है तो उसके सामने क्रोध, चिड़चिड़ाहट या मारपीट का व्यवहार प्रकट न करें और न ही उसकी विकलांगता या भाग्य को कोसें। अन्यथा ऐसा करने से उसका आत्म विश्वास कम होगा और वह कार्य से बचकर भागने की प्रवृत्ति अपनाएगा जो उसके विकास के लिए हानिकारक है।

ऐसे बालक को घर के आस-पास के वातावरण बाजार, पार्क, बैंक, डाकघर इत्यादि की जानकारी स्वयं माता-पिता उसे साथ ले जाकर कराएं और धीरे-धीरे उसे खुद इन कार्यों को करने के लिए प्रोत्साहित करें, इससे उसके आत्मविश्वास व मनोबल में वृद्धि होगी।

किसी कार्य की सफलता व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक क्षमता व रूचि पर अधिक निर्भर करती है। एक मंदबुद्धि वाला (0-25, I. Q) विकलांग बालक अगर ठीक तरह से पढ़ने की योग्यता नहीं रखता है तो वह हाथ के कार्य सीखकर भली प्रकार कर सकता है, इसी प्रकार अगर शारीरिक विकलांगता वाले बालक के लिए हाथ के कार्य या शारीरिक परिश्रम करने वाले कार्य कष्टदायक हो सकते हैं किन्तु हो सकता कि वह अध्ययन उतनी ही सरलता व सहजता से कर लेता हो जितना कि मंद बुद्धि वाला बालक हाथ के कार्य करता है।

यदि बालक स्कूल जाने योग्य है तो माता-पिता उसके अध्यापकों व साथियों से लगातार सम्पर्क कर उनके व्यवहार आदि के विषय में जानकारी करें, और यदि कोई बालक उस विकलांग बालक को चिढ़ाता है तो बालक को समझाकर या उसके माता-पिता तथा अध्यापक के साथ मिलकर बातचीत करके उस समस्या को दूर करें। यदि विकलांग बालक अपनी सीमित समक्षताओं तथा अपनी उपेक्षा के कारण असामान्य व्यवहार करने लगा है तो उसे उचित प्यार व संरक्षण दें तथा घर के अन्य सदस्यों व भाई-बहनों के प्यार व सहयोग से उसकी हीन भावना व असामान्य व्यवहार को दूर करें।

हर व्यक्ति में कोई न कोई एक विशेष कला होती है, यह बात विकलांग बच्चों के लिए भी सत्य है, इसलिए उसकी इस विशेष योग्यता को जैसे — सृजनात्मकता, संगीत, कला, लेखन आदि को पहचान कर उसे क्षेत्र में बढ़ने के लिए उचित अवसर प्रदान करें प्रोत्साहित करें। यह प्रयास उसके भविष्य निर्माण में भी उपयोगी हो सकता है। हमारे समाज में बहुत से विकलांग व्यक्तियों ने ऐसे कार्य किए हैं जो एक सामान्य व्यक्ति के लिए भी अत्यन्त कठिन है, ऐसे व्यक्तियों के बारे में अक्सर दूरदर्शन, पत्र-पत्रिकाओं व समाचार पत्रों में प्रकाशित होता रहता है। अभी हाल में ही एक भारतीय दृष्टिहीन बालिका ने काफी कम उम्र में ही अपनी लगन व प्रेरणा से 'गीता' नामक ग्रंथ का अनुवाद दृष्टिहीनों की भाषा 'ब्रेल' में मात्र 26 घंटों में कर 'गिनीज बुक आफ वर्ल्ड' में नाम दर्ज कराकर विश्व विख्यात ख्याति पाई है। यह उदाहरण किसी भी व्यक्ति को प्रेरित कर सकता है। इस प्रकार के अन्य व्यक्तियों के संघर्ष कर सफलता प्राप्त करने के विषय में बालक को भी बताएं जिससे उसके मन में कुछ विशेष करने की भावना जागृत हो।

विकलांग बालक की तुलना कभी भी किसी सामान्य बालक, उसके भाई-बहिन या साथियों से न करें अपितु उसके द्वारा किए गए कार्यों की प्रशंसा अवश्य सबके सामने करें। घर आए मित्रों, मेहमानों के समक्ष अपने बच्चे की विकलांगता के लिए दुःख न प्रकट करें और न ही उनकी सहानुभूति प्राप्त करने की चेष्टा करें। अन्यथा ऐसा न करने पर बालक के आत्म-सम्मान को ठेस पहुँचती है जिसका प्रभाव उसके असमान्य व्यवहार जैसे-नाखून काटना, गाली देना, बिस्तर गीला करना इत्यादि के रूप में सामने आता है जो उसके लिए हानिकारक हैं, क्योंकि वह अपने आत्मविश्वास को खोकर खुद को लाचार महसूस करता है।

आजकल चिकित्सा विकलांगता के लिए वरदान है, अपने बच्चे की विकलांगता को ध्यान में रखकर उपयुक्त चिकित्सा कराएँ। विभिन्न विकलांगताओं के लिए उपयोगी

यंत्र व उपकरणो का विकास काफी तेजी से हुआ है, जिनके प्रयोग से विकलांगता को किसी सीमा तक कम किया जा सकता है जैसे किसी अंग के कट जाने पर कृत्रिम अंग लगवाकर, सुनाई कम देने पर श्रवण यंत्र लगवाकर और दिखाई कम देने पर विशेष चश्मा लगवाकर उस विकलांगता को कम किया जा सकता है ।

माता-पिता विशेष ध्यान रखे कि विकलांग बालक को जरूरत से ज्यादा भावनात्मक, शारीरिक या मानसिक सुरक्षा देना, बालक के विकास मे सहायक न होकर बाधक ही होता है । वह ज्यादा सुरक्षा पाकर कई प्रकार की गलत आदते जैसे-चोरी करना, झूठ बोलना, गाली देना आदि सीख लेता है साथ-साथ उसमें दूसरों पर आश्रित रहने की प्रवृत्ति जागृत हो जाती है ।

विकलांगता कभी किसी व्यक्ति की उन्नति मे बाधक नहीं होती, उसके लिए आवश्यकता है मनोबल व कुछ करने की प्रवृत्ति की, संघर्ष करने की प्रेरणा की, उचित मार्ग दर्शन की। अगर दृष्टिहीन होने पर सूरदास भारतीय साहित्यिक इतिहास में एक महान रचनाकार बन सकते हैं, संगीतकार रवीन्द्र जैन, दृष्टिहीन होते हुए भी भारतीय संगीत जगत को कभी न भुलाया जाने वाला संगीत देकर एक सूर्य की भांति चमक सकते है, सुधा चन्द्रन एक पैर से विकलंग होने के पश्चात् अपनी लगन, मेहनत व प्रेरणा के बल पर एक प्रसिद्ध नृत्यांगना बन सकती हैं, तो आपका बच्चा भी आपकी प्रेरणा, योगदान तथा उचित मार्गदर्शन से एक महान व्यक्तित्व बनकर राष्ट्र के मानस पटल पर एक सूर्य की भाति उदित हो सकता है, परन्तु यह सब इतना आसान नहीं है क्योकि एक सामान्य बालक भी बिना मेहनत, लगन, प्रेरणा व उचित मार्ग-दर्शन के अभाव मे यह सब नहीं कर सकता आपको तो अपने बालक के लिए बहुत कुछ बलिदान कर, संयम, मेहनत, लगन के साथ, विकास के उचित अवसर, अपना पूरा सहयोग तथा उचित मार्गदर्शन देना होगा जिससे वह भी कुछ बनकर आपका नाम रोशन कर सकें ।

प्राय: देखा गया है कि एक विकलांग बालक अन्य बालकों की तुलना में ज्यादा परिश्रमी, लगनशील व ईमानदार होता है क्योकि वह अपना ध्यान इधर-उधर न लगाकर अपने कार्य के ऊपर ही केन्द्रित रहता है । कई संस्थाओं में तो विकलांग व्यक्ति सामान्य व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक कुशलता व लगन से अपना कार्य करते देखे गए है । इसलिए अपने बालक की क्षमताओं को पहचानकर उसे उचित सहयोग व मार्गदर्शन दें ।

जिस प्रकार सामान्य बालको के भविष्य निर्माण मे माता-पिता का योगदान महत्वपूर्ण है, उससे भी कहीं अधिक एक विकलांग बालक के भविष्य निर्माण में आपकी भूमिका महत्वपूर्ण सिद्ध होगी । इसलिए बच्चे की आवश्यकताओं, कार्य क्षमता, रुचियों को जानकर अपने आस-पास उपलब्ध साधनों का प्रयोग करके उसे राष्ट्र की मुख्य धारा में मिलाकर समाज के लिए उपयोगी अंग के रूप में तैयार कर आत्म निर्भर बनाए । इससे खुद बालक को और आपको प्रसन्नता होगी साथ ही साथ आप समाज में अन्य व्यक्तियों के समक्ष एक उदाहरण प्रस्तुत करने में समर्थ होगे ।

❑❑

प्रोजेक्ट फैलो
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद.,
नई दिल्ली

दृष्टिहीन छात्रों की अधिगम शैली वरीयता

❑ विमलेश शर्मा

विकलांग बच्चो की शिक्षा मानवता की भूमि पर नहीं बल्कि उपयोगिता के आधार पर होनी चाहिए सही शिक्षा वास्तव में विकलाग बच्चों को ऊपर उठाकर अच्छा नागरिक बनाती है सामाजिक न्याय की भी यही मांग है हमें याद रखना चाहिए कि विकलांग बच्चे भी समाज का एक अभिन्न अंग हैं और भारतीय संविधान मे इनकी शिक्षा पर विशेष बल दिया गया है ।

विकलांग व्यक्ति भी समाज में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है विकलांगता किसी भी प्रकार की हो सकती है चाहे वह दृष्टि की हो, श्रवण की हो, मानसिक हो या सीखने से सम्बन्धित हो । दैनिक जीवन में आने वाली समस्याओं से जूझने के लिए तथा उनसे तालमेल बिठाने के लिए उनको कक्षा में अधिक ध्यान और विशेष देखभाल की आवश्यकता होती है । कई राष्ट्रीय और अन्तराष्ट्रीय संस्थाए भी इन बच्चों की शिक्षा में पर्याप्त रूचि ले रही है इन सस्थाओं में बाल्यावस्था में हुई अपगता को रोकने के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाये हैं जिससे विकलांग बच्चों की ओर समाज का सकारात्मक दृष्टिकोण बन सके और उनको उचित शिक्षा देकर सामान्य बच्चों की तरह एक अच्छा नागरिक बनाना । सामान्य भागीदारी के रूप में आम समाज के साथ विकलांगों को समेकित करना, उन्हें सामान्य विकास के लिए तैयार करना और उन्हें साहस तथा विश्वास के साथ जीवन को व्यतीत करने के योग्य बनाना है । आज के युग में जीवन बड़ा प्रतिर्स्पद्धात्मक है ज्ञानेन्द्रियो की विकलांगता मे आखों की विकलांगता भी एक है हम 95% अनुभव से ही प्राप्त करते है दृष्टि ज्ञान का द्वार है और देखना उस ज्ञान को प्राप्त करने का एक रास्ता। यदि हम अधिगम के सन्दर्भ में सामान्य बच्चे से, तुलना करें तो कह सकते है कि सामान्य बच्चा दूसरों को देखकर ही सीखता है । उनसे प्रेरणा लेता है परन्तु दृष्टिहीन बच्चा सुनकर एवं स्पर्श करके सीखता है हर व्यक्ति के अधिगम की अपनी अलग-अलग शैली होती है जिसको वह पसन्द करता है। यही व्यक्तिगत भिन्नता भी है । प्रत्येक व्यक्ति अपने प्रत्यक्षज्ञान, संगठन और अवधारणा के तरीकों से अधिगम करता है जो उसके अनुरूप और स्थिर होता है । इन विशेषताओं की भिन्नता ही अधिगम शैली कहलाती है । दृष्टिहीन छात्रों की अधिगम शैली वरीयता को अध्ययन करने के लिए सात अधिगम शैली का प्रयोग किया गया है वे अधिगम शैलियां निम्न प्रकार है —

1. लचीलापन और स्थिरता
2. स्वतन्त्र और सामूहिक
3. प्रारूप वरीयता
4. स्वतन्त्र क्षेत्र और निराश्रित
5. अधिक ध्यान केन्द्रित और कम ध्यान केन्द्रित
6. प्रेरणायुक्त और प्रेरणामुक्त
7. वातावरण युक्त और वातावरणमुक्त

अधिगम शैली प्रेणाओं को सन्तोष देने वाली विधियों की प्राप्ति है अथवा लक्ष्यों का प्राप्तन अधिगम से हम क्रियाशीलता मे यथावत, प्रबुद्ध कुशलता एवं मात्रा विशेष की बहुलता पाते है । मनोवैज्ञानिकों द्वारा, शिक्षा शास्त्रियों द्वारा

अधिगम शैली वरीयता के लिए बहुत सी तकनीकियों का विकास हुआ है । जिसके द्वारा कुछ की परिस्थितियों में बिना किसी परेशानी के, श्रम के, प्रभावशाली रूप में इसका प्रयोग किया जा सकता है. इस अध्ययन में विशेष और समेकित संस्थाओं के दृष्टिहीन बच्चों की अधिगम शैली वरीयता का प्राथमिक स्तर पर अध्ययन किया गया है । तथा इस पर सैक्स का क्या प्रभाव पड़ता है । विशिष्ट और समेकित स्कूल दो कारणों से लिये गये हैं — 1. दृष्टिहीन बच्चों के लिए विशिष्ट और समेकित दोनों संस्थाएं साधनों से युक्त है । इन संस्थाओं में सह-शिक्षा है। समान स्तर पर सैक्स के प्रभाव का अध्ययन करने के लिए हमें इन दोनों संस्थाओं का चयन करना आवश्यक है । क्योंकि जहां स्तर का प्रभाव है वहां सैक्स को नियन्त्रित किया जा सकता है इसको ध्यान रखते हुए विशिष्ट और समेकित संस्थाएं इस उद्देश्य को पूरा करती है ।

विधि

इस अध्ययन के लिए प्राथमिक स्तर पर दृष्टिहीन छात्रों के मध्य अधिगमशैली वरीयता को सस्थागत और सैक्स के संदर्भ में जाने का प्रयास किया गया है । मानकीय सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है । प्रतिदर्श आठ संस्थाओं में से 120 दृष्टिहीन बच्चों का विशिष्ट और समेकित स्कूल से समान संख्या के लिए चयन किया गया है । लड़के और लड़कियों का चयन दोनों संस्थाओं से किया गया है ।

उपकरण

प्राथमिक स्तर पर दृष्टिहीन छात्रों की अधिगम शैली वरीयता को जानने के लिए अधिगम शैली सूची का प्रयोग किया गया है । अधिगम शैली सूची में 63 पद हैं जिससे सात अधिगम शैली वरीयता का मापन किया जा सकता है । सूची में पद (हां) और (नहीं) में हैं । प्रत्येक अधिगम शैली सूची के लिए स्कोर 0-9 है परीक्षण और पुनःपरीक्षण तरीकों से अधिगम शैली सूची की अलग-अलग गणना की गई है जिनका क्षेत्र 841 से. .912 (N. 118) है वस्तुनिष्ट बैधता के द्वारा अधिगम शैली सूची की वैधता को परिभाषित किया गया है ।

सांख्यिकी विधि

अधिगम शैली वरियता को जानने के लिए प्रतिशत का प्रयोग किया गया है दो समूहो की अधिगम शैली वरीयता की तुलना करने के लिए 2 × 2 की संगणना तालिका से X^2 मूल्यों की गणना .5 स्तर पर और .01 स्तर पर की गई है ।

तालिका नं. 1

प्रतिवर्ष का प्रारूप

क्रम सं.	सैक्स	संस्था	विशिष्ट स्कूल	समेकित स्कूल	योग
1.	लड़के		30	30	60
2.	लड़कियां		30	30	60
	योग		60	60	120

तालिका नं. 2

विशिष्ट स्कूल और समेकित स्कूल के छात्रों की अधिगत-शैली वरीयता का प्रतिशत

क्रम सख्या	अधिगम शैली के नाम	दृष्टिहीन बच्चों का प्रतिशत		काई स्कावयर स्तर
		विशिष्ट स्कूल =60	समेकित स्कूल =60	
1.	लचीलापन और स्थिरता	73.3 (44) 26.6 (16)	83.3. (50) 16.6 (10)	.01. NS
2.	स्वतन्त्र और सामूहिक	59.6 (34) 43.3 (26)	73.3 (44) 26.6..(14)	.01. NS
3.	प्रारूप वरीयता	73.3. (43) 26.6. (17)	83.3 (50) 10.6. (10)	.01. NS
4.	स्वतन्त्र क्षेत्र और निराश्रित क्षेत्र	48.3. (29) 59.6. (31)	36.6 (22) 65. (29)	30. .0/.
5.	अधिक ध्यान केन्द्रित होना कम ध्यान केन्द्रित होना	59.6. (34) 43.6. (26)	46.6.(28) 51.6. (31)	.02 NS
6.	प्रेरणायुक्त और प्रेरणामुक्त	26.6. (19)	46.6. (28)	1.05
7.	वातावरण युक्त वातावरण मुक्त	73.3. (44) 26.6. (16)	70.0. (42) 30. (18)	.0/.01 NS

* सार्थक .01. स्तर पर

** सार्थक .05 स्तर पर

तालिका नं. 3

लड़के और लड़कियों की अधिगम शैली वरीयता का प्रतिशत और काई स्कावर वैल्यु (X^2)

क्रम सं.	अधिगम शैली का नाम	दृष्टिहीन बच्चों का प्रतिशत लड़के N.-60	लड़कियां N.-60	काई स्कावयर (X^2)
1.	लचीलापन और स्थिरता	83.3. (50) 16.6 (10)	83.3. (50) 16.6 (10)	0.00 सार्थक नहीं
2.	स्वतन्त्र और सामूहिक	60.0 (36) 40.0 (24)	50.0 (30) 46.6. (28)	.54 सार्थक नहीं
3.	प्रारूप वरीयता	56.6 (34) 45.3 (25)	38.3 (23) 61.7 (33)	4.03 .05
4.	स्वतन्त्र क्षेत्र और निराश्रित क्षेत्र	45.3 (25) 56.5 (35)	61.8 (34) 38.2 (22)	.05 4.03
5.	अधिक ध्यान केन्द्रित करना और कम ध्यान केन्द्रित करना	50.0 (30) 50.0 (30)	40.0 (24) 60.0 (26)	12.0. सार्थक नहीं
6.	प्रेरणायुक्त और प्रेरणा मुक्त	45.3. (25) 56.5 (35)	61.7 (33) 38.3 (23)	.05 सार्थक नहीं
7.	वातावरण युक्त और वातावरण मुक्त	65.0 (39) 35.0 (21)	75.0 (45) 25. (15)	1.44. सार्थक नहीं

परिणाम और विवेचना

इस अध्ययन में दृष्टिहीन छात्रों की अधिगम शैली वरीयता को (संस्थागत और सैक्स के संदर्भ में) तालिका न. 2 और तालिका नं. 3 में प्रस्तुत किया गया है।

तालिका नं. 2 से यह सिद्ध होता है कि विशिष्ट स्कूल के 73.3 प्रतिशत दृष्टिहीन छात्र अधिगम मे लचीले तरीके को अधिक वरीयता देते हैं । ये छात्र कुछ अधिगम की समस्याओं को सुलझाने के लिए परम्परावादी तरीके से समझौता नहीं करते, क्योंकि वे यूनीक उत्तर पर पहुंचने की कोशिश करते है । विचार–विमर्श पर अधिक महत्व देते हैं । जबकि इसी स्कूल को 26.6 प्रतिशत छात्र परम्परावादी तरीकों को पसन्द करते हैं । वे उसी प्रक्रिया से सन्तुष्ट हो जाते हैं जैसा उनको कक्षा मे अध्यापक ने कहा है । विशिष्ट स्कूल 59.6 प्रतिशत दृष्टिहीन छात्र ऐसे है जो स्वतंत्र रूप से कार्य करने की क्षमता रखते हैं जिसको अध्यापक-निर्देश की बहुत कम आवश्यकता होती है जबकि 43.3 प्रतिशत दृष्टिहीन छात्रों को अपने साथियों की, आध्यापकों की, शैक्षिक कार्यों को पूरा करने में आवश्यकता होती है ।

- विशिष्ट स्कूल के 73.3 प्रतिशत दृष्टि हीन छात्रों को अपने शैक्षिक कार्यों को पूरा करने मे अध्यापक के साथ-साथ मुद्रित सामग्री की आवश्यकता है । जबकि 26.6 प्रतिशत दृष्टिहीन छात्रों को इसकी आवश्यकता नहीं होती है ।
- छात्रों का अधिगम सीखने की परिस्थिति के संरचनातमक अधिगम पर निर्भर करती है । विशिष्ट स्कूल के 48.3 प्रतिशत छात्र अधिगम में स्वतत्र क्षेत्र को पसन्द करते हैं । जबकि 59.6 प्रतिशत दृष्टिहीन छात्र पराधित क्षेत्र से सीखना पसंद करते हैं कम ध्यान केन्द्रित करना और अधिक ध्यान केन्द्रित करना भी छात्रों के अधिगम को प्रभावित करता है । 59.6 प्रतिशत दृष्टिहीन छात्र अधिगम को अधिक समय संगठित नहीं कर सकते उसकी रूचि कम होती है । और वे सामाजिक गतिविधियों में अपने को व्यस्त रखते हैं। इसके विपरीत 43.6 प्रतिशत दृष्टिहीन छात्र ऐसे हैं । जब उनको अध्यापक द्वारा कार्य दिया जाता है तो वे उसको बिना किसी परेशानी के, बिना किसी रुकावट के, रूचि के साथ एव प्रेरणा से पूरा करते है। 26.6 प्रतिशत दृष्टिहीन छात्र, अधिगम में समय-समय पर प्रेरणायुक्त और प्रेरणा मुक्त दोनों शैलियों को पसन्द करते हैं ।
- विशिष्ट स्कूल के 73.3 प्रतिशत दृष्टिहीन छात्र अपने अधिगम में वातावरणीय युक्त शैली को पसन्द करते हैं जबकि 26.6 प्रतिशत दृष्टिहीन छात्र अधिगम में वातावरण मुक्त शैली को पसन्द करते हैं । वातावरण युक्त दृष्टिहीन छात्र पढ़ते समय किसी दूसरे का वार्तालाप होना, और बाधा उत्पन्न करने वाले कारकों को पसन्द नहीं करते है जबकि वातावरण से मुक्त दृष्टिहीन छात्र हर परिस्थिति से समझौता करके इस शैली को पसन्द करते हैं ।
- इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अधिगम शैली वरीयता को अधिक मात्रा में पसन्द करने वाले दृष्टिहीन छात्र लचीले, स्वतन्त्र रूप से कार्य करने वाले, स्वतन्त्र क्षेत्र, अधिक लम्बे समय तक ध्यान केन्द्रित करने वाले, और प्रेरणा युक्त शैली को वरीयता देते हैं ।

अगले पृष्ठ पर दी गई तालिका नं. 3 से यह सिद्ध होता है कि 83.3% दृष्टिहीन लड़के लचीले ढंग से पढ़ना पसन्द करते है। जबकि 16.6% लडके स्थिरता शैली को वरीयता देते हैं ।

- 60.6 प्रतिशत दृष्टिहीन लड़के स्वतन्त्र शैली में. और 40 प्रतिशत दृष्टिहीन लड़के अपने साथियों के सहयोग से और अध्यापक के साथ अधिगम में वरीयता देते हैं ।
- 56.6 प्रतिशत दृष्टिहीन लड़के प्रारूप वरीयता शैली को और 45.3 प्रतिशत केवल श्रवण शैली को पसन्द करते है ।
- 45.3 प्रतिशत लड़के अधिगम के लिए स्वतन्त्र क्षेत्र को पसन्द करते है। 56.6 प्रतिशत पराश्रित क्षेत्र से सीखना पसन्द करते है ।
- अधिगम रूचि कम होने पर या अधिक होने के संदर्भ

में दृष्टिहीन लड़को की अधिगम शैली वरीयता एक समान है ।

- 71.6 प्रतिशत दृष्टिहीन लड़के अपने सीखने के शैलियों मे यह चाहते है कि समय-समय पर उनको प्रेरित किया जाय जबकि 26.6 प्रतिशत लड़के प्रेरणामुक्त शैली को पसन्द करते है । क्योकि वे कठिन परीश्रम नहीं कर सकते दूसरों को दोष देते है । तथा निराशा का अनुभव करते है। इस प्रकार यह शैली सीखने मे छात्रो की उपलब्धी से सम्बन्धित है ।
- 65 प्रतिशत दृष्टिहीन लड़के वातावरण युक्त शैली को पसन्द करते हैं जबकि 35 प्रतिशत दृष्टिहीन लड़के वातावरण मुक्त शैली को पसन्द करते है ।

इस प्रकार हम कह सकते है । अधिगम शैली वरीयता के सन्दर्भ मे दृष्टिहीन छात्र लचीलापन, पराश्रित क्षेत्र, अधिक और कम ध्यान केन्द्रित होना, प्रेरणा युक्त और वातावरण युक्त शैली को अपने अधिगम के लिए पसन्द करते है। इसी प्रकार तालिका-3 के आधार पर अगर हम दृष्टिहीन लडकियों की अधिगम शैली वरीयता को देखे तो दृष्टिहीन लड़किया अपने अधिगम मे लचीलापन, पराश्रित क्षेत्र अधिक ध्यान केन्द्रित होना, प्रेरणा युक्त और वातावरण युक्त शैली को पसन्द करती हैं ।

दृष्टिहीन लड़को और लड़कियों की अधिगम शैली वरियता की तुलना करने के लिए प्रत्येक अधिगम शैली के लिए काई स्कावयर वैल्यू (X^2) को भी देखा गया है । इन सभी शैलियो मे 3 अधिगम शैली दृष्टिहीन छात्रो के संदर्भ मे .05 स्तर पर सार्थक होती है। इससे सिद्ध होता है कि लड़के और लडकियों दोनों में प्रारूप वरीयता, वातावरण युक्त प्रेरणा युक्त स्वतन्त्र कार्य करने की शैली को अपनाया है ।

निष्कर्ष

अधिगम शैली एक महत्वपूर्ण क्षेत्र ही जो छात्रों को उपलब्धी और अधिगम से सम्बन्धित है । छात्र अध्यापक व्यवहार का अच्छा सम्बन्ध स्थापित करता है ।

अधिगम शैली वास्तव मे एक बौद्धिक क्रिया है इसमे सन्देह नहीं कि बच्चा कैसे सिखता है अच्छे काल के लिए कैसे सीखे ? अधिक महत्वपूर्ण है क्या सीखे ? की होगा ।

अध्यापक को चाहिए कि वह ऐसी शिक्षण प्रविधियों को अपनाये जिसमे छात्रों की रूचि का विकास हो स्वतन्त्र कार्य करने की क्षमता विकसित करें, । अध्यापक बच्चो के स्तर को जानता है । इस प्रकार वह वातावरण के अनुसार बच्चों को अधिगम दे सकता है । क्योकि दृष्टि हीन बच्चे देख नहीं सकते वे केवल स्पर्श कर ही पढ़ सकते है और विचारों को ग्रहण कर सकते है । भारत मे बहुत कम पुस्तके ब्रेल मे उपलब्ध है । इसलिए अध्यापक को चाहिए कि ऐसी शिक्षण विधियो को अपने शिक्षण मे अपनाये कि सामान्य बच्चो के समान उनमे भी आत्मविश्वास जागृत हो सके और समाज का एक योग्य नागरिक बन सके। अतः अधिगम शैली शिक्षा के क्षेत्र मे और परामर्श निर्देशन के रूप मे [illegible] जान पड़ती है।

वर्तमान शिक्षा एवं परीक्षा प्रणाली

❑ नकुल प्रसाद चौधरी

शिक्षा मानव के सर्वांगीण विकास में सहायक होती है। शिक्षा के बिना मानव जीवन अधूरा है। स्वस्थ मस्तिष्क की उत्पत्ति एवं उत्तम नैतिक आचरण का विकास इसी से संभव है। मनुष्य के जन्म के साथ ही शिक्षा प्रारम्भ हो जाती है. सर्वप्रथम बच्चा अपनी माँ की गोद में शिक्षा का पहला पाठ पढ़ता है। तभी तो कहा गया है कि परिवार मानव जीवन की सर्वोत्तम पाठशाला है और माँ प्रथम अध्यापिका। अपने परिवार और समाज मे बच्चा जो शिक्षा ग्रहण करता है, अपने में जिन नैतिक गुणों का विकास करता है, की परीक्षा जीवन के पग-पग पर ली जाती है। लोग उसके व्यवहार से उसके गुण-अवगुण की परीक्षा कर लेते हैं और अनुमान लगा लेते है कि वह कितना सभ्य, बुद्धिमान और व्यवहार कुशल आदि है।

परीक्षा ही शिक्षा की वास्तविक कसौटी है। जीवन के हर क्षेत्र मे परीक्षा होती है---चाहे वह प्रशासनिक क्षेत्र हो या रणकौशल का क्षेत्र; समाज सेवा का क्षेत्र हो या राष्ट्र सेवा का क्षेत्र। सम्पूर्ण शैक्षणिक संस्थाओ समाज एवं राष्ट्र की उन्नति के लिए शिक्षा अति आवश्यक है और इसका मूल्यांकन परीक्षा के द्वारा किया जाता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक परीक्षायें होती हैं।

प्राचीन समय में परीक्षा का स्वरूप आज से भिन्न था किन्तु उस समय भी मौखिक एवं व्यवहारिक परीक्षायें ली जाती थी। उस समय बुद्धि परीक्षा, कौशल परीक्षा, मेधापरीक्षा, तार्किक शक्ति की परीक्षा एवं ग्रहण शक्ति की परीक्षाये ली जाती थी। उस समय आसानी से किसी को परीक्षोत्तीर्ण घोषित नहीं कर दिया जाता था। चिड़िया की आँख को तीर से छेद करने के क्रम में कौरवो एवं पाण्डवों की मौखिक एवं व्यवहारिक परीक्षा ली गई और जब अर्जुन ने सही उत्तर दिया एवं पक्षी की आँख पर निशाना लगाया तभी उन्हें उत्तीर्ण घोषित किया गया। जब वे धनुर्विधा में निपुण हो गये, तभी उन्हे महान धनुर्धारी घोषित करते हुए "सब्यसाची' की संज्ञा से विभूषित किया गया। पिंजड़े में बन्द मोम के सिंह को बिना पिंजडा खोले बाहर निकालने हेतु चन्द्रगुप्त एवं अन्य कुमारों से प्रश्न कर उन लोगों की बुद्धि एवं तार्किक शक्ति की परीक्षा ली गई थी।

आधुनिक परीक्षा प्रणाली का एकांगी दृष्टिकोण है। यह प्रणाली अंग्रेजों की देन है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के तैनालीस वर्षो के बाद भी अंग्रेजों से विरासत में मिली औपनिवेशिक शिक्षा प्रणाली की समाप्ति नहीं हुई है। माध्यमिक शिक्षा प्रयोगो की चाहार दीवारी में कैद है। देश के भावी नागरिकों के निर्माण हेतु वर्तमान शिक्षा प्रणाली में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है। मैकाले की शिक्षा प्रणाली से शिक्षा एवं ज्ञान का प्रसार नहीं होता है। इस प्रणाली से मनीषी अन्वेषक एवं राष्ट्रवादी पैदा नहीं किया जा सकता है। इससे केवल किरानी ही पैदा हो सकता है। इससे स्वतन्त्र चिन्तन की प्रवृत्ति का ह्रास होता है। इसलिये इस प्रणाली में परिवर्तन की आवश्यकता है।

वर्तमान समय मे जो परीक्षाये आयोजित की जाती है उनमे पठित पाठों (पाठ्य-क्रमों) के आधार पर कुछ प्रश्न पूछे

जाते है और जिनके उत्तर परीक्षार्थियों को लिखना पड़ता है। उक्त परीक्षा में 30% या उससे अधिक अंक प्राप्त करने पर उन्हें उत्तीर्ण घोषित कर दिया जाता है और माना जाता है कि उन्हें विषय-वस्तु का ज्ञान हो गया है। किन्तु यह मानना पूर्णतः सत्य नहीं है। अगर किन्हीं को उक्त परीक्षा में शून्य अंक प्राप्त होता है तो ऐसा मानना गलत होगा कि विषय वस्तु का कुछ भी ज्ञान नहीं है। आजकल के विद्यार्थी चयनित प्रश्नों के उत्तर 'गैस पेपर' नोट बुक, आदि से पढ़कर जाते हैं और उन्हीं के आधार पर पाँच-छः प्रश्नों के उत्तर लिखते हैं। अगर संयोग से वही प्रश्न परीक्षा में पूछे जाते हैं तो उन्हें अपेक्षाकृत अधिक अकों की प्राप्ति होती है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं हुआ कि उन्हें विषय-वस्तु का अपेक्षाकृत अधिक ज्ञान है।

एकबार मैने एक स्नातक (प्रतिष्ठा) उत्तीर्ण छात्र से पूछा "भाई, तुम अपने विषय-ज्ञान के बारे में कहो।" तो, उसने कहा कि परीक्षा पास करना आसान है किन्तु विषय ज्ञान कठिन। आजकल की परीक्षायें चयनित प्रश्नोत्तरो एवं अटकलों, नकलों एवं पैरवी के आधार पर ली जाती है। मुझे उक्त छात्र की बातें जँचती है। मेरे विचार से परीक्षा इस तरह से ली जानी चाहिये कि छात्रों को उक्त परीक्षा के विषय-वस्तु के सही ज्ञान की जाँच हो सके। आज परीक्षा में कदाचारिता बढ गई है, इसे दूर किया जाना चाहिये।

परीक्षा एवं प्रश्नपत्र के स्वरूप

परीक्षा लिखित, मौखिक एवं व्यवहारिक (प्रायोगिक) हो एवं प्रश्न वस्तुनिष्ठ, विषयनिष्ठ, लघु उत्तरीय एवं दीर्घ उत्तरीय हो एवं पूरे पाठ्यक्रम से प्रश्न पूछे जायें। बोर्ड एवं विश्वविद्यालय द्वारा "अकादमिक कैलेण्डर" बनाया जाय एवं निर्धारित तिथि को प्रत्येक वर्ष परीक्षा ली जाय। सामान्य परिस्थिति में परीक्षा की तिथि बढ़ायी न जाये।

सामान्यतया निम्नलिखित तीन तरह की परीक्षायें ली जाती है —

1. **मौखिक परीक्षा :** इसमें परीक्षार्थियों से इस तरह के प्रश्न पूछे जायँ की उनके सूचनात्मक ज्ञान पढ़ने की योग्यता, उच्चारण, व्यक्तिगत गुण-अवगुण का ज्ञान, आदि की जाँच हो सके। इसमे लघु उत्तरीय प्रश्न पूछे जायँ ताकि कम समय में अधिक परीक्षार्थियों का साक्षात्कार हो सके।
2. **व्यवहारिक परीक्षा :** इसमें पढ़ाये गये पाठों का प्रदर्शन कराकर उसके ग्रहण शक्ति का मूल्यांकन किया जाना चाहिए।
3. **लिखित परीक्षा :** इसके अन्तर्गत विद्यार्थियों को कार्य-समर्पण, प्रतिवेदन लिखना एवं परीक्षा भवन में उत्तर पुस्तिका में प्रश्नोत्तर लिखना पड़ता है। लिखित परीक्षा सामान्यतया दो तरह की होती है —
   (क) निबन्धात्मक परीक्षा एवं
   (ख) वस्तुनिष्ठ प्रश्न।

(क) निबन्धात्मक परीक्षा समस्यामूलक स्थिति का सापेक्षिक रूप में स्वतन्त्र तथा विस्तृत प्रत्युत्तर है, जो छात्र के मानसिक अनुभवों की संरचना, गतियों तथा कार्यप्रणाली के सम्बन्ध में सूचना प्रदान करता है, जबकि वस्तुनिष्ठ परीक्षा प्रायः एकान्तर प्रत्युत्तर बहुनिर्वचन, तुल्य या रिक्त स्थान पूर्ति रूप के प्रश्नों पर आधारित होता है और सही उत्तर कुंजी के द्वारा अकित किया जाता है। यदि कोई उत्तर कुजी के विपरीत हो तो उसे अशुद्ध माना जाता है। वस्तुनिष्ठ प्रश्न पूरे पाठ्यक्रमों से सरलतापूर्वक चयनित किये जा सकते हैं। वस्तुनिष्ठ प्रश्नों में साधारण प्रत्यास्मरण, रिक्त स्थान पूर्ति प्रश्न एकान्तर प्रत्युत्तर प्रश्न, बहुनिर्वचन प्रश्न, तुल्य रूप एवं वर्गीकृत रूप के प्रश्नों का समावेश रहना चाहिये।

परीक्षार्थियों को प्रश्नोत्तर लिखने हेतु जो पुस्तिका दी जायें, उसी मे प्रश्न अकित हो और उत्तर लिखने हेतु दो

प्रश्नों के मध्य उपयुक्त स्थान हों। प्रश्न वस्तुनिष्ठ एव विषयनिष्ठ-दोनों तरह के संतुलित रूप में हों। प्रश्नों का मुद्रण इस तरह से किया जाये कि किसी एक प्रश्न पुस्तिका के प्रश्नों का क्रम दूसरी पुस्तिका से मेल नहीं खाये किन्तु सभी प्रश्न पुस्तिकाओं में वे सभी प्रश्न समान एवं समरूप हों। इसके लिये प्रश्नों का चयन एवं मुद्रण इस प्रकार किया जा सकता है। मानलिया कि 50 (पचास) प्रश्नों की पुस्तिका का मुद्रण करना है. इन प्रश्नो को दस-दस के पाँच भागों (सेट) में बाँटा जा सकता है। अब प्रत्येक सेट के क्रम मे थोड़ा अन्तर करके प्रश्नों का मुद्रण कराया जा सकता है। इस प्रकार के प्रश्नों के मुद्रण में कुछ श्रम और धन अधिक लगेगा किन्तु कदाचारिता में यथासंभव कमी आयेगी। क्योंकि नकल करने में परीक्षार्थियों को काफी असुविधा होगी। इस तरह की मुद्रित प्रश्नपुस्तिका........... किसी परीक्षार्थी के बगल वाले परीक्षार्थी की पुस्तिका से मेल नहीं खाने के कारण वे लोग आसानी से नकल करने या करवाने में सहभागी नहीं हो सकेंगे।

प्रश्न पत्रों का चयन सम्पूर्ण पाठ्यक्रमों को ध्यान में रखकर अनुभवी एवं विषय विशेषज्ञों से कराया जाय। सभी प्रश्नों के उत्तर लिखना अनिवार्य हो और वैकल्पिक प्रश्न या अपनी इच्छानुसार प्रश्नों को छाँटकर उत्तर लिखने की अनुमति नहीं दी जाय। प्रश्नों को कठिनता के क्रम में व्यवस्थित किया जाय। यथासंभव आन्तरिक अभिलेखों के आधार पर परीक्षात्तीर्ण या वर्गोन्नति दी जाय। बाह्य परीक्षा बर्ष में दो या तीन बार नहीं लेकर एकबार ली जाय। आन्तरिक अभिलेख लिखने के लिये विधार्थियो को Assesments लिखने के लिये कहा जाय एव शिक्षक Topic end test (पाठोपरान्त जाँच परीक्षा) लें एवं इसके औसत अंकों के आधार पर वर्गोन्नति दी जाय। इससे विद्यार्थी नियमित कक्षा आयेंगे और पूरी निष्ठा, मेहनत एवं लगन के साथ विद्याध्ययन कर सकेंगे। विद्यार्थियों में मौलिक चिन्तन, तर्क, अभिव्यजना तथा विश्लेषणात्मक शक्तियों का विकास होगा।

परीक्षा केन्द्र

परीक्षा संचालन में कमरो की आवश्यकता होती है। प्राय: सभी विद्यालयों एव महाविद्यालयों मे अपेक्षित कमरो का अभाव रहता है जिसकारण पठन-पाठन का कार्य स्थगित कर परीक्षा का संचालन किया जाता है। परिणामस्वरूप निर्धारित समय में पाठ्यक्रम पूरा नहीं हो पाता है और छात्र परीक्षा तिथि बढ़ाने की मांग करते हैं और कभी-कभी परीक्षा का बहिष्कार भी करते है। इसलिये परीक्षा केन्द्र सम्बन्धित विद्यालयों में हों और इसके लिए अलग से 'परीक्षा भवन' का निर्माण हो ताकि बिना कक्षा स्थगित किये परीक्षायें संचालित की जा सके। पूरे राज्य या विश्वविद्यालयों में एक निर्धारित तिथि को परीक्षा प्रारंभ किया जाय। परीक्षक परीक्षार्थियों के साथ इस प्रकार व्यवहार नहीं करें कि उन्हें मानसिक आधात पहुँचे। आज परीक्षक परीक्षार्थियों पर इस तरह की निगरानी रखते हैं कि तानों वे कोई शातिर अपराधी हो अथवा मानों कि कसाई बकरा को देखता हो। इसलिये परीक्षाभवन में परीक्षार्थियों के साथ उदारतापूर्वक व्यवहार किये जाये।

उत्तर-पुस्तिका का मूल्यांकन

परीक्षक उत्तर-पुस्तिकाओं का मूल्यांकन तथ्यों के आधार पर करें। भाषा-दोष या भद्दी लिखावट, आदि के लिये यथासंभव अंक नहीं काटे और न ही सुन्दर लिखावट के लिये विशेष अंक प्रदान करें। कुछ परीक्षक प्रश्नोत्तर पूरी तरह से नहीं पढ़कर सरसरी निगाह से देखकर अंक बैठा देते हैं, जो कि परीक्षार्थी के साथ अन्याय है। परीक्षक अधिक उत्तर-पुस्तिकाओं की जाँच कर अधिक पारिश्रमिक कमाने के लिये ऐसा करते है। इससे परीक्षार्थियों को उचित अंक प्राप्त नहीं हो पाता है और वे मेधाक्रम में पीछे पड़ जाते हैं। अस्तु, परीक्षकों को ऐसी मनोवृत्ति एवं आदत का परित्याग छात्र-हित एवं राष्ट्रहित में करना चाहिये। मूल्यांकन इस तरह से किये जायें कि दो भिन्न परीक्षकों के द्वारा अगर

उत्तर-पुस्तिका का मूल्यांकन (जाँच) कराया जाय तो प्राप्तांकों में कोई विशेष अन्तर नहीं हो ।

वर्तमान शिक्षा एवं परीक्षा प्रणाली में सुधार के लिये विज्ञ, मनीषी, अध्यापकों एवं चिन्तकों का योगदान सराहनीय है । सरकार, बोर्ड एवं विश्वविद्यालय के अधिकारीगण सजग हैं । किन्तु अकेले कोई सरकार या अधिकारी इसमें सुधार नहीं ला सकता है । इसके लिये सामाजिक संस्थाओं अभिभावकों, विद्यार्थियों एवं अध्यापकों के सहयोग की आवश्यकता है । इसके लिये समय-समय पर गोष्ठियां एवं कर्मशालाओं का आयोजन किया जाना चाहिये । अगर वर्तमान शिक्षा एवं परीक्षा-प्रणाली में सुधार हो जाता है, तो वह दिन दूर नहीं जब एक बार पुनः हमारा देश भारतवर्ष 'जगदगुरू' की संज्ञा से विभूषित होकर विश्व को मानवता, सत्य, अहिंसा, प्रेम ज्ञान एवं शान्ति का संदेश प्रदान करेगा ।

सहायक,
प्रोजेक्ट कन्या उच्च विद्यालय,
लखपुरा, बाराहाट,
भागलपुर

बांस का थर्मस फ्लास्क

❑ डा. हरमेश लाल

हमारे परिवेश में कम कीमत से शिक्षण साधन बनाने के लिए कई प्रकार की सामग्री उपलब्ध है । माचिस की डिबिया व तीलियां, बीज, पत्तियां, फ्यूज बल्ब, साईकिल बाल्ब की टयूब, साईकिल की तिलियां, बबूल के कांटे, कागज, अथवा पोस्टकार्ड, गत्ता, बांस इत्यादि, जिनके द्वारा बच्चों के लिये हम साधारण, आकर्षिक और जानकारी माडल बनाना व उनको प्रयोग में ला सकते हैं ।

उदाहरण के लिये हम बांस द्वारा थर्मस बना कर इसका स्वरूप और उपयोगिता बच्चों को प्रत्यक्ष रूप से दर्शा सकते हैं । इस मॉडल का मुख्य उद्देश्य है कि हम थर्मस फ्लास्क का बच्चों को सिद्धान्त समझा सकते हैं और यह भी प्रदर्शित कर सकते है कि विभिन्न वस्तुओं के तापक्रम को किस प्रकार स्थिर रखा जा सकता है । बाजार में थर्मस फ्लास्क तो उपलब्ध है परन्तु इसका उपयोग शहरों तक ही सीमित है और गाँव के बच्चों को इसके बारे में बहुत कम जानकारी है । यदि बच्चे स्वयं बांस द्वारा इसका निर्माण करते हैं तो उन्हें मुख्य सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण हो जाता है ।

बांस की थर्मस फ्लास्क का निर्माण करने के लिए निम्नलिखित सामग्री की आवश्यकता होती है —

1. बांस का ऐसा टुकडा जिसमें दो गांठे हों (बांस के दोनों ओर एक-एक गांठ जिसकी लम्बाई 30 और व्यास 9 से., मी. हो) ।
2. 200 मिली लीटर की खाली बोतल—कार्क सहित ।
3. मुहं बन्द करने के लिए मोम।
4. लकड़ी का बुरादा या गर्म कपड़ा बोतल के लपेटने के लिए ।
5. लटकाने वाला हत्था बनाने के लिए थोड़ा सा धागा ।

थर्मस फ्लास्क के निर्माण की विधि

बांस को अ और ब दो भागों में इस प्रकार बांटा कि ब भाग अ भाग का दुगना हो जैसा कि चित्र में दिया गया है ।

एक चाकू की सहायता से अ भाग के भीतरी हिस्से को (जिसका ढ़क्कन स्वयं बनेगा) बाहरी दीवार को भी खुरच कर इस प्रकार तैयार कर सकते हैं कि अ भाग ब भाग के ऊपर पूरा बैठ जाये ।

ब भाग के तल पर लकड़ी का बुरादा रख सकते हैं ताकि बोतल रखने के लिए मुलायम सतह तैयार हो जाये ताकि ताप के अवरोधक की भांति कार्य भी करे। 200 मिली लीटर क्षमता की बोतल को कार्क सहित ब भाग में रख दी जाती है ।

बोतल के चारों ओर लकड़ी का बुरादा भरा जा सकता है या उसे गर्म कपडे से लपेट कर रख सकते हैं ताकि बोतल का तापक्रम स्थिर रहे । लटकाने वाला हत्था बनाने के लिए

बांस का थर्मस फ्लास्क
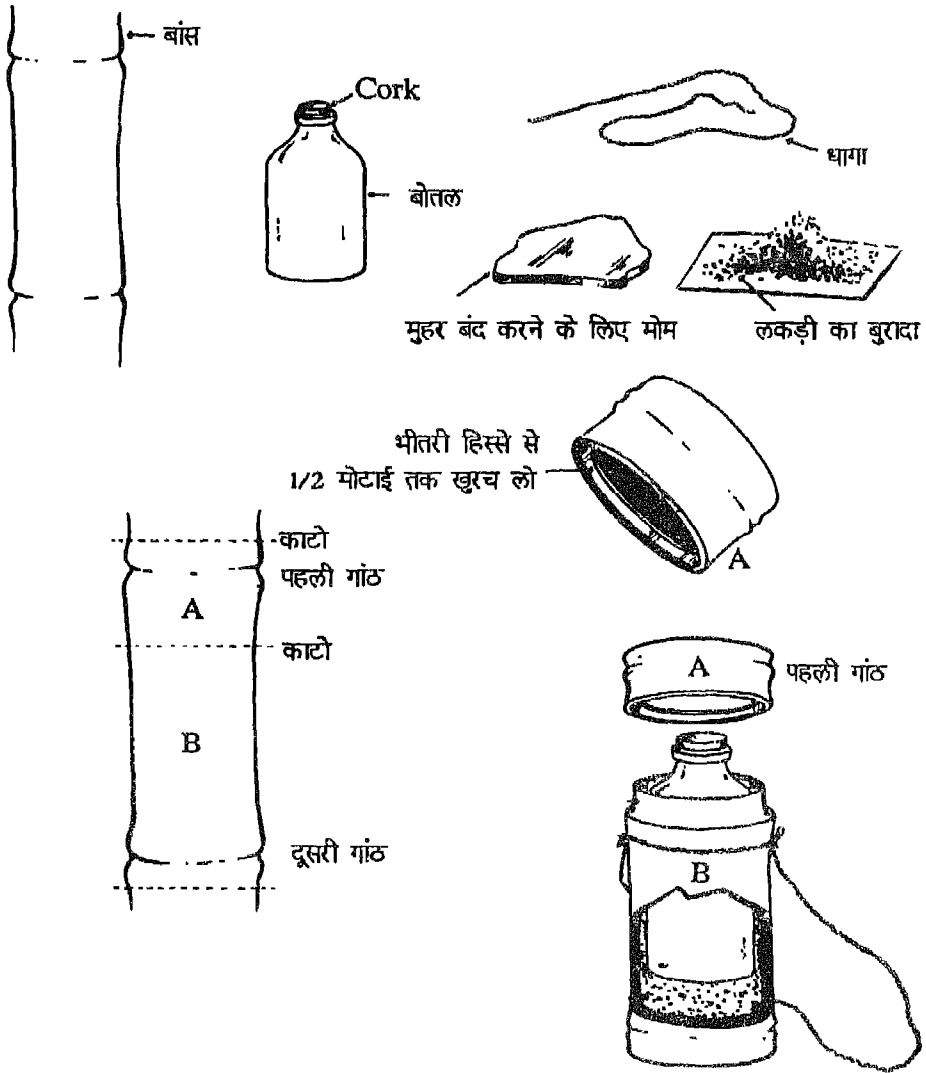
थर्मस फ्लास्क की गर्दन के चारों ओर लपेटते हुए धागा बांधा जैसे कि इस चित्र में दर्शाया गया है । थर्मस फ्लास्क तैयार हो गया।

अनुप्रयोग

100 डिग्री सेल्सियस का उबला पानी को थर्मस फ्लास्क में भरा । सात घंटों के अंतराल के बाद उबले पानी का तापक्रम कमरे के तापक्रम के बराबर होगा । पहले घंटे में उबले पानी का तापक्रम 100 डिग्री सेल्सियस के मध्य होगा और उसके पश्चात धीरे-धीरे यह क्रमशः 85 से. से 75 डिग्री से, 75 से 65 डिग्री से, होता चला जायेगा ।

(सी. आई. ई. टी द्वारा ऐसे पच्चीस प्रयोगों को एकत्र किये गये में से यह एक प्रयोग है जो कि इस लेख के रूप में दिया गया है ।)

❑❑

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद,
नई दिल्ली

शिक्षक और समाज : अपेक्षायें अपनी-अपनी

❑ चन्द्रकांता शर्मा

शिक्षक का दर्जा समाज में बड़ा ही सम्माननीय तथा उच्च माना गया है । वे नैतिकता एवं आदर्शों का प्रेरणास्त्रोत तथा जीवन मूल्यों के सतत नियामक रूप में भी जाना गया है । शिक्षक के रूप में एक विनयशील, अनुशासनबद्ध और आदर्श जीवन पर चलने वाले व्यक्ति को मान्य किया गया है तथा माना गया है कि उस पर समाज, राष्ट्र तथा मानव जीवन की सभी नैतिक जिम्मेदारियां हैं । समय के साथ 'गुरु' के आदर्श रूप की व्यवस्था मिटने लगी है तथा जीवन के दूसरे क्षेत्रों में कार्यरत लोगों की तरह ही शिक्षक भी बनाता चला गया । बनता क्यों नहीं वह भी हाड़-मांस का पुतला है, उसकी भी जिम्मेदारियां तथा महत्वाकांक्षायें हैं । गिरते जीवन मूल्यों की इस आंधी ने शिक्षक के आदर्श स्वरूप को झिंझोड़कर रख दिया और आज तो हालात यह है कि शैक्षिक जगत में भी भ्रष्ठता ने घर बना लिया है ।

शिक्षक बनते ही व्यक्ति पर आदर्श एवं नैतिकताओं का एक मुलम्मा अपने आप चढ़ जाता है । उसे अपने ऊपर जिम्मेदारियां महसूस होने लगती हैं तथा उसके द्वारा किया जाने वाला हर कार्य आदर्शों की कसौटी पर तौला भी जाता है तथा वह सदैव एक मानसिक दबाव का जीवन जीता चला जाता है । ईमानदारी और सच्चाई की प्रतिमूर्ति बनकर भी उसे जीना पड़ता है । परन्तु समाज का उसके प्रति जो नजरिया है, उसमें रात दिन का बदलाव आ गया है। मान-सम्मान तथा सेवाभाव का जो दृष्टिकोण पहले शिक्षकों के प्रति हमारा रहा है, वह सर्वथा नये आयामों में बदल गया है । फिर कब तक मान-सम्मान से पेट भरा जावे। भौतिक सुख-सुविधाये समाज के दूसरे क्षेत्रों के लोग तो ले लें, परन्तु शिक्षक अपनी वही फटीचरी जिन्दगी जीता रहे, यह दोयम दर्जे की मानसिकता हमारे लिए द्योतक रही है ।

जहां तक छात्रों के रवैये का सवाल है, वह बिलकुल बदल गया है । स्कूल शिक्षक हो या कॉलेज शिक्षक हर जगह शिक्षक को ही नीचा देखना पड़ रहा है । छात्रों में बढ़ती अनुशासनहीनता, उच्छृंखलता और आये दिन होने वाली हड़ताले उनके प्रति बढ़ते असन्तोष का प्रतीक हैं । श्रद्धाभाव तो तनिक भी नहीं रहा । बिना गुरू के ज्ञान नहीं मिल सकता, यह बात असत्य मानी जाने लगी । आज छात्र को लेकर शिक्षक के मानस में पचास दबाव काम करते है । वह बच्चे की गलती पर बच्चे को मार तो सकता नहीं । आज मार दिया तो कल उसके साथ क्या अनहोनी हो जायेगी, कहा नहीं जा सकता । छात्रों में इस समझ का

घोर अभाव होता जा रहा है कि शिक्षक की मार का अर्थ उसके जीवन की उपादेयता के लिए हो सकता है। इसलिए शिक्षक भी छात्रों को खुश करने में लग गये। अपने पीरियड पूरा करने की चिंता है। वे उसे कुछ देना भी नहीं चाहते क्योंकि छात्र कुछ लेना भी नहीं चाहते। इस आदान-प्रदान के रुक जाने से राष्ट्र को जो नागरिक मिल रहे हैं, वे आगे कितने कर्त्तव्यबोध को समझ पायेंगे, सहज रूप से जाना जा सकता है।

जहां तक शिक्षको में ट्यूशन के बढ़ते चलन का प्रश्न है, वह प्रासंगिक बन गया है। अल्प वेतन मे जिस दायित्व की पूर्ति हम सोचते हैं, वह कतई संभव नहीं है। उसकी भी जरूरते है, दायित्व है, बच्चे हैं, उनका लालन-पालन, ब्याह-शादी जो भी मनुष्य रूप में उसे मिले हैं, उन्हें उसे निभाना ही है। जटिल होते जीवन संघर्ष में यदि वह इस श्रमसाध्य सहारे का आसरा नहीं लेगा तो वह कई मोर्चों पर हार जायेगा। दूसरे क्षेत्रों में जहां भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, कमीशन खोरी तथा लूट-खसोट मची हैं, जहां शिक्षकों को इस तरह के अवसर बहुत न्यून हैं। गांव की प्राथमिक शाला में बिना किसी स्कूल बजट के पढ़ा रहे शिक्षक से किस घोटाले की आशा की जा सकती है। अधिक से अधिक शिक्षक पर यह आरोप आ जाता है कि उसने रुपये लेकर छात्र के अंक बढ़ा दिये या उसे उत्तीर्ण कर दिया, परन्तु यह इतना न्यून है कि वह यहां भी अपने नैतिक व आदर्श स्वरूप को बचाये हुये हैं। इस दृष्टि से वह जो श्रम करके रुपया कमाता है, उसे किसी गलत दृष्टि से देखा जाना प्रासंगिक नहीं होगा।

समाज में अच्छी बातें व उपदेश देने वाले तो बहुतेरे है, पर उन पर अमल करने वाले गिने-चुने हैं। शिक्षक समुदाय में अभी गैरत बची है। अब यह दीगर है कि स्कूलों में सरकार की ओर से साधन ही सुलभ नहीं हो तो उसके लिए शिक्षक क्या करें ? जहां तक शिक्षकों द्वारा छात्रों को शिक्षा देने का सवाल है, उसका सम्बन्ध हमारे बदलते जीवन मूल्यों से सीधा जुड़ा हुआ है। छात्र न तो पढ़ना चाहते और न अभिभावक उन्हें दिशा ज्ञान देना चाहते। विवाद इसी के बीच है कि दिशा ज्ञान देने का दायित्व माता-पिता पर है या शिक्षक पर। असलियत तो यह है कि ये इन दोनों के बीच की ही बात है। न तो गुरू इससे बच सकता और न ही अभिभावक। आज अभिभावकों के पास समय नहीं है। वे जीविकोपार्जन के अलावा अन्य बातों में इतने उलझ गये हैं कि वे घर में भौतिकता की आंधी तो ला रहे हैं, लेकिन ज्ञान का उजाला कम कर रहे हैं। वे दिन के चौबीस घण्टों में से दस मिनट बालक के लिये नहीं निकाल पा रहे। इससे बच्चे में निर्भयता पनपी है तथा वह बेखौफ जिन्दगी जीने को स्वतंत्र हो गया है। माता-पिता को छात्र को देखना होगा तथा भटकाव पर शिक्षक को जानकारी देनी होगी तथा अपने स्तर पर भी प्रयत्न करना होगा। अन्यथा ज्ञान का पाठ पूरा नहीं होगा तथा संस्कारहीनता के कारण उसका सही मार्ग से विचलित हो जाना स्वाभाविक होगा।

शिक्षक भी इस मामले में अपनी नैतिक जिम्मेदारी से बच नहीं होते। उनका जीवन छात्र के लिए दर्पण होता है, जिसमें वह अपना अक्श देखता है। यदि वे ही आदर्श जीवन से हटने लगेंगे तो आगे आने वाली नयी पीढ़ी का नागरिक नाकारा तथा संस्कारहीन ही होगा। परिवार बालक की प्रारम्भिक व प्राथमिक शाला हो सकता है, परन्तु स्कूली जीवन से जो तमीज, तहजीब और तालीम की जो उसे दीक्षा दी जानी है, उसका दायित्व उसी का है. उससे बचने का प्रयास उसे नहीं करना चाहिए। वे ही यदि छात्रों के साथ खान-पान, रहन-सहन, बोल-चाल तथा उठने-बैठने में 'डिस्टैंस' नहीं रखेंगे तो वे किस आदर्श की बात करेंगे, क्या सीख सकता है छात्र उनसे ? वे ही हल्के मजाक, सिनेमा की बातें अथवा रोमेंटिक बातें करेंगे तो किस तरह दीक्षित हो सकेंगे हमारे नये नागरिक।

निःसन्देह आज के हालात में शिक्षकों के सिर पर दोहरी जिम्मेदारियां हैं। एक तो स्वयं के स्वरूप की इस भौतिकता की अंधी दौड़ में बचाना है, वहीं उसे छात्र को नयी रोशनी में संस्कारशील होने की राह पर लेजाना है अपने

छात्र को। आज देश में भाषा, क्षेत्र तथा जातिवाद के नाम पर अलगाव की आग धधक रही है । साम्प्रदायिक शक्तियां देश को तोड़ने के मार्ग में आगे आ रही हैं, ऐसे में यदि वे नये नागरिकों को दिशाज्ञान तथा सामान्य कर्त्तव्यबोध के साथ राष्ट्रीयता का पाठ नहीं पढ़ा सके तो भारत देश का भविष्य निश्चित ही अंधकारमय है । बहुत क्षुद्र स्वार्थ लोलुपता तथा गिरी हुई महत्वाकांक्षाओं ने व्यक्ति को देश, समाज और कानून से बडा बना दिया है, उसका दोष हमारे शिक्षक और शिक्षा नहीं माने तो गलत ही है । अब यह कहकर चुप करना कि छात्र और उसके अभिभावक उसके माथे आ पड़ते हैं और वह नहीं डांटता है तो छात्र मनमानी करेगा ही करेगा । इसके बीच में सद्भाव और सौहार्द्र का रास्ता है, उस पर बहुत ही विनयशीलता से शिक्षक को वही पुराना आदर्शवादी चेहरा लगा कर बढ़ाना होगा, अन्यथा व्यवस्था तो सर्वनाश की हो ही रही है । आवश्यकता इसी बात की है कि चाहे अतिरिक्त परिश्रम करके ही छात्र को दीक्षित करना पड़े, शिक्षकों को इस ओर सजग रहकर समाज और राष्ट्र के लिये इस महायज्ञ में अपनी आहूति देनी ही होगी । उसके लिए जहां तक आर्थिक दबावों की बात है, वह उसके अभिभावकों से निरंतर सम्पर्क के जरिये निःसंकोच प्रकट कर देनी चाहिए । क्योंकि यह तो जीवन की आवश्यकता है। घोड़ा घास से यारी करे तो खाये क्या ? चाहे गुरुकुल के गुरू जैसा स्वरूप वे न पायें, परन्तु युगानुकूल परिवर्तन के माध्यम से शिक्षक, छात्र को दायित्वशील नागरिक बनाने का दायित्व तो वह ले सकता है ।

आज की शिक्षा प्रणाली न तो व्यक्ति को रोजगार सुलभ करा रही है और न ही संस्कारवान आदमी ही बनाने में मदद कर रही , ऐसी स्थिति में सहज ही कल्पनीय है कि इसकी सार्थकता तथा प्रासंगिकता क्या है ? शिक्षक वेतन पाते हैं तो उसका मेहनताना शिक्षार्थी को ज्ञान की राह बताकर चुका सकते हैं । यहां शिक्षकों के लिए आचरण संहिता में बांधने जैसी कोई बात नहीं है, परन्तु जिस तरह का यह पेशा है, उसकी नैतिकता को नकारा तो नहीं जा सकता । छात्र की जिम्मेदारियों से वह बच नहीं सकता । बिगड़े हुए इस माहौल में ही कोई रास्ता निकालना होगा, जिससे देश के भविष्य पर मंडरा रहे संकट का हल निकाला जा सके । आज छात्रों में माता-पिता, गुरू, राष्ट्र किसी के प्रति कोई श्रद्धाभाव नहीं है । शायद इसका कारण यही है कि उनमें जो प्रारम्भिक संस्कारों, मानव मूल्यों तथा सच्चाइयों का बीजारोपण होना चाहिए था, वह नहीं हुआ तथा वे ऐसी छाया तले पलते रहे, जिसमें अनुशासनहीनता तथा उच्छृंखलता की खाद मिली हुई थी। दूरदर्शन तथा फिल्मों के साथ नयी सांस्कृतिक चेतना ने भी व्यक्ति को आदर्श से भटकाया है एवं गलत सही कर परख का ज्ञान नहीं दिया है । संवेदनशून्यता ने जो जड़ें जमायी हैं, उससे मानवीय संवेदनशीलता का लोप हुआ है तथा विघटन की नयी पौध पनपने को तैयार खड़ी है ।

राष्ट्र और समाज को बचाने के लिए छात्र रूपी इकाई को संस्कारित करना है और यह बिना शिक्षक के पूरी होना संभव नहीं है । शिक्षक को बदलते मानव मूल्यों में भी सच्चाई और ईमानदारी का रास्ता नहीं छोड़ना है क्योंकि वे आदर्श हैं तथा नैतिकताओं में बधे हुए हैं । इस घोर विघटन की बेला में नागरिकों को ज्ञान की राह बताने की जिम्मेदारी शिक्षक को लेनी होगी अन्यथा बिखराव तथा मूल्यहीनता तो अपना नंगा नाच कर रही है और भविष्य अधिक भयावह तथा अंधकारमय है ।

❑❑

1958, पं. शिवदीन का रास्ता,
जयपुर (राज.)

विचार

विद्यालयों में शान्ति शिक्षा

❑ ताज रावत

विश्व के अनेक देश एवं वर्ग आपसी कलह, द्वेष भावना जातीयता के कारण टूट रहे हैं। जनता में यह असंतोष उग्रवाद, अलगाववाद तथा साम्प्रदायिकता के रूप में प्रकट हो रहा है। इसमें सबसे अधिक नुकसान उन्हें होता है जो शांति तथा प्रेम के साथ जीना चाहते हैं। अगर ऐसी विघवंशकारी घटनाओं को रोका नहीं गया तो विश्व के देश आपसी कलह, उग्रवाद तथा गृहयुद्ध की आग में जलकर बरबाद हो जाएगें। ऐसी स्थिति में आज विद्यालयों तथा कालेजों में शान्ति शिक्षा तथा अनुसंधान पर जोर दिया जाना चाहिए जिससे भविष्य में नयी पीढ़ी एकता, शांति व प्रेम के साथ जी सके।

भारत विश्व का सबसे बड़ा प्रजातांत्रिक राष्ट्र है जिसमें विभिन्न जाति धर्म तथा सम्प्रदायों के लोग रहते हैं। इनमें सदियों से एकता एवं सामंजस्य रहता चला आया है। विभिन्न समुदायों तथा शांति शिक्षा के अध्ययनों के लिए भारत विश्व में सबसे अनूठा देश है। अतः शांति शिक्षा के उद्देश्यों की संभावनाएं भारत में बहुत प्रबल हैं।

विभिन्न अध्ययनों से पता चलता है कि विश्व मे शांति तथा प्रेम के साथ जीने वाले लोग सभी देशो मे विभिन्न समुदायों व वर्गों मे मौजूद है। बढ़ती धर्मान्धता एवं कठमुल्लापन ही शांति प्रयासों मे सबसे बड़ा बाधक है। भारत जैसे शांतिप्रिय देश में विभिन्न अध्ययनो से यह बात सामने आयी है। विगत वर्षों से बाहरी ताकतें तोड़फोड़ करने, घुसपैठ कर अशांति फैलाने तथा देश में साम्प्रदायिक कड़ुवाहट भरने की साजिश रच रही हैं। इसके बावजूद भी शांतिप्रिय नागरिकों एवं समझदार राजनीतिज्ञो के कारण आपसी सद्भाव एव एकता कायम रही है। आज देश में जातीयता के विद्वेष को मिटाकर साम्प्रदायिक सद्भाव बनाने की अत्यंत महत्वपूर्ण आवश्यकता है।

शांति शिक्षा (पीस एजुकेशन) तथा अनुसंधान सामाजिक सद्भावना के ऐसे कदम हैं जो भारतीय उपमहाद्वीप तथा पड़ोसी देशो के मध्य विश्वास, मित्रता तथा द्विपक्षीय सबधो को मजबूत करने में अहम भूमिका निभा सकते हैं।

यह हमारे लिए बहुत बड़े गौरव की बात है कि भारत ने हमेशा ही विश्व को शांति और अहिंसा का पाठ पढ़ाया है। महात्मा बुद्ध, भगवान महावीर तथा महात्मा गाधी जैसे सन्त इस बात के प्रबल पोषक तथ्य हैं।

देश की छोटी-बड़ी शिक्षण संस्थाएं समय-समय पर इस ओर संगोष्ठियां तथा सम्मेलन आयोजित करती रहती हैं जिसमें शान्ति-अहिंसा तथा नेक शिक्षा को एक विषय के रूप मे पढ़ाया जाने पर जोर दिया जाता रहा है। आज भारत ही नहीं विश्व में इसकी बहुत बड़ी आवश्यकता महसूस की जा रही है।

देश में विभिन्न जातियों, वर्गों तथा समुदायों के बीच राष्ट्रीय एकता भावनात्मक एकता, तथा नैतिक मूल्यों के प्रति आस्था जागृत करने के लिए शांति शिक्षा तथा अनुसंधान जैसे विषयों का ज्ञान कराया जाना चाहिए। इस प्रकार विद्यालयों

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित प्राइमरी शिक्षक एक त्रैमासिक पत्रिका है ।

इस पत्रिका का उद्देश्य केन्द्रीय सरकार की शिक्षा नीतियों से संबंधित आधिकारिक जानकारी को शिक्षकों और सम्बद्ध प्रशासकों तक पहुंचाना है । इसका उद्देश्य कक्षा में इस्तेमाल की जा सकने वाली सार्थक और सम्बद्ध सामग्री प्रदान करना भी है । भारत के विभिन्न केन्द्रो में चल रहे पाठ्यक्रमों और कार्यक्रमों आदि के बारे में समय-समय पर इसमें सूचनाएं प्रकाशित होती रहती हैं । शिक्षा-जगत् में होने वाली हलचलो पर विचार-विमर्श के लिए यह एक **मंच का काम** भी करती हैं।

इस पत्रिका के प्रमुख स्तम्भ हैं–

(1) प्राथमिक शिक्षा से संबधित शैक्षिक नीतियां ।

(2) प्रश्न और उत्तर ।

(3) राज्यों के समाचार ।

(4) कक्षा में इस्तेमाल की जा सकने वाली सचिव सामग्री ।

स्कूलों के शिक्षको की रचनाएं प्रकाशनार्थ आमंत्रित हैं । हर प्रकाशित रचना पर पारिश्रमिक की व्यवस्था है । लेख हिन्दी या अंग्रेजी में कागज के एक ओर लिखा होना चाहिए । सुविधा के लिए कृपया टाइप की गई या साफ-साफ, सुन्दर अक्षरों मे लिखी रचना की दो प्रतियां भेजे ।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
द्वारा प्रकाशित
महत्वपूर्ण पत्रिकाए

1.	भारतीय आधुनिक शिक्षा, त्रैमासिक	: एक प्रति 4 रुपये, वार्षिक मूल्य	16.00 रु.
2.	प्राइमरी शिक्षक, त्रैमासिक	: एक प्रति 2 रुपये, वार्षिक मूल्य	8.00 रु.
3.	इंडियन एजुकेशनल रिव्यू (अंग्रेजी), त्रैमासिक	: एक प्रति 9 रुपये, वार्षिक मूल्य	34.00 रु.
4.	जनरल आफ इंडियन एजुकेशन (अंग्रेजी), द्विमासिक	: एक प्रति 4 रुपये, वार्षिक मूल्य	22.00 रु.
5.	स्कूल साइंस (अंग्रेजी), त्रैमासिक	: एक प्रति 4 रुपये, वार्षिक मूल्य	16.00 रु.
6.	द. प्राइमरी टीचर (अंग्रेजी), त्रैमासिक	: एक प्रति 2 रुपये, वार्षिक मूल्य	8.00 रु.

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016 के लिए सचिव द्वारा प्रकाशित, कैल्पस (प्रथम तल), 72, राजेन्द्र नगर मार्केट, नई दिल्ली-110060 द्वारा लेजर टाइपसेट तथा ए. जे. प्रिन्टर्स, 5 बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110002 द्वारा मुद्रित ।

प्राइमरी शिक्षक

वर्ष 16 अंक 3 जुलाई 1991

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्राइमरी शिक्षक

प्रधान संपादक	सम्पादकीय सम्पर्क
राजेन्द्रपाल सिंह	प्रधान संपादक, पत्रिका प्रकोष्ठ, राष्ट्रीय शैक्षिक
अकादमिक संपादक	अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
द्वारिका नाथ खोसला	श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016
मुख्य उत्पादन अधिकारी	फोन : 652459
यू प्रभाकर राव	666047/4283
उत्पादन अधिकारी	
डी साई प्रसाद	
उत्पादन सहायक	एक प्रति 2.00 रुपये, त्रैमासिक
राजेन्द्र चौहान	वार्षिक मूल्य 8.00 रुपये

पत्रिका संपादन-राजकुमार गुप्त

कृपया अपना चन्दा सहायक व्यावसायिक प्रबन्धक, प्रकाशन विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् नई दिल्ली - 110016 को भेजें।

प्राइमरी शिक्षक

वर्ष 16 | अंक 3 | जुलाई 1991

इस अंक में

सम्पादकीय

भारतीय शिक्षा और परिषद् के तीस वर्ष

सितम्बर, 1991 को राष्ट्रीय्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद की स्थापना को तीस वर्ष हो जायेगें । संस्थायें पुरानी होने के साथ–2 अपनी परम्परायें भी बनाती हैं, उनमें अनेक ऐसी स्वस्थ परमम्पराओं की स्थापना भी हो जाती हैं जो उनके व्यक्तित्व का प्रतीक बना जाती हैं । तथा कुछ ऐसी भी परम्परायें जन्म ले लेती हैं जिनके सुधार की ओर संस्थाओं के विशेष ध्यान देना होता है । परिषद ने अध्यापक प्रशिक्षण के क्षेत्र में भारत में नये आयाम जोड़े हैं तथा अनेकों कीर्तिमान स्थापित किये हैं । उदाहरण के लिये चार क्षेत्रीय शैक्षिक प्रशिक्षण महाविद्यालयो ने शिक्षक प्रशिक्षण में नई धरा तोड़ी है तथा विकसित की है । पाठ्यक्रम के विकास के क्षेत्र में परिषद् जैसी अन्य कोई संस्था राष्ट्र में नहीं है । हमारी पाठ्यपुस्तकों का अपना बेजोड़ स्थान है । हमारे आंकड़ों के आधार पर शिक्षा में योजनायें बनती हैं वास्तव में सर्वेक्षण के क्षेत्र में जनगणना के बाद हमारे आंकड़े ही सर्वाधिक विश्वसनीय माने जाते है । स्कूली शिक्षा में विज्ञान तथा समाजशास्त्र शिक्षण की समस्त प्रक्रियायें परिषद द्वारा ही विकसित और परिष्कृत की गई हैं । शिक्षा प्रौद्यौगिकी के क्षेत्र में परिषद के कार्य की सराहना सभी कर चुके हैं और हमारे प्रकाशन विभाग ने अनेक राष्ट्रीय पुरस्कार अर्जित किये हैं । आत्म–स्तुति का लेखा–जोखा काफी लम्बा बनाया जा सकता है ।

प्रश्न केवल इतना है कि क्या वास्तव में परिषद के कार्य का हमारी शिक्षा व्यवस्था पर कोई प्रभाव पड़ा है ? यदि हां, तो क्या ? इस प्रश्न का उत्तर सहज नहीं है । यदि एक ओर हमारी पाठ्यपुस्तकों ने पाठ्यपुस्तकें बनाने की शैली तथा कथा में नये आयाम जोड़े है तो अध्यापन क्रिया के लिए अनन्त सम्भावनाओं की ओर संकेत भी किया है । यदि शैक्षिक प्रौद्योगिकी के माध्यम से दृश्य–श्रव्य सामग्री का विकास किया है और शिक्षा का पठन–पाठन अधिक सुघड़ बनाया हैं तो पुस्तकों के प्रकाशन में कला का समायोजन भी किया है । परीक्षा की विधि में सुधार से लेकर शिक्षा में कम्प्यूटर का प्रयोग भी बताया है । एक अर्थ में भारतीय शिक्षा को स्तरीय बनाने में परिषद् का योगदान दर्शनीय है ।

परिषद को फिर भी सोचना है कि भारतीय शिक्षा व्यवस्था 21वीं सदी के आगमन का कैसे स्वागत करना चाहती है । इस दिशा में हमारे प्रयत्न कैसे होने चाहिये, परिषद् को अभी से प्रयास करने होंगे ।

आशा है हम शीघ्र की भविष्य के स्वागत के लिये अपने को तैयार कर पायेंगे ।

❒ राजेन्द्रपाल सिंह

खनिज पदार्थो की खोज कैसे हुई ?

☐ डा. वी. के. राय

अपनी लम्बी सांस्कृतिक विकास की यात्रा में आज का मानव समाज जिस युग में पहुँचा है उसे हम शक्ति और यन्त्र का युग कह सकते हैं । मनुष्य को यहाँ पहुचाने में सर्वाधिक महत्ता खनिजों की है । खनिजों के ज्ञान और प्राप्ति के साथ ही मानव समुदाय पाषाण युग से ताम्र, कांस्य और लौह युग की संस्कृति में प्रवेश कर सका और लौह खनिजों के उपयोग से मानव की संस्कृति में तीव्र परिवर्तन आया है । फिर भी लोहों और ऐसी अनेक धातुएं जब तक मानव समाज को उपलब्ध न हो सकीं, प्रगति धीमी थी । लोहा और अन्य धातुओं से बने औजार एवं यन्त्रों को शक्ति दी कोयला, खनिज, तेल, गैस और बिजली ने । यह स्थिति उन्नीसवीं सदी के मध्य में शुरु हुई, लेकिन वास्तविक प्रगति 1900 ई. के बाद देखने को मिलती है । आधुनिक संस्कृति का जो रुप आज हम देखते हैं, उसको यहां तक पहुंचाने में खनिजों की भूमिका सर्वोपरि है । खनिजों का उत्खनन और उनका उपयोग वह बिन्दु है जहां से आधुनिक संस्कृति ने छलांग लगाई है । आज हमारा सम्पूर्ण आर्थिक-सामाजिक तन्त्र खनिजों से ऐसे जुड़ गया है कि उसके बिना सुख और समृद्धि की कल्पना ही नहीं कर पा रहे हैं । वास्तव में हम खनिज संस्कृति में जी रहे हैं । दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि आज का मानव खनिजों में कैद है । आज यदि यह पूछा जाय कि जब पेट्रोल समाप्त हो जायेगा तो मोटर गाड़ियां कैसे चलेंगी, यह लोहा नहीं रहेगा तो यन्त्रों का निर्माण कैसे होगा, तो एक बार आदमी सिहर उठता है । इसलिए आज विविध प्रकार के खनिजो का उत्खनन और उपयोग हो रहा है और इसकी खोज में मानव अलस्का, अण्टार्कटिका और यहां तक कि चांद पर पहुंच गया है । इस शताब्दी के प्रारम्भ में यूरोप के लोगों ने खनिजों के लिए कितने कितने दुर्गम क्षेत्रो को लांघा और प्रकृति के थपेड़ों को सहा, यह सर्वविदित है । इसके अलावा यह भी लोगों को ज्ञात है कि मक्खियों, मच्छरों, सांपों और हाथियों को झेलकर कांगों की घाटी में यूरोप के लोग तांबा कैसे खोदते रहे ।

आदमी की खनिज पदार्थों से मित्रता की कहानी बहुत पुरानी है । मनुष्य आज इतना बलवान, सौंदर्यवान तथा साधनवान समझा जाता है, यह सब उसी खनिज के रिश्ते के आधार पर सम्भव हुआ । यदि खजिनों की खोज न हुई होती और लोहा, सोना, तांबा, कोयला जैसे खनिज पृथ्वी के गर्भ में अपरिचित पड़े रहते तो मनुष्य भी कहीं बन्दर, भालुओं सा-भटकता रहता । खनिजों की मित्रता मनुष्य से कैसे हुई, यह कहानी राम और हनुमान की दोस्ती की तरह है । वैसे ही अचानक उसका सामना हो गया और वैसे ही उनकी मित्राता से बड़े-बड़े काम हुए । आइये, आज हम आपको उसी मित्रता का प्रारम्भ और विकास के विषय में बतलायें-

मानव सभ्यता का इतिहास उसके वनचर रूप से प्रारम्भ होता है, जिसमें मनुष्य को "पेड़ चढ़वा"

के नाम से सम्बोधित किया जाता है । केवल पेड़ों पर चढ़ने जैसे गुण के अलावा और कोई विकास का लक्षण नहीं था । नंग धड़ंग या खाल लपेटे ऐसे आदि पुरुषों का काम केवल शिकार करना, फल-फूल तोड़ना और इन्हें कच्चा चबा जाना था । बाद में जंगल में लगी आग और दो लकड़ियों की रगड़ को देखकर उन्होंने आग जलाना सीख लिया और मांस तथा अन्न भूनना भी सीख लिया । मिट्टी के बर्तन बनाने की कला भी अचानक उन्हें प्राप्त हो गयी । आदि मानव अपने भोजन को गड्ढों में आग जलाकर भूनते थे । कई बार आग जलाने और भूनने के बाद गड्ढे का एक मोटा हिस्सा सांचे की तरह पक कर अलग हो गया । मनुष्य ने देखा कि यह बरतन काफी मजबूत तथा टिकाऊ है । मैदानी हिस्सों में तो गड्ढा खोदकर वह मांस भून लेता था या बरतन में खा लेता था, लेकिन जहां पहाड़ी इलाका होता था वहां उसे मजबूत चट्टानो को चुन चुन कर इकट्ठा करके चुल्हा बनाना पड़ता था तब उसमें खाद्य पदार्थों को भूनना पड़ता था । पत्थरों और आग के इसी सम्पर्क ने खनिजों का परिचय कराया । जब आग की तपन से पिघलकर खनिज पत्थरों से बाहर आ गए तब भोजन के बाद बुझी हुई राख से पेड़ चढ़वा किस्म के लोगों को एक ऐसी ठोस वस्तु प्राप्त हुई जो पत्थरों से भी अधिक मजबूत थी । आदमी को तो हथियार के लिए ऐसी चीज की जरूरत ही थी, जो काफी कड़ी, मजबूत तथा उपयोगी हो । मजबूती, जंग न लगने, जल्दी साफ होकर चमकदार हो जाने वाले कुछ खनिज पदार्थ जैसे तांबा, लोहा, सोना, चांदी इतने लोकप्रिय हुए कि उनके आधार पर उस युग का ही नामकरण किया गया-धातु युग ।

खनिजों के खोज की यह कहानी उस युग से सम्बन्धित है जब न इतिहास था न सभ्यता, न संस्कृति थी न आदमी की कोई भाषा । लेकिन श्री हंसमुख धी. सांकालिया, राहुल सांस्कृत्यायन तथा भगवत् शरण उपाध्याय ने खनिजों की खोज की, इस सम्भावना का संकेत किया है । कई विद्वान इस खोज का श्रेय प्रकृति को देते हैं कि जंगली आग से चट्टानें जलने लगीं और उनसे लावे के रूप में खनिज पदार्थ निकले जो बाद में मनुष्य के हाथ लगे तथा इसकी मजबूती देख उसने इन्हें अपनाया ।

मनुष्य और खनिज के सम्बन्धों को दृढ़ करके खोज के लिए उत्साहित करने में इस अंध विश्वास ने बड़ी सहायता की कि खनिजों जैसे सोना, तांबा लौहा के प्रयोग से भूत, चुड़ैल आदि दुरात्मायें दूर रहती हैं, पास नही फटकती । इस अंधविश्वास पर हमें हंसी आती है लेकिन हमारे समाज में आज भी यह अंधविश्वास अनेक रूपों में वर्तमान है । हम सौभाग्य के लिए अंगूठी पहनते हैं, ताबीज तांबे ही की खोल में रखकर पहनी जाती है, नजर और टोने से बचने के लिए नाव की कील की अंगूठी पहनी जाती है । प्रसिद्ध इतिहासकार एवं मानव विकास का अध्येता गोर्डन चाइल्ड ने लिखा है कि प्रारम्भिक एवं आदि समाज में खनिजों को जादुई महत्व प्राप्त हुआ । पत्थरों की खोज से ही खनिजों की कहानी शुरु हुई, कड़े से कड़े पत्थरों की खोज में वे ऐसे पत्थरों तक पहुंचे जो खनिजों से युक्त थे । उदाहरणार्थ मैलेकाइट एक लोकप्रिय पत्थर था जो वास्तव में तांबे का कार्बेनेट है । इसी प्रकार फिरोजा अल्युनियम का फास्फेट है, जिसमें तांबे का हल्का मिश्रण है । उन्हें कई पत्थरों के ऐसे नमूने मिले जो ठोस तो थे ही पीटने पर फैल भी जाते थे । अयस्कों में खनिजकण वर्तमान रहते हैं उसे देखकर आदमी ने चट्टानों को प्राप्त करने में खनन को महत्व दिया होगा ।

गोर्डन चाइल्ड महोदय ने लिखा है कि मैकेलाइट तथा फिरोजा जैसे अयस्कों की खोज ने उन्हें तांबे से परिचित कराया होगा । उन्हें कुछ ऐसे अयस्क मिले होंगे जिनमें धातु की मात्रा ज्यादा थी

और उनका विचार है कि उन्होंने खनिजों की प्राप्ति आघात विधि के आधार पर की होगी । अर्थात अयस्कों पर चोट पर चोट या आघात पर आघात करने से उनमें उष्मा उत्पन्न हो गयी होगी और कालान्तर में उस उष्मा से अनचाहा पदार्थ अलग हो गया होगा । और इच्छित खनिज उन्हें मिला होगा । यूं उन्होंने इस सम्भावना को भी कम महत्वपूर्ण नही बताया है कि भूल से आदमी ने उसे चूल्हे पर या आग में रख दिया होगा । खनिज पत्थरों का महत्व उन्हें मालूम था । वे यह भी जान चुके थे कि ये आग से खराब नहीं होते इसलिए दूसरे न चुरा ले जाय वे इन पत्थरों को एकत्र करके ऊपर लकड़ियां रखकर आग लगा देते थे और खुद खनिजों की खोज में चला जाया करते थे, और जब लौटते थे तो उनकी राख या अंगारों में उन्हें वह इच्छित खनिज शुद्ध रूप में प्राप्त होता होगा । इस तरह गोर्डन चाइल्ड ने तार्किक ढंग से इतिहास के उस अंधेरे पर प्रकाश डाला है जो अनलिखा लेकिन दृढ़ सम्भावना से समर्थित है ।

अपने देश का इतिहास भी इस संदर्भ में रोचक विवरण को प्रस्तुत करता है । मोहनजोदड़ों और हड़प्पा से प्राप्त तथ्यों से पता चलता है कि खनिज पदार्थों तथा धातुओं से सम्बन्धित व्यवसाय में कार्य करने वाले दो श्रेणियों में विभक्त थे । प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत आने वाले लोगों का कार्य अयस्क धातुओं का पता लगाना था तथा दूसरे वर्ग के लोगों का कार्य इन धातुओं को शुद्ध धातुओं तथा वांछित खजिनों में बदलना था । इस कार्य के लिए हड़प्पा की संस्कृति में चार आवश्यक सुविधायें उपलब्ध थी— 1. अयस्क, 2. ईंधन, 3. वायु विस्फोट 4. उपकरण तथा भट्ठियां ।

कुछ खनिज पदार्थों तथा धातुओं का विवरण इस प्रकार है—

ऋग्वेद में धातुओं के उपयोग के विषय मे विवरण मिलता है । इन धातुओं के लिए अयास शब्द का प्रयोग हुआ है, जिसका तात्पर्य लोहा से है । तक्षशिला से प्राप्त नमूनों से यह पता चलता है कि इस समय उच्च गुण से युक्त इस्पात का निर्माण किया जाता था । मार्शल नामक विद्वान के अनुसार तक्षशिला में इस्पात को उत्पन्न करने के लिए सीमेंटीकरण नामक पद्धति का उपयोग किया जाता था । इस पद्धति में गढ़े हुए लोहे को कार्बन की आवश्यक मात्रा से मिलाकर इस्पात तैयार किया जाता था । लोहे को तैयार करने के लिए ईंधन के रूप में चारकोल का उपयोग किया जाता था तथा खुले चूल्हों में कैल्शियम के उपयोग से लोहे को पिघलाकर उच्च कोटि का लोहा तैयार किया जाता था ।

तांबा और कांसा का उपयोग भारत में हड़प्पा के समय से ही होता आ रहा है । इन खनिजों को प्राप्त करने के लिए सर्वप्रथम आयस्कों को हैमर से कुचलकर के पॉवडर के रूप में परिवर्तित किया जाता था । इसके पश्चात गाय के गोबर में इसे मिलाकर पिण्डी के रूप में इसे बनाया जाता था । पिण्डी को चारकोल तथा लोहमल के साथ भट्ठियों में भूना जाता था । इसके पश्चात लौहमल को हटाकर शुद्ध तांबा और कांसा का निर्माण किया जाता था ।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में सोने और चांदी के उपयोग के विषय में विवरण मिलता है । वैदिक काल में लोगों का यह विश्वास कि सोने में दैवी शक्तियां हैं, इसको खोजने के लिए प्रोत्साहित किया होगा । अथर्ववेद के अनुसार जो व्यक्ति सोना ग्रहण करता है, वह दीर्घायु होता है । कौटिल्य के अर्थशास्त्र में यह विवरण मिलता है कि खानों से प्राप्त सोने को शीशे के साथ मिला देने से यदि इसका रंग भुरभुरा हो जाता था तो इसे गर्म करके तथा लकड़ी की

निहाई पर पीट करके पत्तियों के रूप में परिवर्तित किया जाता था ।

प्राचीन काल में कैलेमाइन नामक धातु से जस्ते को निकाला जाता था । तांबे के अयस्क को जस्ते के साथ पिघलाकर पीतल को बनाया जाता था । मार्शल का विचार है कि भारतीयों ने पीतल के विषय में ज्ञान पश्चिमी दुनिया से तीन शताब्दी ई. पू. में प्राप्त किया था ।

इन विवरणों से यह स्पष्ट है कि वर्तमान संस्कृति एव सभ्यता के लिए आधार कहे जाने वाले खनिज पदार्थों का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है तथा इनकी कहानी के पीछे मानव के संघर्ष और साधना की एक ऐसी रोचक गाथा छिपी हुई है, जिसपर हमको तथा सभी को गर्व होना चाहिए । ❑❑

प्रवक्ता शि. वि.
श्री दुर्गाजी महाविद्यालय चण्डेश्वर,
आजमगढ़

कार्य अनुभव-उपयोगिता और महत्व

❐ डी. डी. यादव

कार्य अनुभव का अर्थ जैसा कि नाम दर्शाता है, किन्ही कार्यो के द्वारा विद्यार्थियों को शैक्षिक अनुभव प्रदान करना है । ऐसे अनुभवों के द्वारा ही शिक्षा को सार्थक बनाया जा सकता है । अतीत से वर्तमान तक कार्य धीरे–धीरे शिक्षा से अलग होता जा रहा है । तथा पूरी की पूरी शिक्षा वास्तविक अनुभवों के बगैर प्रदान की जा रही है । कार्यअनुभव को अगर शिक्षा की प्रक्रिया के साथ जोड़ दिया जाए तो हमें निम्नलिखित शैक्षिक लाभ प्राप्त हो सकते हैं ।

1. उचित दृष्टिकोंण

शैक्षिक अनुभव देते समय अगर विद्यार्थियों को हाथ काम करने के अवसर उपलब्ध होते हैं तो उनमें हाथ से काम करने की अच्छी आदत विकसित होगी । धीरे–धीरे विद्यार्थी हाथ से काम करने को घंटिया या निम्न स्तर का न समझकर उन्हें अपने लिए तथा समाज के लिए आवश्यक समझकर सम्मान की दृष्टि से देखेंगे । इस प्रकार बालक धीरे–धीरे स्वावलम्बी भी बनता जाएगा और उसमें उचित दृष्टिकोण भी विकसित होगा ।

2. श्रमजीवी और बुद्धिजीवी वर्गो का अंतर कम करना

शिक्षा की गलत नीतियों के कारण श्रमजीवी और बुद्धिजीवी दोनों वर्ग एक दूसरे से बहुत दूर होत्ते चले गए हैं । बुद्धिजीवी वर्ग हाथ से काम करने वालों को सदैव ही उपेक्षा, यहाँ तक हेय और घृणा की दृष्टि से देखता रहा है । तथा अपने काम और अपने आप को कुछ अधिक ऊँचा समझता रहा है । दूसरी ओर श्रमजीवी वर्ग में एक अजीब हीनता की भावना घर करती रही है । परिणामस्वरूप दोनों वर्ग एक दूसरे से बहुत अधिक दूर होते गए हैं । अगर विद्यार्थियों में सही शैक्षिक अनुभवों के माध्यम से कार्यों के प्रति सही दृष्टिकोण उत्पन्न होगा तो वह हाथ काम करने वाले लोगों या हाथ से काम करने को बुरा नहीं मानेगा बल्कि उस काम को पूरा करने में अपना सहयोग भी देगा । इस प्रकार श्रमजीवी तथा बुद्धिजीवी दोनों ही एक दूसरे के निकट आने का प्रयत्न करेंगे । इस समाज के दोनों आवश्यक अंगों के बीच जो अनावश्यक भेदभाव और अलगाव है उसे समाप्त करने में सहायता मिलेगी ।

3. बालक का सर्वागीण विकास

आज कल की स्कूली शिक्षा विद्यार्थी के मानसिक विकास में तो थोड़ी बहुत सहायता देती है जबकि शारीरिक अंगों के विकास तथा अन्य सामाजिक विकास आदि की ओर उससे कोई विशेष सहायता नहीं मिल पाती । कार्य अनुभव के द्वारा विद्यार्थियों को हाथ से काम करने के अवसर उपलब्ध होंगे । उनसे उन्हे अपनी माशपेशियों तथा अन्य शारीरिक अंगों प्रतिअंगों के संचालन का पूरा अवसर मिलेगा, जिससे उसके शारीरिक विकास में सहायता मिल

सकती है । स्वावलम्बी बनने की कोशिश में बालक अपने उत्तरदायित्वों के प्रति सजग रहेगा । हाथ से काम करने के दौरान विद्यार्थियों में पारस्परिक सहयोग और समन्वित दृष्टिकोण अपनाने की भावना पनेगी । इस प्रकार विद्यार्थियों का न केवल मानसिक बल्कि शारीरिक, सामाजिक, नैतिक उत्थान भी होगा ।

4. विभिन्न कौशलों का अर्जन

विद्यार्थियों द्वारा अपने हाथ से काम करने के फलस्वरूप उनमें हस्तकार्य संबंधी विभिन्न कुशलतायें पनपने लगेंगी । किस प्रकार के कार्य को किस ढंग से किया जाये कि कम श्रम से अधिक से अधिक लाभ उठाया जा सके । कच्चे माल का चुनाव कार्य, विधि का चुनाव, तैयार माल को अधिक अच्छा रूप प्रदान करने की कला तथा बाजार में बेचने की कला आदि अनेक ऐसी बातें हैं जिन्हें करने के लिए विद्यार्थियों में आवश्यक कौशलतायें विकसित हो सकती है ।

5. विद्यार्थियों को स्वावलम्बी बनाना

आज के युग में काम–काज की दुनियाँ, वैज्ञानिक और तकनीकी ज्ञान पर पूरी तरह से आश्रित है । कार्य को शैक्षिक अनुभवों के साथ जोड़ने से विद्यार्थियों को आवश्यक वैज्ञानिक और तकनीकी जानकारी प्रदान की जा सकती है । जिससे विद्यार्थी अपने आपको समय के अनुसार पूर्ण आत्मनिर्भर बना सकते हैं । आजकल के विद्यार्थियों में पूरी तरह से आत्मनिर्भरता नहीं है । वे छोटे–छोटे कामों के लिए भी जैसे कि बूट पालिस करना, फार्म इत्यादि भरना, छोटी–मोटी सिलाई करना इत्यादि के लिए दूसरों पर निर्भर रहते हैं । आज कल हमारी दिन प्रतिदिन की जिन्दगी भी वैज्ञानिक उपकरणों के उपयोग पर बहुत कुछ निर्भर है । इन उपकरणों का अच्छी तरह उपयोग करना तथा उनकी उचित देखभाल करना और छोटी–मोटी मरम्मत करना आज एक आवश्यक चीज़ बनती जा रही है जिसे उचित कार्यअनुभवों के माध्यम से विद्यार्थियों में भली भांति विकसित किया जा सकता है ।

6. विद्यार्थी को धन के मामले में कुछ आत्मनिर्भर बनाना

कार्य अनुभवन उत्पादकता से जुड़े रहने के कारण विद्यार्थियों में विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन करने की योग्यता विकसित कर सकता है । जैसे कि लकड़ी, मिट्टी, धातुओं आदि से बच्चे तरह–तरह की वस्तुये बनाते हैं । कृषि मार्ग पर खेती तथा बागवानी करते हैं तथा उद्योग–धंधों से संबंधित छोटी–मोटी उपयोगी वस्तुओ का निर्माण कर सकते हैं । जो कुछ उत्पादन होता है उसे बेचने की अगर ठीक व्यवस्था हो तो विद्यार्थियों को अपने पढ़ने लिखने आदि में जो खर्च होता है उसकी पूर्ति में मदद मिल सकती है । इस तरह विद्यार्थी जीवन में धन कमाने के बारे में कम से कम आत्मनिर्भर रहेगा ।

7. व्यवसाय का आधार

आज कल की स्कूली शिक्षा विद्यार्थी को उसके भविष्य के व्यवसाय की तैयारी में कोई सहायता नहीं करती । कार्यअनुभव के द्वारा इस अभाव को कम किया जा सकता है । कार्यअनुभव के द्वारा अर्जित किए हुए ज्ञान, कौशल तथा स्वस्थ दष्टिकोण और सही आदतों के माध्यम से विद्यार्थी को अपने भविष्य के व्यवसाय को अपनाने में सहायता मिल सकती है । उदाहरण के लिए जो विद्यार्थी कार्यअनुभव में टेलीविजन को ठीक करना या दूसरे बिजली के उपकरणों की मारम्मत करना अथवा छोटे–छोटे उत्पादन करना जैसे कि साबुन, स्याही, मंजन इत्यादि । अनुभव ग्रहण करता है तो आगे चलकर यह बालक

इन्हीं व्यवसायों को अपनी रोजी रोटी का साधन बना सकता है ।

8. देश की उत्पादन क्षमता को बढ़ाने में सहायक

कार्य अनुभव अन्य उद्देश्यों के साथ शिक्षा को उत्पादकता के साथ भी जोड़ता है । इसके द्वारा जो भी अनुभव विद्यार्थियों को दिए जाते है उनसे विद्यार्थी यह सीखते हैं कि किस प्रकार उचित साधन और अच्छी सूझ–बूझ के द्वारा उत्पादन को बढ़या जा सकता है । ऐसे विद्यार्थी आगे चलकर देश उत्पादन क्षमता को आगे बढ़ाने में बहंत मूल्यवान सिद्ध हो सकते हैं । विद्यार्थी जीवन में भी कार्य अनुभव के द्वारा विद्यार्थियो विद्यार्थियों द्वारा काफी उत्पादन किया जा सकता है ।

9. अच्छी 'हावीज' को अपनाने में सहायक

खाली समय को ठीक प्रकार से व्यतीत करने की समस्या हमारे विद्यार्थियों के सामने आती है । अगर विद्यार्थी वर्ग उपयोगी एवं रोचक हावीज़ को अपना ले तो यह समस्या समाप्त हो सकती है । कार्य अनुभवों के द्वारा अच्छी अच्छी हार्वीज़ विकसित करने के सुअवसर प्राप्त हो सकते हैं । विद्यार्थी अच्छी रुचि और अभिरुचि के अनुकूल किसी भी कार्य क्षेत्र को अपनी विशेष हावी के रुप में अपना सकते हैं ।

10. स्कूल को समाज के निकट लाने में सहायक

वर्तमान शिक्षा पद्यति में विद्यालय को समाज से बिलकुल अलग कर दिया है । जो कुछ स्कूल में किया जाता है उसका समाज के लिए कोई प्रत्यक्ष उपयोग नहीं है और न ही संबंध है । दूसरी तरफ समाज भी स्कूल की ओर विशेष ध्यान नहीं दे पाता । कार्यअनुभव के द्वारा विद्यार्थियों को अपने समाज या समुदाय विशेष में हो रहे कार्यो की पूरी जानकारी हो सकेगी । विद्यार्थी खेती, बागवानी, लकड़ी या मिट्टी के कार्य संबंधी अनुभव प्राप्त कर अपने परिवार या समाज के अन्य सदस्यों की कठिनाईयों को समझ सकते हैं । और आवश्कता पड़ने पर उनका हाथ भी बटा सकते हैं । समाज के सदस्य भी यह जान सकते हैं कि स्कूलों में जो कुछ शिक्षा दी जा रही है उससे आगे जाकर उनके बच्चे उनके कार्यो में सहयोग देने के योग्य बन जाएँगे । कार्य अनुभव के कार्यक्षेत्र में समाज सेवा का भी बहुत स्थान है । इस प्रकार समाज को स्कूल एक अत्यत उपयोगी संस्था के रूप में दिखाई देंगें, तथा विद्यालय और समाज को कार्यअनुभव के द्वारा एक दूसरे के निकट आने में मदद मिलेगी ।

11. सिद्धान्त और क्रिया का समन्वय

कार्य अनुभव सैद्धांतिक और क्रियात्मक पक्ष की दूरी को कम करता है । आमतौर पर स्कूलों में जो शिक्षा दी जाती है उसका बाहरी दुनियाँ से कोई संबंध नहीं होता । कार्यअनुभव क्योंकि एक तरफ शैक्षिक अनुभवों के साथ जुड़ा है और दूसरी तरफ समाज एवं बालक के वास्तविक जीवन से जुड़ा है । इस प्रकार कार्यअनुभव शैक्षिक सिद्धांत और जीवन की क्रियाओं में संबंध स्थापित कर सकता है ।

12. उपयोगी कार्यो के द्वारा शिक्षा प्रदान करना

महात्मा गांधी ने अपनी बेसिक शिक्षा की योजना में उत्पादक शिल्प को बहुत अधिक महत्व दिया है । उनके अनुसार सारी की सारी शिक्षा

उत्पादक शिल्प के आधार पर प्रदान की जानी चाहिए । इस प्रकार कार्य अनुभव केवल व्यवसाय से ही संबंधित नहीं है बल्कि इसका शैक्षणिक महत्व बहुत ज्यादा है । विद्यार्थी जब कार्यअनुभव के द्वारा शिक्षा ग्रहण करेंगे तो उनको विभिन्न विषयो से संबधित आवश्यक ज्ञान भी मिलेगा और विभिन्न विषयों को शैक्षिक मनोवैज्ञानिक, व्यहारिक तथा उपयोगी आधार मिलेगा ।

13. नई पीढ़ी को जागरूक एवं प्रगतिशील बनना

कार्य अनुभव के द्वारा विद्यार्थियों को उत्पादन बढ़ाने की आवश्यकता का भली भांति ज्ञान कराया जा सकता है । अभी हमारे देश में लोग अपने व्यवसायों को पूरी तरह से वैज्ञानिक आधार नहीं दे पाये हैं तथा प्रगतिशील साधनों का प्रयोग बहुत कम करते हैं । कार्य अनुभव के द्वारा विद्यार्थी उत्पादन का, मरम्मत का, व्यवसाय आदि का वैज्ञानिक आधार ढूँढ़ने की कोशिश करते हैं । इस प्रकार कार्य अनुभव के द्वारा नई पीढ़ी को और अधिक जागरूक और प्रगतिशील बनाया जा सकता है ।

14. सीखने की प्रक्रिया में सहायक

कार्य अनुभव के द्वारा विद्यार्थी स्वयं अध्ययन एवं शिक्षा के क्रियात्मक पक्ष को आगे बढ़ाने की कोशिश कर सकते हैं । विद्यार्थियों मे रचनात्मक तथा अनुसंधात्मक प्रवर्तियाँ विकसित करने के लिए कार्य अनुभव बहुत उपयोगी साबित हो सकता है । कार्य करते समय विद्यार्थियों को जो व्यक्तिगत अनुभव प्राप्त होते हैं, वह उन्हें अपने आपको शिक्षित करने तथा सीखने में बहुत सहायक सिद्ध हो सकते हैं ।

15. क्रियात्मक अनुभवों को उचित स्थान

वर्तमान शिक्षा पद्यती में किताबी ज्ञान का बोल-बाला है । यह पद्धति रटने को ज्यादा प्रोत्साहित करती है । क्रियात्मक अनुभवों का यहाँ कोई स्थान नहीं है । कार्य अनुभव के द्वारा विद्यार्थी केवल किताबी कीड़े ही नहीं बनते बल्कि क्रियात्मक अनुभव प्राप्त करते हैं और शिक्षा को एक सही मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान करते हैं । कार्य अनुभव को समर्पित शिक्षा पद्धति क्रियात्मक अनुभवों को अधिक प्राथमिकता देगी और प्रयत्न किया जाएगा कि विद्यार्थी अपने कार्य क्षेत्रों में अधिक से अधिक आत्मनिर्भर बनें ।

16. उत्पादन साम्रगी एवं प्रक्रियाओं को जानना

कार्य अनुभव के माध्यम से विद्यार्थी उत्पादन सामग्री का उचित चुनाव तथा उसके संबंधी तथ्यो से परिचित हो सकता है । वे यह जान सकते हैं कि कौन-सी वस्तु किस तरह कहाँ से उपलब्ध हो सकती है । निर्माण की प्रक्रियाओं को भी ठीक तरह से समझ सकते हैं । किस रुप में कोई वस्तु ग्राहकों को पसंद आती है, इसका भी उन्हें ज्ञान हो जाता है । इस प्रकार विद्यार्थी उत्पादनकर्त्ता और उपभोक्ता जैसे दोनों प्रकार के अनुभाव प्राप्त करता है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अगर कार्य अनुभव को वर्तमान शिक्षा पद्धित का अंग बना दिया जाए तो इससे बालक, उसके परिवार व समाज का तो भला होगा ही साथ में शिक्षा की गुणवता भी बहुत बढ़ेगी और उसके ऊपर किए जाने वाले आक्षेप काफी हद तक कम हो जाएँगे । ❑❑

प्रवक्ता
विशेष शिक्षा और विस्तार सेवा विभाग,
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान
और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली

विद्यालय योजना : संस्थागत क्षमता को मजबूत करना

□ डा. रामस्वरुप शर्मा

भूमिका

ज्ञान-विज्ञान की किसी संगोष्ठी में भाग लेना प्रगति के उस महायज्ञ के बराबर है जिसमें हम सभ्य और उन्नत समाज का निर्माण करते है । उस कार्य में शिक्षा संस्थाओ का योगदान महत्वपूर्ण होता है । विशेषकर जो संस्थाएं राज्य जैसे एस. आई. ई/एस. सी. ई. आर. टी. या जिला स्तर जैसे डाईट, कार्य करती हैं और अपनी अपनी परिधि की संस्थाओं को सजीव और सक्रिय बनाती हैं, मार्गदर्शन करती है । एक सजीव एवं सक्रिय शिक्षा संस्था वही है जो अपने कार्यकलापों द्वारा निरंतर प्रगति के पथ पर अग्रसर रहती है और बदलते हुए माहौल के अनुरूप अपना विकास करती है । इतना ही नहीं वह तो इसी प्रक्रिया में अपने माहौल को भी प्रभावित करती है और बदल डालती है । इसमें दो राय नहीं कि एक शिक्षा संस्था सतत परिवर्तनशील और प्रगतिशील रहे यह तभी संभव है यदि उस संरचना और संस्कृति में नवीनीकरण की क्षमताओं का समावेश हो । यह देखने में आया है कि कुछ संस्थाएं आरभ के कुछ वर्षों में अच्छा कार्य करती हैं, परतुं बाद में उन में अवरोध आ जता है । कई लोगों का मत है कि संस्था की प्रगति और परिवर्तनशील होना उसके मुखिया पर निर्भर करता है जब एक अच्छा मुखिया उस संस्था को छोड़ देता है तो उस संस्था का पतन होना शुरु हो जाता है । परंतु नियोजन और प्रशासन के अनुभवों से सिद्ध हो चुका है कि संस्थागत योजना द्वारा संस्था को सजीव, सक्रिय, परिवर्तनशील एवं प्रगतिशील बनाया जा सकता है ।

स्कूल एक ऐसी संस्था है जो अपने प्रभावशील क्रियाकलापों द्वारा आतंरिक तथा बाहरी समाज का विकास करती है । इसके अपने नैतिक मूल्य होते हैं, ध्येय और कार्य करने के मापदण्ड होते हैं जिन के द्वारा वह अपने परिवेश एवं समुदाय पर अपनी छाप छोड़ती है और इन सब से प्रभावित भी होती है । इसमें छात्र-छात्राएं, अध्यापक, मुख्याध्यापक तथा अन्य कर्मचारी, स्थानीय समुदाय के लोग सम्मिलित होते हैं जो स्कूल के लक्ष्यों की पूर्ति के लिए विद्यालय योजना तैयार करने में शामिल होते हैं, इतना ही नहीं उसे कार्य रूप देने में अपनी भागीदारी निभाते हैं नियोजन एवं प्रबंध के हर पक्ष और स्तर पर अपना योगदान देते है, उस की प्रगति और विकास की देख रेख (मानीटरिंग) करते हैं और मूल्यांकन में आने वाली त्रुटियों और अच्छाइयों को ध्यान में रखते हुए आगामी योजना का निर्माण करते हैं । इस प्रकार यह कार्यक्रम निरंतर चलता रहता है जो स्कूल को सजीव और सक्रिय बनाए रखता है । उपर्युक्त सभी प्रक्रियाओं मे यह स्कूल अन्य संस्थाओं/स्कूलों/एजेंसियों और विभागों के अधिकारियों से भी संपर्क स्थापित करता है और स्कूल के सामूहिक विकास में सहायता प्राप्त करता है ।

अनिवार्य और ध्यान देने योग्य मुख्य बातें

अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर प्राइमरी शिक्षा के सुधार में जो शोध कार्य चर्चित हुए हैं, विशेष कर विकासशील देशों में, उन से पता चला है कि अकेले छात्रों, अध्यापको, पाठ्यक्रम या प्रशासकों के सुधार से शिक्षा का सुधार नहीं बल्कि संपूर्ण स्कूल को सुधार का लक्ष्य मान कर ही शिक्षा का सुधार हो सकता है और शिक्षा के लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है ।

विज्ञान विस्फोट : एक चुनौती

यह देखने में आया है कि हमारे राज्यों की शिक्षण संस्थाओं के सामने अपने संसाधनों का समुचित उपयोग तथा शैक्षिक गुणवत्ता बनाए रखने के लिए एक प्रभावी कार्यक्रम तैयार करना आवश्यक हो गया है । भारत की स्वतंत्रता के पश्चात एक ओर शिक्षण सस्थाओ की संख्या में वृद्धि हुई है, तो दूसरी ओर शिक्ष की गुणवत्ता का स्तर गिरता दिखाई देता है । पिछले चार दशको में ज्ञान और विज्ञान के विस्फोट ने शिक्षा के लिए नये आयाम और चुनौतिया दी है । इन परिस्थितियों में हमारे सामने दो विचार बिन्दु हैं जिनकी ओर ध्यान देने की आवश्यकता है एक तो शिक्षा की गुणवत्ता को ऊपर उठाने की बात है और दूसरे ज्ञान विज्ञान में किये गये अध्ययनों और शोध कार्यों द्वारा पाठशालाओं का सर्वागीण विकास करना है । इस के लिए अपनी अपनी संस्थाओं के संसाधनों और आवश्यकताओं के बीच समन्वय स्थापित करना होगा ताकि प्रत्येक संस्था संक्रिय और सजीव प्रक्रिया द्वारा विकास की ओर अग्रसर हो । यह तभी सम्भव होगा जब प्रत्येक संस्था सुनिचित ढंग से अपने विकास की योजना तैयार करे । हमारे राज्यों में संस्थागत योजना को अभी तक भी एक ऐच्छिक कार्यक्रम के रूप में लिया गया है । कुछ संस्थाओं ने अपनी इच्छा अनुसार संस्थाओं के विकास की योजनाएं बनाई है और उन्हें कार्य रूप दिया है और निरधारित लक्ष्यों की सिद्धि भी की है । परन्तु यह कार्यक्रम सार्वजनिकरण नहीं हो पाए और कुछ ही विद्यालयों तक सीमित रहे हैं । अब आवश्यकता इस बात की है कि सभी पाठशालाएं अपने सीमित संसाधनो के अनुसार अपनी आवश्यकताओं और समस्याओं को ध्यान में रखते हुए विकास योजनाएं तैयार करे तथा उन्हें पूर्ण निष्ठा और लगन के साथ उन को कार्य रूप दें ।

स्वयं-मूल्यांकन

अभी तक पाठशालाओ का मूल्यांकन एक बाह्य कार्यक्रम होता रहा है । इस प्रकार की प्रक्रिया एक आन्तरिक या स्वंय मूल्यांकन की दिशा में एक मुख्या कदम होगा । बाह्य मूल्यांकन से पाठशाला के सुझाव एक-तरफ और सीमित होंगे परन्तु आन्तरिक मूल्यांकन से सभी पहलुओं को छुआ जाएगा । आज की स्थिति में दोनों प्रकार के मूल्यांकन की आवश्यकता है । ऐसा करने से ही विषय संगत और सारगर्भित परामर्श और निर्देश दिए जा सकते है । और विकास के कार्यों में पाठशाला में मुख्याध्यापक, अध्यापकों, छात्रो अन्य कर्मचारियों और स्थानीय समुदाय जिन में माता पिता, और अन्य स्थानीय अधिकारियों को प्रेरित किया जा सकता है और उचित मार्गदर्शन दिया जा सकता है । इस के अतिरिक्त पाठशाला के मूल्यांकन में उसके अध्यापक, प्रधानाचार्यो, और अन्य उपरोक्त समुदाय की सहभागिता एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है ।

संसाधनों की जानकारी

पाठशाला की योजना का कार्यक्रम प्रारम्भ करने से पहले यह आवश्यकता है कि उसके सभी संसाधनो का सर्वेक्षण किया जाए, ऐसा करने से बहुत सी वस्तुओं तथा तथ्यो की जानकारी पाठशाला के

सभी सदस्यों को हो जाएगी जिन का पहले ज्ञान ही न हो । तत्पश्चात् इन संसाधनों का विशेषत्मक अध्ययन किया जाएगा । और यह सुनिश्चित किया जाएगा कि कौन कौन से साधन योजना को कार्यरूप देने में काम आएगें और किन–किन की मरम्मत की आवश्यकता होगी ताकि अभीष्ट लक्ष्यों को पूरा किया जाए । यह प्रक्रिया पाठशाला के मूल्यांकन में भी की जाएगी जब यह देखा जाएगा कि किन–किन वस्तुओं का प्रयोग पाठशाल के विकास के लिए उचित और अधिकतम हो रहा है ।

धन और इच्छा शक्ति

शिक्षा के सुधार के लिए धन और अन्य संसाधनों का महत्त्वपूर्ण कौन नहीं मानता, परन्तु सुन्दर कमरों से, श्रव्य सामग्री से, पुस्तकालय, व खेल कूद के सामान से, स्कूल का सुधार हो जाएगा, ऐसा नहीं हैं । इसमें संदेह नहीं कि इन सभी वस्तुओं के लिए धन की आवश्यकता होती है, यदि प्राप्त हो जाए तो अच्छा है परंतु धन के साथ मन अर्थात स्कूल के समुदाय का विकास के प्रति इच्छाशील होना कहीं अधिक आवश्यक है । इच्छा शक्ति के बिना संसाधनों का कोई महत्व नहीं है । अनुभवों से ज्ञात हुआ है कि स्कूलों की पुस्तकालयों में पुस्तकों पर और प्रयोगशालाओं में यंत्रों पर मिट्टी जमी रहती है । इस समस्या का क्या हल है ? इसका हल है संस्थागत योजना ।

सब की भागीदारी

ऐसी योजना में जिस में कुछ छात्र या अध्यापक ही भाग लें और कुछ व्यक्ति केवल तमाशबीन हों तो उद्देश्यों की प्राप्ति कठिन होती है । यदि कुछ व्यक्ति आगे बढ़े और कार्य आरम्भ करें तो हो सकता है कुछ अड़चनें कार्यों में आए । यह भी भय रहता है कि कार्य में असफलता मिलने पर सभी हरेंगें अतः साहस टूट जाता है । परन्तु यदि सभी मिल कर विचार विमर्श करें, तो समस्याओं का समाधान आसान हो जाता है । भिन्न–भिन्न अनुभवों से नये रास्ते, नई रणनीतियां, युक्तियां उभर कर सामने आती हैं जिससे समय भी कम लगता है और संसाधन भी कम प्रयोग होते हैं । इस प्रकार योजना के परिणाम भी अच्छे प्राप्त होते हैं ।

नाना प्रकार की सभ्यताएं और मस्तिष्क

बच्चे भिन्न–भिन्न संस्कृतियों और सभ्यताओं से पाठशाला में आते हैं और उनके मस्तिष्क और विचार भिन्न/भिन्न होते हैं । उनका रहन–सहन भिन्न–भिन्न होता है । अतः छात्रों की समस्याओं का समाधान एक व्यक्ति से नहीं सभी विचार विमर्श से होता है । यह कार्य संस्थागत योजना से हो सकता है ।

एकीकृत विकास

यदि प्रत्येक अपने–अपने ढंग से स्कूल में विकास कार्य करता है तो धन और शक्ति बंट जाने से विकास का संपूर्ण स्वरूप दिखाई नहीं देता परंतु फिर भी के मिल कर कार्य करने से स्कूल का एकीकृत विकास स्पष्ट सामने आता है ।

लेखनीबद्ध कार्य

स्कूल के सभी पक्षों के विकास के लिए योजना को लिखित रूप देना आवश्यक होता है, केवल जबानी मस्तिष्क में रखने से बहुत सी बातें भूल सकती हैं । लिखते समय बहुत सी बातें, विधियां सूझती हैं जो हमारा मार्ग दर्शन करती हैं । यह कार्य योजना को लिखकर पूर्ण होता है ।

प्रथम कार्य

स्कूल में नाना प्रकार के सुधारों की आवश्यकता होती है, परंतु कुछ कार्य पहले करने होते हैं और कुछ कार्यों को कुछ समय तक स्थगित किया जा सकता है । कुछ कार्यों के लिए विद्यालय में साधन सुविधाएं उपलब्ध होती हैं । कुछ कार्यों को अपनी क्षमताओं के अनुसार आसानी से किया जा सकता है । क्या हम सभी कार्य एक बार ही शुरु कर सकते हैं ? यदि नहीं तो सर्वप्रथम उन्हीं कार्यों को चुना जाए जो अत्यावश्यक हैं । विद्यालय योजना न बनाई जाए तो हम उन क्षेत्रों को आने हाथ में ले लें जो कम आवश्यक हैं । यह इतने अधिक कार्य हाथ में ले लें जिनको पूरा करना कठिन हो । योजना बनाते समय इन समस्याओं का समाधान प्राप्त हो जाता है ।

वर्तमान स्थिति का पूर्ण ज्ञान

यदि हम सोच विचार कर स्कूल के बारे में यह जान लें कि आज हम कहां पर खड़े हैं और आगे किधर और कैसे जाना है तो आगे के कार्य करने, विकास की और अग्रसर होने की निश्चित दिशा दिखाई देती है ।

कार्य विधि

1. स्कूल और स्थानीय समुदाय की बैठकें और विचार विमर्श
2. सर्वेक्षण
   - ❑ स्कूल में कौन–कौन से अन्य संसाधन (भौतिक) विद्यमान है ?
   - ❑ स्कूल के स्थानीय परिवेश में कौन से संसाधन प्राप्त हो सकते हैं ?
   - ❑ स्कूल की न्यूनताओं और आवश्यकताओं के बारे में सूचियां तैयार करना ।
3. सर्वेक्षणों द्वारा प्राप्त हुई जानकारी के आधार पर प्राथमिकताओं का निर्धारण करना । यह कार्य एक या दो बैठकों में चर्चा के पश्चात् तय किया जा सकता है ।
4. परियोजनाएं तैयार करना । यह कार्य विभिन्न समूहों (ग्रुप्स) में किया जा सकता है ।
5. परियोजनाओं को एकीकृत करके संस्थागत योजना की रूपरेखा तैयार करना ।
6. योजना विशेषज्ञों, शिक्षा शास्त्रियों, शिक्षा अधिकारियों, समाज क नेताओं, माता–पिता, अध्यापक वर्ग, छात्रों इत्यादि से परामर्श और चर्चाएं । यदि आवश्यक हो तो शिक्षा विभाग से योजना को कार्यरूप देने की स्वीकृत प्राप्त करना ।
7. योजना को कार्य रूप देने से पूर्व सभी को विभिन्न उत्तरदायित्व सौंपना, इस में विभिन्न समितियों का गठन भी सम्मिलित है ।
8. मानीटरिंग और मूल्यांकन (दो प्रकार का) कुछ अवधि के पश्चात् और अन्त में सामूहिक रूप में ।

मूल विशेषताएं

1. यह योजना केवल मुख्याध्यापक की न हो–कर सारे स्कूल समुदाय की योजना होनी चाहिए ।
2. स्कूल की अनुभव की हुई आवश्यकताओं और समस्याओं के अनुरूप होनी चाहिए ।
3. इस के द्वारा संस्था उपलब्ध और अतिरिक्त संसाधनों का अधिकतम उपयोग कर सकें ।

4. यह समय और परिस्थितियों अनुसार लचीली होनी चाहिए ।
5. यह तथ्यों और आंकड़ों पर आधारित होनी चाहिए ।
6. यह मांगों की सूची नहीं अपितु वास्तविकता के आधार पर पूर्ण करने योग्य होनी चाहिए ।
7. इस का लक्ष्य स्कूल के सुधार और विकास दोनो होने चाहिए ।
8. सहयोग और सद्भाव पर आधारित होनी चाहिए ।
9. मानवीय तथा अवितिय (नांन मानीटरी) प्रयत्नों पर अधिक बल देना चाहिए ।
10. छोटे लक्ष्यों की बजाए असफलता को अपराध मानना चाहिए ।
11. निर्धारित समय में पूरा करना चाहिए ।
12. स्कूल के सभी लोगों के कार्य करने के ढंग में परिवर्तन आना चाहिए ।
13. सक्रिय नेतृत्व सभी स्तरों पर दिखाई देना चाहिए ।

योजना के प्रकार

1. अल्पकालीन 2. दीर्घ कालीन 3. मध्यवधि 4. एक अथवा बहु–उद्देश्यीय

अल्पकालीन योजना एक से कम वर्ष के लिए हो सकती है । दीर्घकालीन योजना 5 से 10 वर्ष की हो सकती है, परन्तु इसमें कोई विशेष नियम नहीं है । एक उद्देशीय में सुधार या विकास का एक ही पक्ष लिया जाता है जैसे पुस्तकालय का विकास । बहुउद्देशीय में एक से अधिक पक्ष विकास अथवा सुधार के लिये जाते है जिसमें स्कूल का समुदाय भाग लेता है ।

राज्यों में विद्यालय योजना का कार्य रूप देना

किसी भी राज्य में पाठशाला योजना और मूल्यांकन की प्रक्रिया को कार्य रूप देने के लिए निम्नलिखित पक्ष उठाए जाने चाहिए–

❒ सभी शिक्षा अधिकारियों को पाठशाला योजना और मूल्यांकन के सिद्धांतों से अवगत कराते हुए उन्हें इस की आवश्यकता और महत्ता की जानकारी दी जाए । कार्यशालाएं (वर्क शॉप) आयोजित करके उन्हें संस्थान योजना की रूपरेखा तैयार करने तथा मूल्यांकन की प्रक्रिया से अवगत कराया जाए । इन में शिक्षा निदेशालय के अधिकारी प्रेक्षक के रूप में भाग ले सकते हैं ।

❒ शिक्षा विभाग की ओर से प्रत्येक पाठ–शाला में पाठशाला योजना और मूल्यांकन कार्यक्रमों को अनिवार्य रूप से लागू करने का निर्देश जारी किया जाए । इस योजना को भली भांति चलाने वाली पाठशालाओं को प्रोत्साहित करने हेतु शिक्षा विभाग से अनुदान या पुरस्कार का प्रावधान किया जाए ।

❒ इस कार्यक्रम को सर्वव्यापी और सफल बनाने के लिए यह आवश्यक है कि पाठशालाओं की योजनाओं को, ब्लाक, जिला और राज्य की योजनाओं से जोड़ा जाए ।

❒ एस. आई. ई.. एस. सी. ई. आर. टी. तथा डाईट (डी. आ. ई. टी.) के माध्यमों से इसकी प्रक्रिया के संबंध में साहित्य का प्रकाशन करके पाठशालाओं को पढ़ाई के आरम्भ के मास में उपलब्ध कराया जाए । इस कार्यक्रम को सुचारू रूप से चलाने के लिए एस. सी. ई. आर. टी. में एक प्रकोष्ठ (सैल) का गठन किया जाए जो उसे संचालन, मूल्यांकन,

और फीड बैक का कार्य करेगा । डाइट मे प्लानिंग और मैनेजमेन्ट ब्रांच यह कार्य करेगी ।

❐ एक मास के पश्चात् सभी डाईट्स दो दिवसीय कार्यशालाओं का आयोजन करें जिन में विद्यालयो के प्रधानाचार्य एंव उपप्रधानाचार्य भाग लें । इनमें विद्यालय योजना की रूपरेखा तैयार कराई जाए । मूल्यांकन की प्रश्नावली भी कार्यशालाओं में तैयार कराई जाए । इन कार्यशालाओं में राष्ट्रीय और राज्य स्तरों के विशेषज्ञ भी संसाधन व्यक्ति के रूप में योगदान कर सकते हैं ।

❐ तत्पश्चात् प्रधानचार्य/उपप्रधानाचार्य, विद्यालय के अध्यापकों की बैठक करके इस कार्यक्रम की अवधारणा और प्रक्रिया के बारे जानकारी दे सकते हैं । इस प्रकार विद्यालय योजना बना ली जाए । मूल्यांकन की योजना भी बना ली जाए । प्रधानाचार्य विचार विमर्श करके योजना का आवश्यकतानुसार संशोधन कर सकते हैं ।

❐ विद्यालय योजना की रूप रेखा एक पत्थर की लकीर नहीं, समय-समय पर और विशेषकर शिक्षा अधिकारियों से योजना और मूल्यांकन की प्रश्नावली की विस्तृत विवेचना भी की जा सकती है और उनके द्वारा दिये गए सुझावों का योजना में समावेश भी किया जा सकता है ।

❐ अगला पग अपनी-अपनी-योजना और मूल्यांकन की प्रश्नावली को अन्तिम रूप देने और उसे ऊपर विभाग में भेजने का है । ताकि जिला स्तर पर या निर्देशालय/परिषद् स्तर पर उनका पूर्ण अध्ययन हो और कोई संशोधन हो तो उसमें करके शीघ्र वापिस विद्यालयों को भेज दी जाएं ताकि वे नये वर्ष के आरम्भ में लागू कर सकें ।

❐ जिला शिक्षा अधिकारी/खण्ड शिक्षा अधिकारी अथवा जो भी सक्षम अधिकारी इस कार्यक्रम में लगे हों वही योजना का अनुमोदन (स्वीकृति) क्रियान्वयन एवं मूल्यांकन अपनी देख-रेख में करेगे । कार्यरूप देने में कोई अवरोध उत्पन्न होने पर वे तत्कालिक समाधान करेगे ।

❐ जे. बी. टी. और बी. एड. के पाठ्यक्रम में संस्थागत योजना एंव मूल्यांकन को सम्मिलित कर दिया जाए और प्रत्येक छात्राध्यापक से एक योजना अनिवार्य रूप से तैयार कराई जाए । ऐसा करने से राज्य में इस कार्यक्रम को कार्यरूप देना और सफल बनाना सुलभ हो जाएगा ।

सुझाव के रूप में कुछ परियोजनाएं

1. छात्रों में स्वास्थ्यपूर्ण आदतें डालना जिस में अपनी सफाई अपने बस्ते, अपने वस्त्रों, परिवेश की सफाई, खाने के समय, बैठने, खड़े होने, चलने का ढंग इत्यादि ।
2. छात्रों का परिणाम मे सुधार
3. पुस्ताकालय का प्रभावी उपयोग
4. श्रव्य दृश्य साधनों का उपयोग
5. पाठयेतर क्रियाओं का प्रभावशाली बनाना
6. स्कूल के भवन, क्रीड़ा क्षेत्र, इत्यादि में सुधार ❐❐

फैलो, नीपा
नई दिल्ली

पूर्व-प्राथमिक श्रवण विकलांग बच्चों का भाषा-विकास

❒ इन्दु शर्मा

प्रस्तावना

किसी भी समाज की प्रगति का आधार उसके बच्चों की शिक्षा, विशेषकर पूर्व-प्राथमिक शिक्षा पर निर्भर करती है । इसमें सभ्य समाज के साधारण बच्चे ही नहीं बल्कि असामान्य बच्चे भी योगदान करते हैं । इनमें श्रवण विकलांग भी हैं । इस लेख में हम श्रवण विकलांग बच्चों के भाषा विकास की चर्चा करेगें ।

भारतीय परिस्थितियों के अनुसार पूर्व प्राथमिक बच्चे की आयु 3 से 6 वर्ष तक मानी जाती है । एक सामान्य बच्चे को 6 वर्ष तक अपनी मातृ–भाषा का लगभग पूर्ण ज्ञान हो जाता है । यह एक सामान्य बच्चे के लिए स्वाभाविक क्रिया है परन्तु श्रवण विकलांग के लिए भाषा ज्ञान और उसका अर्थपूर्ण प्रयोग स्वाभाविक नहीं अपितु कृत्रिम क्रिया है । अब शोध से यह सिद्ध हो चुका है कि मनुष्य के मस्तिष्क की संरचना में 5-6 वर्ष की आयु तक कुछ निश्चित, स्थाई, और अत्यधिक महत्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं । ये परिवर्तन 5–6 वर्ष की आयु के पश्चात् नहीं होते हैं । इन परिवर्तनों की महत्ता यह है कि इन्हीं के आधार पर हमारी आगामी वर्षों की मौखिक और लिखित भाषा निर्भर करती हे । इसलिए यह अति आवश्यक है कि श्रवण विकलांग बच्चे को इस आयु काल में अधिक से अधिक लिखित और मौखिक भाषा से परिचित कराया जाए ताकि वह सामान्य बालक की तरह समाज में भाषा का प्रयोग कर सके और समाज की मुख्य धारा में आसानी से सम्मिलित हो सके ।

भाषा-शिक्षण विधि

भाषा क्या है ? भाषा, उच्चारण–अवयवों से उच्चारित के योग्य यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है जिसके द्वारा एक समाज के लोग आपस में भावों और विचारों का आदान–प्रदान करते हैं । लिखित और मौखिक भाषा–शिक्षण पूर्व–प्राथमिक श्रवण विकलांग बच्चों की शिक्षा का मूल आधार है । ऐतिहासिक दृष्टि से श्रवण विकलांग बच्चों की भाषा का विकास कई विधियों से कराया जाता है । "लासासो" ने अपने 1978 व 1985 के शोध में बताया है कि श्रवण विकलांग बच्चों की शिक्षा के लिए "भाषा अनुभव विधि" अत्यधिक प्रयोग की जाती है । सन् 1985 के सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है कि प्राथमिक स्तर पर "भाषा अनुभव विधि" प्रबलतापूर्वक प्रयोग हो रही है । जब श्रवण विकलांग बच्चों के लिए विद्यालय बनाए गए, तब विचारणीय भाषा–विज्ञान संबंधी विधियाँ बनाई गईं, फिर उन सबको एकत्र कर तर्क–विर्तक से नवीन रूप दिया गया और दृढ़ता से लागू किया गया । इन सबमें से मैटर्नल रिफलेटिव विधि सर्वमान्य और अति

लाभदायक सिद्ध हुई है । यह विधि "वैन उडन" द्वारा प्रचारित की गई है । "वैन उडन" ने रिफ्लेटिव विधि की परिभाषा में कहा है कि यह **वार्तालाप द्वारा भाषा पढ़ाने की विधि है** । इस विधि में निम्नलिखित तरीकों से वार्तालाप द्वारा भाषा सिखाई जा सकती है–

- सामान्य भाषा के वार्तालाप को पढ़ने योग्य पाठ बनाना ।
- सामान्य पुस्तकें पढ़ने की योग्यता का विकास ।
- बच्चों को आमतौर पर प्रयोग होने वाली भाषा की बनावट की पहचान करवाना ।
- बच्चों को भाषा की बनावट के नियम जो उन्होंने स्वयं ढूँढ़कर सीखे हैं, मौखिक और लिखित वार्तालाप में प्रयोग करवाना ।

मैटर्नल रिफलैटिव विधि में सबसे मुख्य बात यह है कि अध्यापक बच्चे से अधिक से अधिक वार्तालाप करें और यह वार्तालाप उसके प्रतिदिन के अनुभवों से संबंधित हो । बच्चे के "अनुभव" से अधिक आवश्यक बच्चे का "वार्तालाप" है । इसलिए अध्यापक को बच्चे की बात अधिक से अधिक सुननी चाहिए कि वह क्या कहना चाहता है और उसे अवसरों को उपयुक्त भाषा प्रदान करने मे प्रयोग करना चाहिए । अध्यापक के लिए यह आवश्यक है कि ऐसी स्थितियों में बच्चे से सही और शुद्ध भाषा बुलवाने का प्रयत्न करें । बच्चे से वार्तालाप करने के लिए इन सुनहरे (भाषा अनुभव) अवसरों का उपयुक्त प्रयोग करना अति आवश्यक है ।

श्रवण विकलांग बच्चों को कुछ अध्यापक मौखिक रूप से और कुछ भौतिक रूप से भाषा शिक्षण कराते आए हैं परन्तु अब यह सिद्ध हो चुका है कि एक ही विधि से बच्चों की भाषा का विकास इतना प्रभावशाली नहीं है । यह देखने मे आया है कि इन सभी विधियों को यदि मिलाकर भाषा–ज्ञान दिया जाए तो भाषा–शिक्षण के लक्ष्यो की प्रप्ति सुनिश्चित हो सकती है ।

पूर्ण भाषा आदान-प्रदान

आइए हम पूर्ण भाषा आदान–प्रदान के बारे में चर्चा करते हैं । पूर्ण भाषा आदान–प्रदान को "मिश्रित भाषा आदान–प्रदान या समकालीन विधि भी कहते हैं । कई स्थानों मे श्रवण विकलांग बच्चे से वार्तालाप करने के लिए "मिश्रित विधि" ही कारगर सिद्ध हुई है । यह विधि इस बात को ध्यान में रखती है कि श्रवण विकलांग का एक विषम समूह है और प्रत्येक श्रवण विकलांग बच्चे की आवश्यकताएँ भिन्न–भिन्न होती हैं । इस विधि को अपनाने के पीछे यह भाव है कि एक बच्चे को केवल मूल भाषा–कौशल ग्रहण करने के लिए, (जो कि सामान्य बच्चा 4 साल तक ग्रहण कर लेता है) भाषा को पूर्ण और शुद्ध वातावरण देना चाहिए । मिश्रित विधि के प्रचारक कहते हैं कि पूर्व प्राथमिक और प्राथमिक शिक्षा को मुख्य उद्देश्य श्रवण विकलांग बच्चे को "परंपरागत आदान–प्रदान पद्धति" में भाषा–प्रयोग जिसमे समाज में प्रयोग हाने वाली भाषा प्रयोग होती है) और कुछ वाक् कौशल खिखाने हैं । इन सबको संभव होने के लिए उपयोगी परिस्थितियों मे पूर्ण और शुद्ध भाषा होनी चाहिए । इसलिए विशेष ध्यान, **क्या** और **कितना** समझ आ रहा है, इस पर दिया जाता है न कि कैसे समझ आता है ।

मिश्रित भाषाा आदान–प्रदान में ऊँची आवाज में बोलना, ओष्ठ पठन, और एक ही समय में हाव–भाव का प्रयोग, संकेतों का प्रयोग और कुछ समय बाद व्यवस्थित संकेतों का प्रयोग, ऊँगली के इशारों से शब्द बनाना जो भी संदेश देने में सहायक

हो, प्रयोग किए जाते हैं । "डीलने", "स्टॅकलेस" और "वाल्टर" के 1984 के शोध में यह बताया गया है कि भाषा के मिश्रित आदान-प्रदान की विधि के प्रयोग से श्रवण विकलांग बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि और भाषा को बोलते समय देखकर समझने के कौशल दोनों बढ़े हैं । डीलैने आदि ने यह सुझाव दिया है कि श्रवण विकलांग बच्चों की अधिक शैक्षिक उपलब्धियाँ केवल मिश्रित विधि के उपयोग के कारण ही नहीं अपितु माता-पिता और अध्यापकों की अधिक भागीदारी और निर्धारित पाठ्यक्रम मे परिवर्तन के कारण भी हैं ।

पूर्व प्राथमिक श्रवण विकलांग बच्चों के भाषा-विकास के लिए "वार्तालाप विधि" बहुत उपयोगी सिद्ध हुई । इस पद्धति में पूर्ण भाषा आदान-प्रदान के भाषा-विज्ञान संबंधी कोड प्रयोग करके पूर्व प्राथमिक श्रवण विकलांग बच्चों को भाषा सुचारु रूप से सिखाई जा सकती हे । पूर्ण भाषा आदान-प्रदान में अध्यापक बच्चे को स्पीच रीडिंग से, ऊँची आवाज से, हाव-भाव से, बाद में इन्हीं हाव-भाव को व्यवस्थित संकेतो में बदलकर (एक ऐसी व्यवस्था जिसमे हर वर्ग का संकेत किया जाए, जैसे-चलनाए लड़के इत्यादि) एक ऊँगली के इशारों से शब्द बनाकर और पढ़कर भाषा-ज्ञान दे सकता है । छात्र बोल कर, संकेत कर, ऊँगली के इशारों से शब्द बनाकर और अध्यापक को अपने विचार व्यक्त कर सकता है लेकिन अध्यापक को प्राथमिक कक्षाओं में धीरे-धीरे छात्र के साथ वार्तालाप करने में कम से कम संकेत प्रयोग करने चाहिए । अध्यापक को इन बच्चों को वाक् शक्ति के अधिक उपयोग के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए ।

भाषा-शिक्षण

पूर्व प्राथमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम छात्रों के सामान्य शारीरिक एवं मानसिक विकास और उनकी योग्यताओं पर आधारित होता है । इसी तरह भाषा-ज्ञान का पाठ्यक्रम सामान्य बच्चे के भाषा सीखने के अनुसार होता है । बैरी 1968, के वाक् और भाषा स्तंभ के अनुसार तीन वर्ष के सामान्य बच्चे में निम्नलिखित व्यवहार देखे जाते हैं-

- ❒ वाक्य संरचना, अक्षरक्रम और छंदों के ज्ञान की समझ हो जाती है ।
- ❒ समय ज्ञान संबंधी शब्दावली और कार्यकलापों के चित्र समझना ।
- ❒ लम्बी कहानी सुन सकता है ।
- ❒ संज्ञा के कर्त्ता-कर्म के स्थान का अर्थ समझना ।
- ❒ स्वकेन्द्रित भाषा का प्रयोग जारी रहना ।
- ❒ अपना पूरा नाम बता सकता है ।
- ❒ नर्सरी कविताएँ सुना सकता है ।
- ❒ प्रश्न वाचक वाक्य बना सकता है ।
- ❒ अपने आप कृत्रिम भाषा को सुधार सकता है ।
- ❒ शब्दों का उच्चारण सही गलत करता रहता है ।

एक अध्यापक को उपरोक्त भाषा-व्यवहार श्रवण-विकलांग बच्चे मे विकास करने का प्रयास करना चाहिए ।

भाषा शिक्षण में निम्न मुख्य अवस्थाएँ हैं-

- ❒ अधिक से अधिक भाषीय वातावरण होना ।
- ❒ भाषा की पहचान ।
- ❒ भाषा का अर्थ समझना ।
- ❒ भाषा का प्रयोग करना ।

तीन से छः वर्ष की आयु में श्रवण विकलांग

बच्चे को माता–पिता से अधिक देर तक दूर रखना उचित नहीं है इसलिए आरंभ में उन्हें छात्रों के साथ विद्यालय में बुलाया जाना चाहिए । ऐसे बच्चों को उपयुक्त हियरिंग एड (आवाज ऊँची करने वाला पॉकेट यंत्र) लगाना बहुत आवश्यक है । ढाई वर्ष से तीन वर्ष की आयु के बच्चे को चित्रों की सहायता से भाषा का ज्ञान देना चाहिए । चार वर्ष की आयु के पश्चात् लिखित भाषा का ज्ञान कराना चाहिए । अध्यापक को चाहिए कि लिखित भाषा के साथ–साथ बच्चे की वाक् शक्ति का उपयोग भी कराये ताकि बच्चा वार्तालाप कर सके ।

पूर्व-प्राथमिक शिक्षा में सभी ज्ञान इंद्रियों द्वारा भाषा ज्ञान देना लाभदायाक होता है । अतः पाठ्यक्रम में अधिक क्रियाएँ ऐसी होनी चाहिए, जिनमें बच्चा खुद अनुभव कर भाषा सीखे । इन क्रियाओं को सुचारु रूप से करने के लिए हम फ्लैश कार्ड, खिलौने, चित्र, मॉडल, इत्यादि का प्रयोग कर सकते हैं । राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली के द्वारा शोध कार्यों से यह निष्कर्ष निकला है कि पूर्व–प्राथमिक भाषा–शिक्षा मे खिलौने बहुत सहायक हैं क्योंकि खिलौने हर बच्चे के आकर्षण केन्द्र होते हैं ।

श्रवण विकलांग बच्चो को ऐसे शैक्षिक खिलौने देने चाहिए, जिनसे इनकी भाषा का सुचारु रूप से विकास हो सके । जैसे हम "ढपली" का उदाहरण लेते हैं । सबसे पहले बच्चों को ढपली केवल खेलने को, उसको पहचानने के लिए देनी चाहिए और देखना चाहिए कि वह ढपली को खुद बजाकर उसकी आवाज सुनता है अथवा नहीं । इसके पश्चात् अध्यापक को चाहिए कि वह स्वयं या और कोई बच्चा खिलौने को धीमी या ऊँची आवाज में बजाता है तो पहले बच्चे का ध्यान आवाज़ की ओर जाता है या नहीं । इस क्रिया के दौरान अध्यापक बच्चे को खिलौने का चित्र बनाकर, बोलकर और लिखकर दिखाता है । अध्यापक सुनने वाले यंत्र से खिलौने की आवाज़ की पहचान करवाने की कोशिश करता है । उस खिलौने का रंग, आकार और नाम इत्यादि लिखकर, बोलकर, चित्र दिखाकर पढ़ाता है । बाद में ढपली से एक खेल भी खेला जा सकता है । अगले दिन खेल का चार्ट बनाकर पाठ के रूप में पढ़ाया जा सकता है । इस प्रकार अध्यापक बच्चे के लिखित और मौखिक वार्तालाप का धीरे–धीरे विकास करता है और बच्चा भाषा का ज्ञान प्राप्त करता है । जहाँ भी बच्चे की भाषा में कोई उच्चारण या प्रायोगिक त्रुटि हो तो अध्यापक उसको व्यवस्थित तकनीक से सही करता है ।

अध्यापक चिड़ियाघर की सैर के बाद कक्षा में बच्चों को विभिन्न जानवरों के चित्र या खिलौने या मॉडल बनाकर दिखा सकता है । अध्यापक कक्षा में विभिन्न जानवरो की आवाजें निकालकर, उनकी तरह चलकर, जानवरो की पहचान करवा सकता है । बच्चे जानवरों की आवाजें निकालने मे आनंद लेते हें और उनकी वाक् और श्रवण–शक्तियों की विकास होता है । अध्यापक चिड़ियाघर का मॉडल बनाकर विभिन्न जानवरों के नाम, उनके भोजन, उनके शरीर के अंगों के नाम इत्यादि लिखित और मौखिक रूप से पढ़ा सकता है । शिक्षक छात्रों के साथ अपने वार्तालाप एवं छात्रों का आपस में वार्तालाप और अनुभवों को चित्रों के साथ चार्ट बनाकर या श्यामपट पर बनाकर भाषा सिखा सकता है । शिक्षक छात्रों को विद्यालय से चिड़ियाघर तक और चिड़ियाघर से वापस विद्यालय तक का सारा विवरण चित्र, चार्ट, खिलौने, मॉडल, वार्तालाप इत्यादि की मदद से विभिन्न पाठों में बाँटकर पढ़ा सकता है । इसमें श्रवण विकलांग छात्रों की स्मरण–शक्ति भी बढ़ती है और छात्र भाषाा सीखने के लिए और प्रयोग करने के लिए उत्सुक होता है । इसी प्रकार की अन्य शैक्षिक खेल संबंधी

क्रियाएँ जैसे- रेत में घर बनाना, बाग में सैर कराना, गुड़िया को कक्षा में नहलाना इत्यादि की सहायता से इन बच्चों की भाषा का विकास वार्तालाप विधि में पूर्ण भाषा आदान-प्रदान से सफल हो सकता है । यह कार्यकलाप सामान्य बच्चों की शिक्षा में भी अति लाभदायक सिद्ध हुए हैं । वस्तुतः श्रवण विकलांग बच्चा सामान्य बच्चों के साथ शिक्षा ग्रहण करने के लिए तैयार हो जाता है ।

निष्कर्ष

एक बालक का 3-6 वर्ष का आयुकाल अत्यधिक महत्वपूर्ण होता है । जिसमें उसकी भाषा के कोड का विकास होता है । यही भाषा कोड बच्चे के प्राथमिक वर्षों के दौरान दिए गए भाषा के मॉडल से उत्पन्न होती है । अध्यापक और माता-पिता दोनों को यह विशेष ध्यान रखना चाहिए कि इस आयु काल में श्रवण विकलांग बच्चा अधिक से अधिक सामान्य भाषा को बोलते हुए सुने (हिंयरिंग एड का सही उपयोग) और देखे ताकि वह अपनी भाषा में सुधार ला सके ।

श्रवण विकलांग बच्चे के सुनने के अभाव को शेष ज्ञान-इंद्रियों की सहायता से भाषा विकास के लिए पूरा किया जा सकता है । जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि वार्तालाप विधि भाषा विकास के लिए उपयुक्त सिद्ध हुई है । इसमें भाषा ज्ञान देने के लिए अध्यापक कई भाषीय कोड प्रयोग करता है जिसके फलस्वरूप छात्र अपने विचार व्यक्त करने के लिए समाज में प्रयोग हाने वाली भाषा सीख जाता है । अतः उपरोक्त चर्चा से हम यह कह सकते हैं कि श्रवण विकलांग बच्चों की पूर्व प्राथमिक शिक्षा में भाषा विकास के लिए "वार्तालाप विधि" में पूर्ण भाषा आदान-प्रदान का महत्वपूर्ण योगदान है ।

आगामी शोध

सामान्यतः पूर्व शैक्षिक अवसर किसी भी कम लाभ मिलने वाले बच्चों के वर्ग के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं । क्योंकि पूर्व शैक्षिक अवसरों को शीघ्र प्राप्त करने से इन बच्चों का लाभ अधिक हुआ है या हानियाँ कम हुई हैं । फिर भी स्वीकार करना होगा कि स्थाई परिणाम हमेश प्रमाणित नहीं किये गये हैं, (मुरज़, 1978) अब तक पूर्व-प्राथमिक कार्यक्रमों के औपचारिक मूल्यांकन की संख्या बहुत कम है । अतः इस दिशा में और अधिक शोध करना आवश्यक है । □□

प्रोजेक्ट फैलो (विशेष शिक्षा यूनिट)
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद,
नई दिल्ली-16

दिल्ली के बाल पुस्तकालय

☐ विजय गुप्ता

ज्ञान–विज्ञान और जानकारी के प्रसार के लिये एक कारगर संस्था के रूप में पुस्तकालय का इतिहास बहुत पुराना है । इधर हाल में विशेष विषयों का विशेष क्षेत्रों से संबंधित पुस्तकालयों का चलन बढ़ा है । इन्हीं में आते हैं बाल पुस्तकालय, जो बच्चों की शिक्षा के लिए एक सक्षम सहायक की भूमिका निभाते हैं । दिल्ली की बाल–जनसंख्या को बाल–साहित्य उपलब्ध कराने के लिये कुछ बाल पुस्तकालयों की स्थापना की गई । यद्यपि ये बाल पुस्तकालय बाल–जनसंख्या को दृष्टि में रखते हुए बहुत कम है फिर भी अनुभव किया गया है कि इन पुस्तकालयों का भी प्रयोग उतने बच्चे नहीं करते जितना होना चाहिए । संभवतः काफी बच्चों को इनकी जानकारी ही नहीं है । उनकी जानकारी के लिये जिन बाल पुस्तकों के विषय में कुछ आवश्यक विवरण नीचे दिया जा रहा है–

- ☐ दिल्ली लाइब्रेरी का बाल विभाग
- ☐ डा. बी. सी. राय लाइब्रेरी
- ☐ बाल भवन का पुस्तकालय
- ☐ नई दिल्ली नगर पालिका पुस्तकालय का बाल विभाग

पुरानी दिल्ली रेलवे स्टेशन के सामने श्यामा प्रसाद मुकर्जी मार्ग, पर सन् 1951 में दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी स्थापित की गई थी । इसके प्रांगण में बाल पुस्तकालय विभाग भी है । यह पुस्तकालय रविवार, निर्धारित सार्वजनिक अवकाश और हर मास की पहली तारीख के अतिरिक्त सभी दिन खुलता है । जोरबाग की इसकी एक शाखा केवल बच्चो के लिये है । इसके अतिरिक्त 4 अन्य शाखाऐं–(क) पटेल नगर (ख) लक्ष्मीबाई नगर (ग) करोलबाग (घ) शाहदरा और सरोजनी नगर की क्षेत्रीय शाखा हैं । केन्द्रीय पुस्तकालय का बाल–विभाग प्रातः 8 बजे से सांय 7.00 बजे तक खुलता है तथा इसकी शाखाऐं 12.30 बजे से 7.00 बजे तक खुलती हैं । 15 वर्ष से कम आयु के सभी बच्चे इसके सदस्य बन सकते हैं । इसकी सदस्यता प्राप्त करने के लिये पुस्तकालय के स्वागत कक्ष से सदस्यता पत्र प्राप्त किया जा सकता है । जो बच्चे किसी एक प्रतिष्ठित व्यक्ति का संदर्भ देते है उनको धरोहर राशि जमा कराने की कोई आवश्यकता नहीं होती परन्तु जो बच्चे किसी का संदर्भ नहीं देते उनको मात्र 10.00 रु. धरोहर के रूप में जमा कराने होते हैं इसक अतिरिक्त 23 उपशाखाएँ, 31 पुर्नवास बस्ती पुस्तकालय, 16 डिपाजिट स्टेशन हैं और 66 स्थानों पर चल पुस्तकालय सेवाऐं प्रदान की जाती है । (इन सब पुस्तकालयों का स्थान तथा समय यहां स्थानाभाव के कारण देना सम्भव नहीं इसलिये इस जानकारी के लिये केन्द्रीय पुस्तकालय से सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए) । नेत्रहीन बालकों के लिये ब्रेल लिपि की पुस्तकें भी यहां उपलब्ध हैं । इसके अतिरिक्त बच्चे ग्लोब, विभिन्न नक्शे, खिलौने, कैसेट और टेप तथा टी. बी. इत्यादि का प्रयोग भी कर सकते हैं । 31 मार्च

1987 तक 41157 बच्चे इसकी सदस्यता लेकर लाभ प्राप्त कर रहे हैं । लगभग पुस्तकों के अमूल्य खजाने में 52% पुस्तकें हिन्दी, 23% इंगलिश तथा 25% अन्य भाषाओं की हैं । इसके अतिरिक्त 15 बाल-पत्रिकाएँ भी उपलब्ध कराई जाती हैं । समय-समय पर बाल-सभा का आयोजना किया जाता है ।

चिल्ड्रन्स बुक ट्रस्ट की डा. बी. सी. राय लाइब्रेरी 4, नेहरू हाउस, बाहदुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली पर स्थित है । 1964 में इस पुस्तकालय की स्थापना बच्चों को उच्च कोटि का मनोरंजक साहित्य उपलब्ध कराने की दृष्टि से की गई थी । 40,000 पुस्तकों में 20% हिन्दी 70% इंगलिश तथा 10% पुस्तकें अन्य भाषाओं के अलावा टी. बी., ग्लोब, विभिन्न नक्शे आदि भी उपलब्ध कराये गये हैं । यह पुस्तकालय कुछ विशिष्ट सार्वजनिक अवकाश के अतिरिक्त पूरे वर्ष प्रातः 9.30 बजे से सायं 5.30 बजे तक खुला रहता है । 5 से 16 वर्ष तक के बच्चे इसके सदस्य बन सकते हैं । सदस्यता के लिये 50.00 रु. की धरोहर राशि जका की जाती है । प्रवेश शुल्क 3.00 रु. के अतिरिक्त 12.00 रु. वार्षिक शुल्क लिया जाता है । पुस्तकालय बहुत आकर्षक तथा साफ-सुथरा है और रोशनी का उचित प्रबन्ध है । बच्चों के अभिभावकों के लिये साथ ही एक अलग कमरा है । इस पुस्तकालय में 25 विभिन्न बाल-पत्रिकाएं उपलब्ध हैं । समय समय पर पेंटिक तथा कला प्रतियोगिताएँ आयोजित की जाती हैं एवं बाल-फिल्म दिखाई जाती हैं ।

कोटला मार्ग, नई दिल्ली पर स्थित बाल भवन का पुस्तकालय भी अपना विशेष महत्त्व रखता है । 1956 से अब तक इस पुस्तकालय से अनेकों बच्चे लाभ प्राप्त कर चुके हैं । अन्य पुस्तकालयों की तरह ही इस पुस्तकालय का उद्देश्य भी बच्चों को मनोरंजक ढंग से ज्ञान देना है । 70% हिन्दी 20% इंगलिश तथा 10% अन्य भाषाओं की कुल मिलाकर 27,000 से अधिक पुस्तकों का यहाँ विशाल संग्रह है । पुस्तकालय के साथ ही बाल भवन में उपलब्ध अन्य क्रीडाओं द्वारा भी बच्चे मनोरंजन एवं ज्ञान वर्धक कर सकते हैं । प्रत्येक रविवार और सोमवार तथा सभी सार्वजनिक अवकाश के दिन बाल-भवन के साथ यह पुस्तकालय भी बन्द रहता है । प्रातः 9.30 बजे से साय. 5.00 बजे तक यह पुस्तकालय 5 से 16 वर्ष तक के बच्चों के लिये खुला रहता है । 25.00 रू. की धरोहर राशि जमा की जाती है । बच्चे पुस्तकें आसानी से चुन सकें इसलिये क्रमांक संख्या के साथ भिन्न-भिन्न रंगों की व्यवस्था भी की गई है । वाद-विवाद, मौलिक लेखन आदि प्रतियोगताऐं भी समय-समय पर आयोजित की जाती हैं ।

नई दिल्ली नगर पालिका, टाऊन हाल, संसद मार्ग, नई दिल्ली का पुस्तकालय 1984 में स्थापित किया गया था । इसके बाल-विभाग का मुख्य उद्देश्य कमजोर वर्ग के बच्चों में पढ़ने की आदत डालना है । इसमें उपलब्ध 14,000 पुस्तकों में 60% पुस्तकें हिन्दी, लगभग 20% इंगलिश तथा अन्य पुस्तकें अन्य भाषाओं की हैं । इस पुस्तकालय की 9 शाखाएँ हैं तथा यह 18 भिन्न-भिन्न स्थानों पर चल-पुस्तकालय सेवा उपलब्ध कराती है । 5 से 16 वर्ष तक के बच्चों के लिये मुख्य शाखा सोमवार से शुक्रवार तक प्रातः 11.00 बजें से सांय 7.00 बजे तक तथा इसकी शाखाएँ सायं 12.30 बजे से 7.00 बजे तक सेवाएं प्रदान करती हैं । मात्र 5.00 रु. धरोहर राशि के रूप मे जमा किये जाते हैं । टी. बी., रेडियो आदि के लिए अलग कक्ष की व्यवस्था है यद्यपि यह कक्ष बहुत छोटा है । फिल्म-शो इस पुस्तकालय की अन्य सेवाओं में से एक है । इसके भी चल पुस्तकालयों तथा शाखाओं का स्थान एवं समय जानने के लिये मुख्य शाखा से सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है ।

एसोसिएशन आफ, राइटर एण्ड इलस्ट्रेटर फार चिल्ड्रन्स (आविक) 4, नेहरू हाऊस बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली द्वारा खोले गए 30 क्षेत्रीय बाल-पुस्तकालय इस दिशा में नया कदम हैं । इस व्यस्त जीवन में बच्चे दूर स्थित पुस्तकालय तक नहीं पहुँच पाते तो ये पुस्तकालय बच्चों तक पहुँचने का बीड़ा उठाये हुए हैं । ये क्षेत्रीय पुस्तकालय सप्ताह में 2 दिन उस कालोनी के बच्चों की सुविधा के अनुसार दो-दो घंटे खोले जाते हैं । महीने के आखिरी शनिवार को इन पुस्तकालयों के सब अध्यक्ष इकट्ठे होकर पुस्तकों की अदला-बदली करते हैं । केवल 2.00 रु. मासिक शुल्क जमा किया जाता है । प्रत्येक बच्चे को एक सुन्दर डायरी दी जाती है जिसमें वह पुस्तक पढ़कर अपनी प्रतिक्रिया बिना किसी संकोच के लिखता है । यह प्रतिक्रिया बच्चे के मानसिक सम्मान दर्शान में बहुत सहायक होती है । इस प्रतिक्रिया के द्वारा प्रकाशक तथा लेखक आदि अपने कार्य में आवश्यक सुधार ला सकते है । सदस्यता के समय केवल माता-पिता के हस्ताक्षर कराये जाते है । वाद-विवाद, ड्राइंग, पेंटिग आदि प्रतियोगिताओं के आयोजन करने और बच्चों को अच्छी पुस्तकें पुरस्कार में देने की भी व्यवस्था है । इन क्षेत्रीय बाल-पुस्तकालयों की एक बहुत बड़ी विशेषता यह भी है कि समस्त कार्य स्वेच्छा से किया जाता है । इसके लिये बहुत बड़े कमरे, फर्नीचर आदि की आवश्यकता नहीं है । किताबें पुस्तकालय अध्यक्ष के पास एक डिब्बे में रखी होती है जिन्हें वह निश्चत समय पर अपने घर के ड्राइंग रूम में ही या किसी अन्य उपलब्ध स्थान पर एक मेज की व्यवस्था कर बच्चों के लिये प्रदर्शित कर देता है । इन पुस्तकालयों की सूची भी मुख्य कार्यलय से प्राप्त की जा सकती है तथा अपने क्षेत्र में क्षेत्रीय पुस्तकालय खोलने के इच्छुक व्यक्ति भी इस कार्यलय से सम्पर्क कर सकते हैं । ◻◻

डी-5 विक्रम नगर
फिरोजशाह कोटला
नई दिल्ली

प्रतिभा की खोज

❑ शरनजीत कौर

भारत वर्ष प्राकृतिक साधनों से परिपूर्ण है, लेकिन हम उसका उचित ढंग से सदुपयोग नहीं कर पा रहे हैं । इसके कई कारण हैं, जिनमें से एक प्रमुख कारण है प्रतिभाशाली व्यक्तियों की कमी । इसका तात्पर्य यह नहीं है कि इस देश में प्रतिभाशाली व्यक्ति नहीं है । भारत में बहुत से प्रतिभाशाली व्यक्ति हैं जिनमें से कुछ ने तो विदेशों में जाकर अपनी प्रतिभा से उस देश के विकास में सर्वाधिक सहायता की है और आज भी तल्लीनता के साथ कार्य कर रहे हैं, किन्तु अधिकतर यहीं पर रहकर बहुत से आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, आदि कारणों से अपनी विशेष योग्यताओं का परिचय नहीं दे पा रहे हैं ।

आज के इस तेजी से बदलते हुए युग मे जहाँ अन्य देशों के लोग चाँद पर दुनियाँ बसाने का विचार कर रहे हैं और अन्य नक्षत्रों व ग्रहों पर जाने के प्रयास में लगे हैं वहीं अपेक्षाकृत भारत आज़ादी के 44 वर्षों के बाद भी उतनी उन्नति नहीं कर पया है जितनी कि अपेक्षित थी । आज के इस युग मे समाज में बहुत तेजी से परिवर्तन आ रहा है । नये-नये प्रौद्योगिक साधनों का विकास हो रहा है तथा औद्योगिकरण की प्रक्रिया बहुत जटिल होती जा रही है । ऐसे में हमे वैज्ञानिकों, समाजशास्त्रियों, अर्थशास्त्रियों, शिक्षाविदों इत्यादि की बहुत जरुरत है । अतः हमारा यह कर्त्तव्य हो जाता है कि हम प्रतिभाशाली व्यक्तियों को पहचान कर उन्हें उचित अवसर प्रदान करें तथा समुचित विकास में सहायता करके उनकी विशेष योग्यताओं से समाज व देश को लाभान्वित करने का प्रयास करें । अब प्रश्न उठता है कि प्रतिभाशाली से हमारा तात्पर्य क्या है ? अभी तक बुद्धि लब्धि के आधार पर ही उनकी पहचान की जाती थी । ऐसा माना जाता था कि जिनकी बुद्धि लब्धि 130 या इससे अधिक है वह प्रतिभावान हैं । लेकिन केवल बुद्धि परीक्षणों के आधार पर इसकी व्याख्या नहीं की जा सकती है । विशेषतः भारत में तो हम इसके आधार पर ज्यादा कुछ नहीं जान सकते है, क्योंकि भारत में मानकीकृत परीक्षणो की बहुत कमी है, और जो परीक्षण हैं, भी तो उनमें कई कमियाँ हैं । पहली बात तो यह है कि यह परीक्षण किसी विशेष भौगोलिक क्षेत्र विशेष, अथवा विशेष उद्देश्य (अनुसंधान आदि) से बनाए गए हैं जो कि हमारे इस उद्देश्य को पूरा करने मे असमर्थ हैं ।

प्रायः लोग प्रतिभा को केवल शिक्षा से जोड़ते हैं । उनके अनुसार जो शिक्षा में अच्छा है अर्थात् हर शैक्षिक विषय में अच्छे अंक प्राप्त कर रहा है वह ही प्रतिभावान है । ऐसा सोचना अनुचित है, प्रतिभा केवल एक विशेष क्षेत्र से संबधित नहीं है उदाहरण के लिए जेम्स वाट ने स्कूली शिक्षा नहीं ली, लेकिन उन्होंने रेल इंजन जैसी महत्वपूर्ण चीज़ का आविष्कार किया, रामानुजम जिन्होंने स्कूल की दसवीं कक्षा भी पास नहीं की लेकिन गणित के बहुत बड़े

विद्वान हुए, कपिलदेव जिनकी कि स्कूल विषयो में उपलब्धि औसत भी नहीं थी लेकिन खेल (क्रिकेट) के क्षेत्र में उन्होंने व केवल राष्ट्रीय बल्कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्धि प्राप्त की । ऐसे ही कई और उदाहरण हैं जिसमें व्यक्ति की शैक्षिक उपलब्धि तो बहुत कम या न के बराबर थी लेकिन किसी विशेष क्षेत्र में बहुत दक्षता थी । इससे यह स्पष्ट होता हैं कि किसी भी व्यक्ति की प्रतिभा किसी एक या एक से अधिक क्षेत्रों में हो सकती है जैसे–कोई गायन के क्षेत्र में विशेष योग्यता रखता है, तो कोई खेलकूद में अग्रसर है, कोई विज्ञान के क्षेत्र में कुछ कर दिखाने की क्षमता रखता है । 1972 में संयुक्त राज्य अमेरिका के शिक्ष विभाग द्वारा एक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया गया, जिसमें प्रतिभा की परिभाषा निम्नलिखित छः क्षेत्रों को मिलाकर दी गई है–

- ☐ सामान्य बुद्धि
- ☐ सृजनात्मक चिन्तन
- ☐ विशेष शैक्षिक योग्यता
- ☐ नेतृत्व योग्यता
- ☐ दृष्टिगत और निष्पादित योग्यता तथा
- ☐ मनोगतिकीय योग्यता ।

यद्यपि शैक्षिक उपलब्धि द्वारा ऐसे विद्यार्थियों को पहचाने ने में बहुत सहायता मिलती है, किन्तु यह मापदंड पूरी तरह से उपयुक्त नहीं है क्योंकि बहुत से ऐसे विद्यार्थी हैं जिनकी रुचि की कमी, प्रेरणा की कमी, घर का प्रतिकूल वातावरण आदि कारणों से शैक्षिक उपलब्धि बहुत कम होती है । ऐसे विद्यार्थियों को पहचानना बहुत ही जटिल कार्य है । दोनों ही तरह के लोगों को पहचानने में निम्नलिखित लोगों की सहायता ली जा सकती है–माता–पिता, परमर्शदाता, अध्यापकगण व संगी–साथी । जिनमें कि माता–पिता अध्यापकों व परामर्शदाता, की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण है । इसके लिए यह आवश्यक है कि इनको प्रतिभाशाली बच्चों की विशेषताओं का पूर्ण ज्ञान हो । इन सबमें परामर्शदाता की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण है । इनके पास विद्यालय के सभी विद्यार्थियों की पूर्ण जानकारी होती है । ये प्रत्येक विद्यार्थी की रुचि, योग्यताओं, बुद्धि लब्धि, उनकी मुख्य क्रियाओं इत्यादि की पूर्ण जानकारी होती है, लेकिन यह परामर्शदाता बहुत कम विद्यालयों में हैं । ऐसे में अध्यापक की भूमिका भी बहुत महत्वपूर्ण हो जाती है । उनको न केवल ऐसे लोगों की विशेषताओं के बारे में पता होना चाहिए, बल्कि ऐसे लोगों के लिए क्या–क्या सुविधायें किस प्रकार उपलब्ध कराई जा सकती है इसकी जानकारी भी होनी चाहिए तथा अध्यापक में इतनी क्षमता होनी चाहिए कि वह बहुत ही प्रेम लगन व धैर्य से विद्यार्थी को उसकी विशेष योग्यताओं के विकास के लिए प्रेरित कर सके । इसके लिए अध्यापक का अपना व्यक्तित्व भी पूर्णतयः समायोजित होना चाहिये । ऐसे विद्यालय के अध्यापक को जिनमें परामर्शदाता नहीं है, अपनी–अपनी कक्षा का संचयी अभिलेख प्रपत्र बनाना चाहिए, वह प्रत्येक विद्यार्थी की मुख्य मुख्य क्रिया–कलापों का अवलोकन करके लिखें । इसके लिए आवश्यक है कि अध्यापक पक्षपात न करे । प्रायः यह देखा जाता है कि जो विद्यार्थी अच्छे, घरों से अर्थात् सम्पन्न घरों से आते हैं साफ सुथरे कपड़े पहने होते हैं, सुबह आते ही उनको प्रणाम करते हैं ऐसे विद्यार्थियों को वह अधिक मूल्यांकन करते हैं जो कि पूर्ण रूप से गलत है । उनको इस तथ्य से भली भांति परिचित होना चाहिए कि अधिकतर प्रतिभाशाली व्यक्ति प्रत्येक कार्य को अपने ढंग से करते हैं और वह अध्यापकों के उत्तर से जल्दी सहमत नहीं हो पाते हैं । इसीलिए ऐसे में अध्यापकों काक डाँटना–डपटना नहीं चाहिए बल्कि ध्यानपूर्वक उनकी बात सुननी चाहिए बल्कि उनके प्रत्येक क्रियाकलापों का अवलोकन करके नोट करना चाहिए । इसके अतिरिक्त समय–समय पर माता–पिता को भी स्कूल में बुलाना चाहिए व उनसे बच्चे से संबंधित जानकारी प्राप्त करनी चाहिए ।

प्रतिभाशाली विद्यार्थियों की शिक्षा के लिए मुख्ययतः तीन तरह की विधियाँ अपनाई जाती है । प्रथम विधि के अंतर्गत जो छात्र पढ़ाई में बहुत प्रखर होता है वे अपनी कक्षा का पाठ्यक्रम बहुत कम समय में समाप्त कर उसमें प्रवीण हो जाता है । तब ऐसे छात्रो को अगली कक्षा में भेज दिया जाता है । उदाहरण के लिए अगर कोई तीसरी कक्षा का छात्र अपने पाठ्यक्रम को समय से पहले ही अच्छी तरह से जान लेता है तब ऐसे छात्र को चौथी या पांचवी कक्षा में जिसके लिए वह उपयुक्त है भेज दिया जाता है, *यद्यपि बहुत से लोग इस विधि के विरोधी* है । उनके अनुसार यह विद्यार्थी के भावात्मक विकास में बाधक है । लेकिन कहीं–कहीं पर यह बहुत ही सफल सिद्ध हुई है जैसे कि जॉन हायफिन्स विश्वविद्यालय में एक कार्यक्रम किया गया, जिसके अंतर्गत जूनियर हाई स्कूल के प्रतिभावान बच्चों को कालेज में प्रवेश दिलयाय गया और यह पाया गया कि इन छात्रों ने बहुत कठिन गणित व विज्ञान में बहुत ही अच्छा कार्य किया । भारत में भी कई स्कूलों में इस विधि को अपनाया जाता है लेकिन यह सिर्फ निम्नस्तर की कक्षाओं व अधिकतर प्राईवेट स्कूलों तक ही सीमिति है प्रायः ऐसा देखा गया है कि कोई विद्यार्थी यदि नर्सरी के पाठ्यक्रम को या प्रथम कक्षा के पाठ्यक्रम को पूर्ण रूप से जानता है तब उसे दूसरी कक्षा में भेज दिया जाता है । लेकिन बड़े दुख की बात है कि इसके बाद और इसके अतिरिक्त उनके पास ऐसे बच्चों के विकास के लिए अन्य कोई विशेष कार्यक्रम योजनाये नहीं है ।

दूसरी विविध के अंतर्गत विद्यार्थी उसी कक्षा में रहता है लेकिन उसकी प्रतिभा को मुखरित करने के लिए कुछ विशेष प्रावधान होते हैं–

- विद्यार्थी जिस क्षेत्र में अच्छा है उस विशेष विषय को वह अपने से अगली कक्षा के विद्यार्थियों के साथ पढ़ता है ।
- दूसरे प्रावधान में बच्चा स्कूल की अवधि के पश्चात् ऐसे विद्यार्थियों को विशेष पाठ्यक्रम पढ़ाये जाते हैं । उदहारण के लिए कक्षा चार के भूगोल के पाठ्यक्रम के एक पाठ में मुख्य नदियों का नाम व यह कहाँ–कहाँ बहती है इसके बारे में बताया गया है लेकिन जैसे कि यह सर्वविदित है कि उत्सुकता प्रतिभाशाली बच्चे की एक मुख्य विशेषता है *इसलिए वह इस बारें में और जानकारी* प्राप्त करना चाहेगा जैसे– नदियों पर बाँध कैसे बनाये जाते हैं, पानी से ऊर्जा कैसे बनाई जाती है इत्यादि । ऐसी विस्तृत जान–कारी, संबंधित विषय के विशेष पाठ्यक्रम में दी जाती है ।

तीसरी विधि में समान योग्यता वाले बच्चों का एक समूह बना लिया जाता है जिसमें कि उन्हें या तो उसी स्कूल में या फिर अन्य स्कूल में जहाँ सारे प्रतिभाशाली व्यक्ति होते हैं, शिक्षा दी जाती है ।

विदेशों में ऐसे व्यक्तियों के विकास के लिए बहुत सारी योजनाएँ हैं । भारत मे भी इस दिशा में कुछ कार्य किए गए हैं व किए जा रहे हैं । जैसे कि राष्ट्रीय प्रतिभा खोज परीक्षा, जो कि एन. सी. ई. आर. टी. के द्वारा शुरु की गई है जिसके अंतर्गत दसवीं कक्षा के छात्रों की परीक्षा ली जाती है और योग्यता के अनुसार 750 विद्यार्थियों को छात्रवृति दी जाती है, जो बारहवीं कक्षा तक 150 रु. प्रतिमाह और स्नातक स्तर पर 200 रु. प्रतिमाह होती है । भारत जैसे अधिक जनसंख्या वाले देश के लिए 750 संख्या और दी जाने वाली राशि भी बहुत कम है जो कि निम्न आर्थिक स्तर के लोगों के लिए पर्याप्त नहीं है । दूसरा ग्रामीण क्षेत्रों में रहने

वाले लोगों को इसके बारे में ज्ञान भी नहीं है । इसलिए सबसे पहले आवश्यक है कि इस छात्रवृति की सुविधा के विषय में विभिन्न माध्यमों द्वारा प्रचार करायें और दूसरा छात्रो की संख्या व दी जाने वाली राशि में वृद्धि करें । इस योजना के अंतर्गत स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तर के उन विद्यार्थियों को जिन्हें यह छात्रवृति दी जाती है, ग्रीष्मकालीन अवकाश मे कुछ विशेष पाठ्यक्रम भी पढ़ाये जाते हैं, लेकिन यह केवल विज्ञान विषयों तक ही सीमित है । अतः दूसरे विषयों के लिए भी इसी तरह के पाठ्यक्रम बनाने चाहिए तथा ऐसी योजना राज्य स्तर पर भी होनी चाहिए ।

भारत सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) के अंतर्गत ग्रामीण क्षेत्र के प्रतिभाशाली छात्र व छात्राओ के लिए नवोदय विद्यालय की स्थापना की । इस समय पूरे भारत में लगभग चार सौ नवोदय विद्यालय है लेकिन यह भी अपने उद्देश्य में पूर्णतः सफल नहीं हो पाये है । इसका प्रथम कारण है अध्यापकों का असंतुष्ट होना । इन स्कूल के अध्यापकों से वार्तालाप करके यह पता चला है कि वे अपने कार्य व वेतन से संतुष्ट नहीं हैं उनके अनुसार एक तो उन्हें ग्रामीण क्षेत्र में भेज दिया गया है दूसरा कुछ अतिरिक्त वेतन भी नहीं दिया जाता है । उनसे जरुरत से ज्यादा प्राशासनिक कार्य भी करवाया जाता है । जिनकी वजह से थकान के कारण पढ़ाने में कोई रुचि नहीं रह जाती है । यह योजना ग्रामीण क्षेत्रों के निम्न आर्थिक स्तर के लोगों के लिए है । इसके कारण यह लोग ऐसे विद्यार्थियों को भी चुनते हैं जो कि प्रवेश परीक्षा को पास नही कर पाते है चूँकि उनकी निश्चित की गई विद्यार्थियों की संख्या को पूरा करना पड़ता है । प्रायः मध्यम आर्थिक स्तर के बच्चे उस प्रवेश परीक्षा को उत्तीर्ण करने के बाद भी प्रवेश पाने में असमर्थ हो जाते हैं । क्योंकि वरीयता के अनुसार पहले निम्न आर्थिक स्तर के बच्चों की वजह से यह विद्यालय अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो रहे हैं । सरकार को चाहिए कि वे अपनी इस योजना में कुछ सुधार लाये जैसे– प्रवेश परीक्षा में निश्चित किए गए न्यूनतम अंक प्राप्त करना जरुरी होना चाहिए । इससे कम अंक प्राप्त करने वाले को प्रवेश नहीं दिया जाना चाहिए चाहे वे किसी भी आर्थिक स्तर को क्यों न हो इसके अतिरिक्त सरकार को चाहिए कि वह ग्रामीण क्षेत्रों के अध्यापकों को अतिरिक्त सुविधायें प्रदान करें जिससे वह आकृष्ट होकर ऐसे क्षेत्रों में कार्य करने के लिए प्रेरित हों । सरकार को चाहिए कि वह ऐसे ही विद्यालय शहरों मे भी खोले ।

इसी दिशा में प्रतिभाशाली छात्रों के लिए कुछ समृद्ध पाठ्यक्रम व कार्यक्रम भी बनाये गए हैं, लेकिन वह भी पूर्ण रूप से सफल नहीं हुए है । इसका प्रथम कारण है कि यह विदेशी कार्यक्रम व पाठ्यक्रम की नकल करके बनाए गए है जो कि भारतीय परिस्थिति में खरे नहीं उतरते है तथा ग्रामीण क्षेत्रों के लिए तो यह बिल्कुल व्यर्थ हैं । दूसरा, हमारे स्कूल शिक्षक ही इतने योग्य नहीं हैं कि वह ऐसे पाठ्यक्रमों को पढ़ा सकें । ऐसा देखा गया है कि प्रतिभाशाली छात्र व छात्राएँ विद्यालय में अध्यापक बनने की अपेक्षा अन्य किसी उच्च स्तर के अधिकारी जैसे प्रशासनिक सेवा में अथवा बैंक अधिकारी आदि बनना अधिक पसंद करते है और अगर इनमें से कोई पढ़ाने में रुचि रखता है तो वह भी विद्यालय में शिक्षक बनने की अपेक्षा कालेज में व्याख्याता बनना ज्यादा पसंद करता है । जब वह अपने इस उद्देश्य में असफल हो जाता है, और उसके पास कोई दूसरा विकल्प नहीं रह जाता है तब वह विद्यालय में शिक्षक बनने के लिए मजबूर होता है । ऐसी दशा में जब वह स्वयं ही कुंठित व असंतुष्ठ होता है तब दूसरों के लिए वह क्या प्रयास करेगा ?

विद्यालय का शिक्षक बनने में लोगों की घटती

रुचि के कई कारण हैं । जिसमें से मुख्य कारण है— वर्तमान समय में विद्यालय के शिक्षकों की विशेषता प्राइमरी शिक्षक को समाज में उच्च स्थान नहीं दिया जाता है । यह बहुत ही दुखद विषय है कि जो व्यक्ति बच्चे की नींव को बनाकर भविष्य के लिए उसका तैयार करता है उसी के व्यवसाय को समाज में वह सम्मान नहीं दिया जाता है जो कि उसको मिलना चाहिए । इसके लिए सरकार को कुछ विशेष प्रयास करने होंगे जैसे उनको कुछ विशेष सुविधायें उपलब्ध करानी चाहिए । इसके अतिरिक्त सरकार को अध्यापकों को उनके कार्य के आधार पर पुरस्कार भी वितरित करने चाहिए । जैसे जिस विद्यालय के जिस विषय में बच्चे किसी क्षेत्र में प्रतिभा का परिचय देते हैं उससे संबंधित शिक्षक को राज्य स्तर अथवा केन्द्रीय स्तर पर पुरस्कार देना चाहिए । जिससे एक तो उनके सम्मान में वृद्धि होगी, साथ ही, उनमें और अच्छा प्रयास करने की प्रेरणा का विकास होगा । फलस्वरूप वह प्रतिभाशाली बच्चों के विकास की ओर अधिक ध्यान देंगे ।

भारत सरकार को चाहिए कि वह प्रतिभाशाली व्यक्तियों के लिए राष्ट्रीय स्तर पर एक संस्थान खोले । जिसका कि प्रमुख उद्देश्य ऐसे व्यक्तियों के लिए विशेष कार्यक्रम, समृद्ध पाठयक्रम, व परीक्षण तैयार करना व इस क्षेत्र में हो रहे अनुसंधानों को प्रोत्साहित करना होना चाहिए । तथा जिस क्षेत्र में या विषय आदि से संबंधित कोई विशेष कार्यक्रम या परीक्षण बनायें तो उसे लागू करने से पहले संबंधित क्षेत्र (ग्रामीण, शहरी) के एक विद्यालय में प्रयोग करके, उससे प्राप्त परिणामों पर अवश्य विचार करें तथा उपयोगी होने पर ही उसे संबंधित क्षेत्र विद्यालयों में लागू करें । इस संस्थान को अपने सारे कार्यों को अच्छी तरह से निष्पादित करने के लिए मनौवैज्ञानिक परामर्शदाताओं, स्कूल अध्यापकों इत्यादि की भी सहायता लेनी चाहिए ।

इस तरह से बनाये गए कार्यक्रमों से हमारे उद्देश्य की पूर्ति तभी होगी जब अधिक से अधिक प्रतिभावान लोग इससे लाभान्वित होंगें । इसके लिए हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि बहुत से राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक कारणों से लगभग सत्तर प्रतिशत लोग विद्यालय नहीं जा पाते हैं जिसके कारण आजकल प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र व अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र खोले गए हैं । हमें इन केन्द्रों से भी प्रतिभाशाली व्यक्तियों का पता लगाना चाहिए क्योंकि कभी–कभी प्रतिभा की पहचान देर से भी होती है ।

इसके अतिरिक्त हमें इस बात पर भी विचार करना होगा कि ऐसे बच्चों को शिक्षा किस प्रकार से देनी चाहिए ? हमें यह देखना होगा कि भारत की वर्तमान परिस्थिति में हम प्रत्येक स्कूल को हर तरह की संभव सुविधायें उपलब्ध करवा पायेंगे । यद्यपि ये अत्यन्त कठिन कार्य है पर असंभव नहीं । इसके लिए हमें कुछ योजनाएँ बनानी होंगी जिसके अंतर्गत प्रत्येक विद्यालय को चाहिए कि वह अपने विद्यालय में देखे कि कितने बच्चे किस क्षेत्र में प्रतिभा रखते हैं । उदाहरण के लिए अगर किसी एक विद्यालय में दस प्रतिभावान बच्चे है जिसमे से कि अधिकतर छात्र विज्ञान के क्षेत्र में रुचि व विशेष योग्यता रखते हैं तो उस विद्यालय को विज्ञान की अधिकाधिक सुविधायें उपलबध करानी चाहिए और किसी दूसरे विद्यालय में अगर अधिकतर छात्र खेलकूद में विशेष योग्यताएँ रखते हैं तो ऐसे विद्यालय में इससे संबंधित सुविधायें उपलब्ध करानी चाहिए जिससे दूसरे निकटवर्ती विद्यालय के बच्चे जो इस क्षेत्र में क्षमता रखते हैं वहां जाकर अपनी प्रतिभा का विकास कर सकें इसके लिए बहुत आवश्यक है कि विद्यालय में आपसी सामंजस्य हो । विभिन्न विद्यालय के प्रधानाचार्यों को आपस में मिलकर योजना बनानी चाहिए जिससे कि कुछ ऐसा किया जा सके जिसमें कि विद्यालय की

पढाई व अन्य क्रिया कलापों में बिना विघ्न पड़ें, दूसरे विद्यालय के बच्चे वहा आकर उपलब्ध सुविधाओं का उपयोग कर सकें । इसके लिए यह बहुत आवश्यक है कि विद्यालय अवधि के पश्चात् निश्चित अवधि तक उन सुविधाओं को उपलब्ध करवाना चाहिए, क्योंकि प्रत्येक विद्यार्थी के लिए विद्यालय के समय अपने विद्यालय से निकलकर दूसरे विद्यालय में आना संभव नहीं होता है । इसके अलावा प्रत्येक विद्यालय को कुछ समय के अंतराल पर वाद-विवाद प्रतियोगिता, गायन प्रतियोगिता, कला प्रदर्शनी, तथा खेलकूद इत्यादि के आयोजन करवाने चाहिए । जिसमें कि उस शहर के और जहाँ तक संभव हो सके उस जनपद के सभी कस्बों, गाँवों, शहरों, इत्यादि के बच्चों को भी सम्मिलित करना चाहिए । लेकिन इसकी जिम्मेदारी किसी एक विद्यालय पर न डालकर सभी विद्यालयों को इसके लिए संगठित प्रयास करना चाहिए ।

पाठ्यक्रम विद्यार्थियों की आवश्यकतानुसार होना चाहिए । इसलिए समय-समय पर आवश्यकतानुसार उसमें परिवर्तन लाना बहुत जरूरी है । इसके साथ ही साथ पढ़ाने की नयी विधियों का विकास व मूल्यांकन विधियों में भी सुधार लाना चाहिए । विद्यार्थियों से प्रश्न इस तरह से पूछने चाहिए जिसमें कि विद्यार्थी अपनी सूझबूझ व प्रतिभा का परिचय दे सके । उदाहरण के लिए आलोचनात्मक प्रश्न जैसे, भारत की शैक्षिक व्यवस्था जापान की शैक्षिक व्यवस्था से किस तरह भिन्न है ? मूल्यांकनात्मक प्रश्न जैसे- व्यक्ति के मूल्यों का विकास करने में शिक्षा का क्या योगदान है ? पूछने चाहिए ।

कुछ निजी संस्थान भी ऐसे व्यक्तियों के लिए सराहनीय कार्य कर रहे हैं । मध्यम, आर्थिक व निम्नस्तीय लोग इन संस्थानों से अधिक लाभान्वित नहीं हो पा रहे हैं क्योंकि इनका व्यय बहंत अधिक है । सरकार को चाहिए कि वह ऐसे संस्थानों का पता लगाकर उन्हें कुछ अर्थिक अनुदान दें जिससे कि वह अपना शुल्क कम कर सकें, परिणामस्वरूप उच्च आर्थिक स्तर के अतिरिक्त मध्यम व निम्न आर्थिक स्तर के लोग भी इनसे लाभान्वित हो सकें । ☐☐

जूनियर प्रोजेक्ट फैलो
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
नई दिल्ली

कक्षा शिक्षण की मूलभूत प्रवृतियाँ

❐ रमेश चन्द्र पारीक

विद्यालय में रोज घंटी बजती है । छात्र और शिक्षक नियत समय पर कक्षा में पहुँचते हैं । उपस्थिति दर्ज होती है । ईशवंदना के पश्चात् कक्षाओं में शिक्षण की बारी आती है । कक्षा शिक्षण ही प्रत्येक विद्यालय की सबसे ज्यादा सक्रिय गतिविध एव मूलभूत प्रवृति हे । एक जीवंत कार्यकलाप है । इस प्रक्रिया में बालक कुछ करके सीखते हैं और शिक्षक अपने मूल्यगत जीवनानुभवों व व्यावहारिक समझ के आधार पर शिक्षा का अंतरण करते हैं । उपलब्ध सुविधाओं को मध्येनजर रखते हुए अपने कौशल व लगन से बालकों का सर्वगीण विकास करने का अथक बीड़ा उठाते हैं ।

कक्षा शिक्षण में तीन मुख्य सावश्व हैं । व्याख्यान या मौखिक कार्य पाठन–पठन और लिखित कार्य । भाषा शिक्षण मे कविताएँ तथा शारीरिक शिक्षा में खेलकूद तथा सहगामी पाठ्यक्रियाएं विशेष महत्व रखती हैं । प्रत्येक कक्षा शिक्षण में इन मूलभूत प्रवृतियों का क्रम इस प्रकार रहता है–मौखिक, पठन, तथा लेखन । इसके साथ कक्षा शिक्षण में अनुशासन व स्थिरता बनाए रखने के लिए पठन, पाठन, लिखित कार्य, चित्रकारी, कविता पाठ और खेलकूद आदि सहायक रहते हैं । सचित्र शब्दकोश तथा पहाड़े, व सूत्र इत्यादि का उपयोग लाभदयक रहता है ।

भाषा शिक्षण में शुद्ध उच्चारण पर बल देना अति आवश्यक है । कठिन शब्दों और क्लिष्ट वाक्यों पर विशेष बल देना चाहिए, प्रत्येक अक्षर में प्रयुक्त स्वर–व्यंजन के उतार–चढ़ाव पर सतर्क व सावधान रहना है । बालकों में इस स्तर पर बोलने की सही आदत डालनी है । एक जागरूक व अध्यव्यवसायी सुविधादाता, कक्षा में स्वर व्यंजन, ध्वनियों, मात्राएं आदि पर प्रतिपल ध्यान रखकर चौकस रहता है ।

पठन प्रक्रिया बालकों को नया पाठ, शब्द आदि सीखने के लिए तथा उनकी समझ में अभिवृद्धि के लिए होती है । यह कक्षा में नियमित होनी चाहिए ताकि बालकों को भावार्थ आसानी से समझ में आ सकें । कक्षा में आदर्श पठन बहुत उपयोगी अभ्यास कार्य है जोकि छात्रों में बुनियादी तौर पर सुधार करता है पठन से तुलनात्मक जानकारी व कौशल में इजाफा होता है ।

किसी भी कक्षा में किसी भी परिस्थिति में पूरे कालांश तक केवल मौखिक या पठन कार्य नहीं हो सकता है क्योंकि इस स्तर पर बालक जल्दी ही थक जाते हैं और बैचेनी महसूस करते है । इसलिए कक्षा में नियंत शिक्षित कार्य में पर्याप्त व समुचित विभिन्नता होनी चाहिए जैसे कुछ मौखिक कार्य, कविता, कक्षा के उठने–बैठने या हस्त खेल, और कुछ पठन आदि । ऐसा करने से कक्षा खुश व चुस्त रहेगी और ऐसा अभ्यास करने से बालक भाषा के महत्वपूर्ण कौशलों को (सुनना बोलना, पढ़ना और लिखना) सुगमता से

विकसित कर सकेंगे ।

कक्षा–शिक्षण में सबसे जरुरी काम है लिखित कार्य, प्रत्येक शिक्षक को कक्षा में बालकों को लिखित कार्य करवाना चाहिए चाहे बालक कार्य पुस्तिका ही भरे या अन्य विषय से संबंधित कार्य करे, किन्तु कक्षा में लिखित कार्य शिक्षक के कुशल निर्देशन व निरीक्षण में सम्पन्न होना चाहिए । शिक्षक कक्षा में चारों ओर घूमकर बालकों को देखे कि क्या सभी बालक लिख रहे हैं ? यदि कोई अशुद्धि दिखाई पड़े तो तत्काल ठीक करवा देना चाहिए । बालकों को पेन या पैंसिल पकड़ने का सही तरीका व कापी में लिखने की अच्छी आदत को विकसित करना चाहिए । श्यामपट्ट पर हम लोग शुद्ध लिखें तथा लिखने का सही व उपयुक्त तरीका अपनाएँ ।

प्रत्येक शिक्षक को कक्षा में प्रवेश करने से पूर्व घर पर यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि आज कक्षा में कौन–सा प्रकरण सिखाना है तथा पढ़ाए जाने वाले पाठ के मुख्य बिन्दु कौन–कौन से हैं, और उन्हें बालकों को सिखाने में कौन–सी प्रविधि सबसे अच्छी रहेगी । कविता को पढ़ने का अभ्यास स्वयं कर लें और उसका भावार्थ समझ लें तथा समुचित सहायक सामग्री का प्रबंध कर ले । कुछ वाक्य और शब्द कार्ड पठन के लिए तैयार कर लें ।

कक्षा शिक्षण को प्रभावी व कारगर बनाने के लिए कक्षा में शिक्षक को कुछ सार्थक बातों का दैनिक आचरण व व्यावहार में पालन करना चाहिए । कक्षा में प्रवेश करते ही बालकों का अभिवादन करना चाहिए जैसे गुड मार्निंग, प्लीज, थैंकयू आदि । कक्षा में सीखने–सिखाने जैसा माहौल बनाना चाहिए । बालकों के समक्ष उपयुक्त वातावरण बनाना चाहिए । उन्हें उत्साहित व जिज्ञासु बनाये रखना चाहिए । पूरे कालांश एक ही लकीर के फकीर नहीं रहना चाहिए इससे बालकों के खिले चेहरों पर शिकन या मायूसी आ जाती है । कक्षा में मौन तोड़कर कोई कविता सुनिए फिर 10–12 मिनिट मौखिक कार्य पर बल दीजिए । प्रतिदिन 5–7 मिनिट पठन भी करवाइए फिर 5–7 मिनिट लिखित कार्य अववश्य करवाइए । बीच–बीच में बालकों को कोई इनडोर खेल खिलाइए या कागज से कोई चीज (टोपी, गेंद, नाव, हवाई जहाज आदि) बनवाइए या कोई एक मनपंसद चित्र बनाइए । और अंत में कालांश समाप्ति पर कक्षा छोड़ने से पूर्व बालकों का गुडबाई कहना न भूलिए । ☐☐

बी–3, स्टाफ क्वाटर्स
केन्द्रीय विद्यालय नं.–1
अलवर (राजस्थान)

अतिसुचालकता-विज्ञान के क्षेत्र में एक नई क्रांति

❐ वी. सी. पचौरी
❐ वी. के. गौतम

विज्ञान के क्षेत्र में जो मुख्य खोजें हुई हैं उनमें अतिसुचालकता की खोज का एक महत्वपूर्ण स्थान है । अतिसुचालकों के प्रयोग द्वारा सुविधाजनक एवं कम खर्चीला होगा ।

अतिसुचालकों के प्रयोग से विद्युत ऊर्जा के क्षय को बहुत हद तक रोका जा सकेगा । उदाहरण के लिये यदि भारत में विद्युत प्रेषण को लें तो लगभग 35% ऊर्जा विद्युत घरों से उपभोक्ता तक पहुँचने से पहले ही उष्मा के रूप में क्षय हो जाती है । इस विद्युत ऊर्जा का क्षय एल्यूमिनियम एवं ताँबे के तारों के प्रयोग के कारण होता है । यदि एल्यूमिनियम के तारों का प्रतिरोध "R" ओम और तारों मे बहने वाली धारा "I" है तो उष्मा के रूप में विद्युत शक्ति का क्षय सूत्र $P = I^2 R$ से दिया जाता है । क्योंकि अतिसुचालकों का विद्युत प्रतिरोध शून्य होता है । अतः यदि हम विद्युत शक्ति के अपव्यय को अतिसुचालकों के प्रयोग द्वारा रोक सकें तो न केवल राष्ट्र को ही एक सुदृढ़ आर्थिक आधार मिलेगा साथ ही साथ हमारी बढ़ती ऊर्जा की जरुरतें काफी हद तक पूरी हो सकेंगी । वैज्ञानिक अतिसुचालकों की खोज से ऊर्जा के क्षेत्र में क्रांति हो जाने के प्रति आशान्वित हैं । सुपरकम्प्यूटरों को बनाने में आने वाली अनेक कठिनाइयां अतिसुचालकों के प्रयोग द्वारा स्वतः ही दूर हो जायेंगी । कम्प्यूटरों में जो विद्युत परिपथ बनाये जाते हैं उनके विद्युत प्रतिरोध के कारण उष्मा उत्पन्न होती है और उस उष्मा के कारण कभी–कभी कम्प्यूटर कार्य करना भी बंद कर देते हैं । पर अतिसुचालकों के प्रयोग करने से ऐसी कोई भी समस्या सामने नहीं आयेगी क्योंकि अतिसुचालकों का विद्युत प्रतिरोध शून्य होता है तथा निकट भविष्य में ऐसे सुपरकम्प्यूटरों का निर्माण संभव होगा जिनका आकार केवल एक पेंसिल बाक्स के बराबर हो ।

अतिसुचालकों के प्रयोग द्वारा तूफानी गति से रेलगाड़ियों को पटरियों पर दौड़ाया जा सकेगा । यह अतिसुचालकों के प्रयोग द्वारा तीव्र चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न किये जाने के कारण ही संभव हो सका है । इस प्रकार हम देखते हैं कि उच्चतापीय अतिसुचालकता मानव जाति के लिये एक वरदान है । इससे यातायात के क्षेत्र में क्रांति आ जायेगी तथा विमानों में ईंधन की काफी बचत होगी । विद्युत प्रेषण में होने वाली ऊर्जा क्षय को रोका जा सकेगा । चिकित्सा, प्रतिरक्षा और संचार साधनों में अतिसुचालकों का प्रयोग नये आयामों को जन्म देगा ।

आइये हम देखें कि यह अतिसुचालकता का गुण क्या है ? सभी पदार्थो को उनकी विद्युत सुचालकता के आधार पर चार भागों में बाँटा जा सकता है–

(1) कुचालक

(2) अर्धचालक
(3) चालक तथा
(4) अतिसुचालक

कुचालक वह पदार्थ हैं जो कि विद्युत धारा को अपने में से प्रवाहित नहीं होने देते हैं क्यों कि उनमें मुक्त इलैक्ट्रान नहीं होते हैं । सभी इलैक्ट्रान परमाणु से मजबूती से जुड़े रहते हैं अतः विद्युत चालन में सहायता नहीं करते हैं । रबर, प्लास्टिक काँच आदि वस्तुएँ कुचालकों की श्रेणी में आती हैं । अर्धचालक पदार्थ शून्य परम ताप पर तो कुचालक की तरह कार्य करते हैं किन्तु कमरे के तापक्रम पर कुछ इलैक्ट्रान तापीय विक्षोम के कारण अपने परमाणुओं से मुक्त हो जाते हैं तथा कुछ हद तक विद्युत धारा को प्रवाहित होने देते हैं । इन अर्धचालकों की विद्युत चालकता आवर्त सारणी के तृतीय ग्रुप या पंचम ग्रुप के तत्वों को मिलाकर बढ़ाई जा सकती है । तृतीय ग्रुप से इण्डियम या बोरॉन तथा पंचम ग्रुप से फास्फोरस या एण्टीमनी तत्वों का प्रयोग अर्धचालकों की विद्युत चालकता बढ़ाने के लिये किया जाता है । जरमेनियम तथा सिलीकान आदि तत्व अर्धचालक की श्रेणी में आते हैं ।

धातुऐं विद्युत की सुचालक होती हैं क्योंकि उनमें मुक्त इलैक्ट्रोनों की संख्या बहुत अधिक होती है और यह मुक्त इलैक्ट्रान ही विद्युतधारा के प्रवाह में सहायता देते हैं । किंतु फिर भी धातुओं का कुछ न कुछ विद्युत प्रतिरोध अवश्य होता है । चांदी, सोना, तँबि जैसी धातुओं का प्रतिरोध काफी कम होता है । लेकिन अतिसुचालक पदार्थों का विद्युत प्रतिरोध शून्य होता है । कुछ तत्वों के मिश्रण बहुत निम्न ताप पर अतिसुचालकता का गुण प्राप्त कर लेते हैं । इस अवस्था मे इलैक्ट्रोनों की गति अनियमित न होकर अनुशासित हो जाती है । इलैक्ट्रान जोड़ों के रूप में साथ साथ आगे बढ़ते हैं और आगे बढ़ते समय आपस में नही टकराते हैं । अतः उर्जा का क्षय नहीं होता है और अतिसुचालक पदार्थ का विद्युत प्रतिरोध शून्य हो जाता है ।
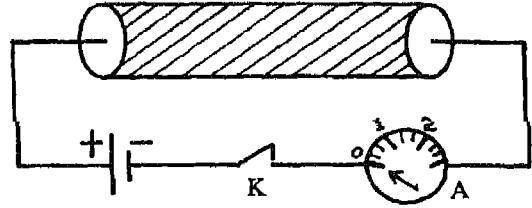
कुचालक

(1) इन पदार्थों में मुक्त इलैक्ट्रान नहीं होते हैं अतः धारा नहीं बहती है और विद्युत प्रतिरोध अनन्त होता है ।
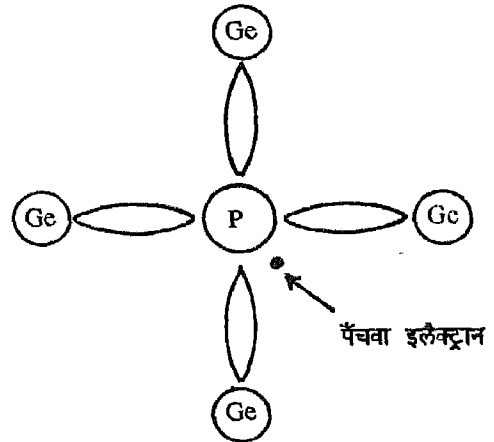
अर्धचालक

(2) पाँचवा इलैक्ट्रान लगभग मुक्त होता है । अतः अर्धचालक में धारा प्रवाहित होती है । इनका प्रतिरोध चालक और कुचालकों के बीच होता है ।

चालक

इलैक्ट्रानों के चलने की दिशा
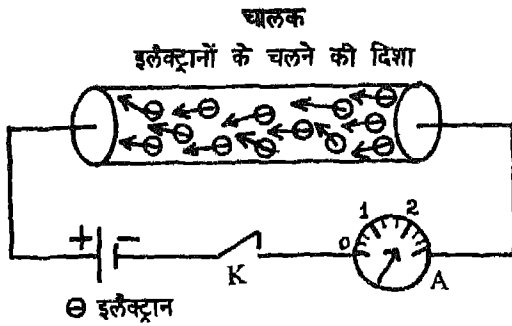
⊖ इलैक्ट्रान

(3) चालक के सिरों पर विभवान्तर लगाने पर चालक में से धारा प्रवाहित होती है । इलैक्ट्रान एक दूसरे से टकराते हुये टेढ़े-मेढ़ी गति करते हैं ।

अतिसुचालक

इलैक्ट्रानों के चलने की दिशा
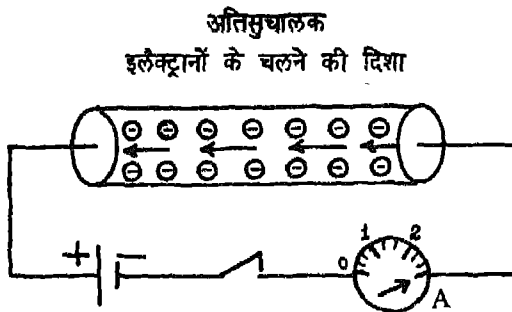
(4) अतिसुचालक पदार्थ इनका विद्युत प्रतिरोध शून्य होता है । अतः ऊर्जा का क्षय नहीं होता है । इलैक्ट्रान एक समूह में अनुशासित होकर चलते हैं ।

अब हम जान चुके हैं कि अतिसुचालक दूसरे पदार्थों से किस प्रकार भिन्न हैं इनकी खोज की भी कहानी बड़ी रोचक है । 1911 ई. में एक डच वैज्ञानिक ही के केमरलिंघ ने पारे में अतिसुचालकता के गुण की अतिनिम्नताप लगभग 4 K पर खोज की । यह खोज उन्होंने हीलियम गैस को द्रवित करने में सफलता प्रापत करने के तीन वर्ष पश्चात् की और उन्होंने पारे को निम्न ताप तक ठंडा करने में द्रव हीलियम का ही प्रयोग किया ।

इसी प्रकार सीसा (लैड) और टिन के बारे में भी यह पाया गया कि जब यह तत्व एक विशेष तापक्रम से नीचे ठंडे किये जाते हैं तो इनमें अतिसुचालकता का गुण आ जाता है । यह तापक्रम विभिन्न तत्वों के लिए अगल अलग होता है । पर अधिकांश तत्वों में यह 20 K (–235°C) से नीचे पाया गया । वर्तमान में अतिसुचालकता का गुण लेन्थानम, बेरियम और ताँबें के मिश्रण तथा कुछ धातुओं के आक्साइड़ों में पाया गया है । शक्तिशाली चुंबकीय क्षेत्र उत्पन्न करने के लिये अतिसुचालक बहुत ही उपयोगी हैं क्योंकि इनमें बिना किसी ऊर्जा क्षय के उच्च विद्युत धारायें भेजी सकती हैं । वैज्ञानिक जानते हैं कि अतिसुचालक विज्ञान के क्षेत्र में एक नया युग शुरु करने की क्षमता रखते हैं किन्तु वैज्ञानिकों के सामने एक सबसे बड़ी समस्या यह रही कि अतिसुचालकता का गुण तापक्रम बढ़ने पर लुप्त हो जाता है अतः अतिसुचालकता का गुण बनाये रखने के लिए द्रव हीलियम की आवश्यकता पड़ती है । किन्तु हीलियम को 4.2 K पर द्रवित करना और उसको सुरक्षित रखना अपने आप मे टेढ़ी खीर है । अतः वैज्ञानिकों ने ऐसे पदार्थो की खोज प्रारम्भ की जो कि उच्च ताप पर अतिसुचालकता के गुण को प्रदर्शित करें और उनको प्राप्त करना कम खर्चीला हो । वर्तमान में विभिन्न देशों के वैज्ञानिक अपनी अपनी प्रयोगशालाओं में दिन रात ऐसे पदार्थ को ढूँढ निकालने में कार्यरत हैं जो कमरे के तापक्रम पर भी अतिसुचालकता का गुण प्रदर्शित कर सकें । ऐसा लगता है कि यह दौड नोबेल पुरस्कार के लिये है जो भी वैज्ञानिक इस दौड़ में प्रथम आयेंगे वही इस महान आदर के अधिकारी होंगे ।

अतिसुचालक पदार्थों के चुम्बकीय गुण भी उनकी विद्युत चालकता के समान ही विस्मयकारी हैं । अतिसुचालक पदार्थों के चुम्बीकीय गुणो की व्याख्या उनके विद्युत प्रतिरोध शून्य होने के आधार पर नहीं

की जा सकती है । एक अतिसुचालक पदार्थ चुम्बीकीय क्षेत्र में अनचुम्बकीय पदार्थ (Diamagnet) की तरह व्यवहार करता है तथा चुंबकीय बल रेखाये उसके भीतर होकर नहीं गुजर पाती हैं ।

यदि किसी पदार्थ को चुंबकीय क्षेत्र में रख कर उसको एक विशेष तापक्रम तक ठंडा किया जाय जिससे कि वह अतिसुचालकता का गुण प्राप्त कर ले तो ऐसा देखा गया है कि चुंबकीय बल रेखायें पदार्थ में से नहीं गुजर पाती हैं और बाहर से ही मुड़ जाती हैं । इस प्रभाव को मीसनर प्रभाव कहते हैं । कोई भी पदार्थ अतिसुचालकता के गुण को प्राप्त कर चुका है या नहीं इस को मीसनर प्रभाव द्वारा जाना जा सकता है ।
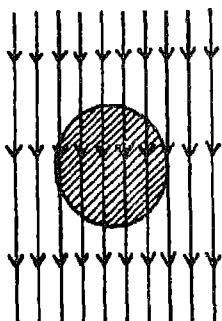
चुबकीय बल रेखायें पदार्थ के नमूने में से गुजर रही हैं ।
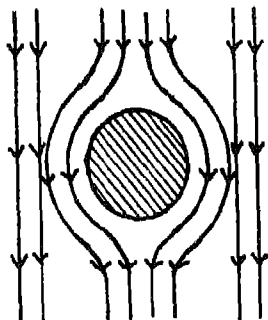
जब पदार्थ अति सुचालक हो जाता है तो चुंबकीय बल रेखायें बाहर से ही मुड़ जाती हैं ।

उच्च तापीय अतिसुचालक पदार्थ को एक बर्तन में द्रव नाइट्रोजन के अंदर रख कर जब चुंबक को अतिसुचालक पदार्थ की प्लेट के ऊपर रखा जाता है तो चुंबक हवा में तैरने लगता है इसका कारण यह है कि अतिसुचालक पदार्थ चुंबकीय क्षेत्र को प्रतिकर्षित करते हैं । (चित्र अगले पृष्ठ पर है)

द्रव हीलियम को प्राप्त करना और सुरक्षित रखना अपने आप में एक कठिन कार्य है, अतः पिछले लगभग डेढ़ साल में वैज्ञानिकों ने सिरमिक यौगिकों में अतिसुचालकता का गुण उच्च तापक्रम पर प्राप्त करने के प्रयत्न किये । यह सिरेमिक पदार्थ धातुओं और आक्सीजन के यौगिक हैं । यह सिरैमिक पदार्थ अतिसुचालक का गुण 98 K पर ही प्रदर्शित करने लगते हैं । अतः द्रव हीलियम की जगह द्रव नाइट्रोजन का प्रयोग अतिसुचालकता का गुण प्राप्त करने के लिए अब किया जाने लगा है । इन सिरैमिक यौगिकों द्वारा उत्पन्न चुंबकीय क्षेत्र धात्विक अतिसुचालकों द्वारा उत्पन्न चुंबकीय क्षेत्र से तीव्र होता है ।

अति सुचालकता के गुण को सन् 1911 में सबसे पहले हीके केमरलिंघ ओन्स ने खोजा पर उसके पश्चात् इस क्षेत्र में कुछ कार्य न हो सका । सन् 1950 में वैज्ञानिकों ने पाया कि निओबियम, टिन और टाइटैनियम धातुओं के यौगिक अतिसुचालकता का गुण शक्तिशाली चुंबकीय क्षेत्रों की उपस्थित में भी बनाये रखते हैं जब कि पूर्व अतिसुचालक शक्तिशाली चुंवकीय क्षेत्र की उपस्थित में अपनें चुंबकीय गुण को खो देते थे । इसके बाद सन् 1973 में वैज्ञानिक अतिसुचालकता का गुण निओबियम और जरमेनियम के यौगिक में 23 K पर देखने में सफल हुये । पर उसके उपरान्त सन् 1982 तक वे ऐसे किसी भी पदार्थ की खोज न कर सके जो 23 K से उच्च तापक्रम पर अतिसुचालकता का गुण प्रदर्शित कर सकें ।
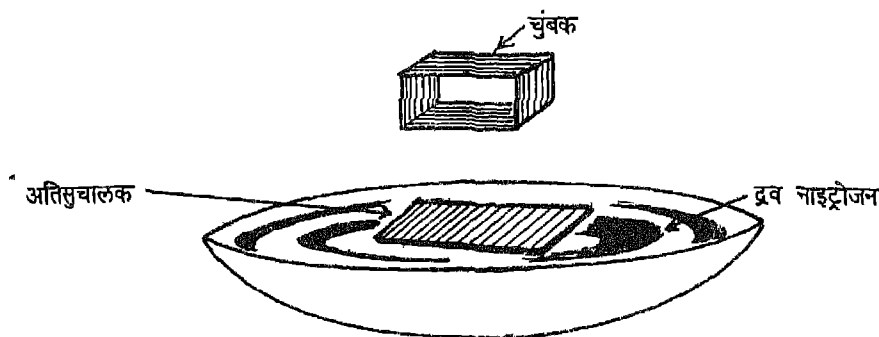
चुंबक अतिसुचालक पदार्थ के ऊपर हवा में तैरता रहता है ।

सन् 1983 में कार्ल एलेक्स मुलर नामक भौतिकविद् ने आई. बी. एम्. ज्यूरिख अनुसंधान प्रयोगशाला स्विटजरलैंड में सिरैमिक यौगिकों का उपयोग अतिसुचालक प्राप्त करने के लिये किया । वैसे तो सिरैमिक यौगिक कमरे के ताप पर विद्युतरोधी होते हैं पर जब इनको द्रव नाइट्रोजन के द्वारा ठंडा किया जाता है तो यह अतिसुचालकता का गुण प्रदर्शित करते हैं ।

सन् 1985 में मूलर और उनके सहयोगी बेडनार्ज ने बेरियम, लेन्थानम तांबे और आक्सीजन का ऐसा यौगिक तैयार किया जिसमे कि अतिसुचालकता का गुण 35 K पर ही प्राप्त हो गया । यह तापमानो में सभी से उच्च था जिस पर कोई पदार्थ अतिसुचालको में बदल गया था । यह नया यौगिक एक विशेष विधि द्वारा लेन्थानम, बेरियम और कापर नाइट्रेट के जलीय विलयनों को एक निश्चित अनुपात में अभिक्रिया करा कर प्राप्त किया गया ।

इन परिणामों से उत्साहित होकर वैज्ञानिक कावा और बैटलाग एक ऐसे यौगिक को तैयार करने में सफल रहे जिसने कि अतिसुचालकता का गुण 38 K पर प्राप्त कर लिया । उन्होने इस यौगिक को प्राप्त करने के लिए La $(oH)_3$, Sr Co_3 और Cuo के पाउडरों को एक निश्चित अनुपात में कई दिन 1000°C तक क्वार्टज क्रूसीबिल में गर्म किया ।

वैज्ञानिक पाल सी. डब्लू. चू. ने जो कि हाउस्टन विश्वविद्यालय में कार्य कर रहे हैं एक ऐसे यौगिक को तैयार किया जिसने अतिसुचालकता का गुण 40 K पर ही प्राप्त कर लिया । वैज्ञानिकों ने पाया कि यदि इस यौगिक पर दबाव वायुमंडीलय दबाव का 10,000 से 12,000 गुना तक कर दिया जाये तो यह यौगिक 52 K तक अतिसुचालक बना रह सकता है । इस यौगिक को अधिक दबाव में रखने पर भी अतिसुचालकता और उच्च ताप पर प्राप्त नहीं हो सकी अतः उन्हों ने बेरियम नामक तत्व को हटा कर स्ट्रशियम नामक तत्व का उपयोग किया । यह नया यौगिक 54 K तक अतिसुचालक बना रह सकता था ।

मॉ–कुयेन वू नामक वैज्ञानिक ने यिट्रियम तत्व का उपयोग करके एक ऐसे यौगिक को बनाने में सफलता प्राप्त की जो कि 98 K तक अतिसुचालकता का गुण प्रदर्शित कर सके ।

आई. बी. एम. टीम ने एक भारतीय वैज्ञानिक प्रवीन चौधरी के नेतृत्व में अतिसुचालक यौगिक का एक अत्यन्त पतला तार तैयार किया जिसकी मोटाई मनुष्य के बाल की मोटाई के बराबर थी और जिसमें
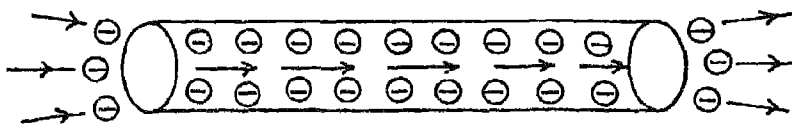
अतिसुचालक के भीतर इलैक्ट्रानों की गति

धातु के तारों की अपेक्षा सैकड़ों गुना विद्युत धारा प्रवाहित की जा सकती थी।

भारत में अतिसुचालकों पर अनुसंधान देश की कई वैज्ञानिक अनुसंधान शालाओं में चल रहा है। उनमें भाभा एटामिक रिसर्च केन्द्र बम्बई, टाटा इन्सटीट्यूट ऑफ फन्डामेन्टल रिसर्च बम्बई, इन्डियन इन्सटीट्यूट आफ साईस, बंगलौर, आई. आई. टी. मद्रास तथा राष्ट्रीय अनुसंधानशाला दिल्ली प्रमुख हैं।

टी. आई. एफ. आर. और बी. ए. आर. सी. के वैज्ञानिक अब ऐसे यौगिक का निर्माण करने में सफल रहे हैं जो कि 107 K तक अतिसुचालक बना रहता है। उन्होंने यह यौगिक यिट्रियम, स्ट्रॉशियम तथा कापर आक्साइड के मिश्रण से तैयार किया। वैज्ञानिक टंग चेन ने वायने (Wyne) स्टेट विश्वविद्यालय, अमेरिका में कार्य करते हुए अप्रैल 1987 में कुछ पदार्थों में 240 K तक अतिसुचालकता का कुछ गुण पाया। भारत में भी अभी हाल ही में राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला दिल्ली में कार्यरत वैज्ञानिकों ने कुछ पदार्थों में 300 K (27°C) पर भी अतिसुचालकता के कुछ गुण की खोज की है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वैज्ञानिक बहुत बड़ी संख्या में ऐसे यौगिकों को तैयार करने में सफल रहे हैं जो कि अतिसुचालकता का गुण प्रदर्शित करते हैं। पर वह अभी तक यह नहीं जान पाये हैं कि यह यौगिक अतिसुचालकता का गुण क्यों प्रदर्शित करते हैं। बारडीन, कूपर और श्रीफर द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त केवल निम्न तापक्रम पर अतिसुचालकता की व्याख्या कर सकता है उच्च तापक्रम अतिसुचालकता की नहीं।

बी. सी. एस. सिद्धान्त के अनुसार इलैक्ट्रान अतिसुचालक यौगिक के अन्दर टेढ़ी-मेढ़ी गति नहीं करते वरन् जोड़ों में अनुशासनबद्ध होकर गति करते हैं। इस तरह वह आपस में नहीं टकराते हैं और यौगिक का विद्युत प्रतिरोध शून्य रहता है।

अतिसुचालकों का प्रयोग विशाल त्वरित्रों का निर्माण करने में, संलयन द्वारा ऊर्जा प्राप्त करने में, चिकित्सा क्षेत्र में और विद्युत प्रेषण में किया जाना संभव है। विशाल त्वरित्रों के निर्माण में उच्च तापीय अतिसुचालकों के उपयोग से द्रव हीलियम के ऊपर होने वाले खर्चों से बचा जा सकता है। इसी तरह संलयम विधि द्वारा ऊर्जा प्राप्त करने के लिये "चुम्बकीय बोतलों" के निर्माण में अतिसुचालकों के प्रयोग द्वारा एक नई क्रांति आ सकेगी। वह दिन दूर नहीं है जब भारत में भी उच्च अतिसुचलकों का प्रयोग विद्युत प्रेषण, तूफानी गति से चलने वाली रेलगाड़ियों और संचार साधनों के निर्माण में किया जा सकेगा। □□

केन्द्रीय विद्यालय,
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान
कानपुर

वैदिक रीति से गुणा करने की "निखिल विधि"

❑ बैजनाथ शर्मा

वैदिक रीति से गुणा करने की यों तो कई विधियाँ हैं; परन्तु इनमें से दो प्रमुख हैं–

1. ऊर्ध्वातिर्यक 2. निखिल

ऊर्ध्वतिर्यक विधि के विषय में प्राप्त "प्राइमरी शिक्षक" के अंक 1, जनवरी 1990 में पहले ही पढ़ चुके हैं । निखिल विधि से गुण करने का सूत्र है–

"निखिलंनवतश्चरम् दशतः"

अर्थात– "सभी नौ से और अतिन्त दस से"

गुणनफल प्राप्त करने की प्रक्रिया

निखिल विधि से गुणा करने के लिए निम्नलिखित सोपान होंगे–

1. सर्वप्रथम यह देखिए कि गुणा की जाने वाली संख्याऐं समान अंकों (2 ,2; 3, 3 आदि) की हैं या असमान (2, 3; 3, 4 आदि) अंकों की ?

2. प्रत्येक संख्या से आगे की उस संख्या को खोजिए जो 10 या 100 से पूरी तरह विभाजित हो सके, जैसे– 41 के लिये 50 और 95 के लिये 100 इसी को हम आधार संख्या कहते हैं ।

3. दोनों संख्याओं को उनके लिए माने गये आधारों में से अलग–अलग घटाइए ।

4. आधार में संख्याओं को घटाने के पश्चात् दोनों का गुणा उसी प्रकार कर दीजिए जिस प्रकार सामान्य गुणा मे किया जाता है । यदि गुणा एक ही अंक में है तो उसे इकाई के स्थान पर रख दीजिए और यदि गुणानफल दो अंकों में आता है तो इकाई को इकाई के स्थान पर रखकर शेष राशि को आगे के लिये रख लीजिये ।

5. इकाई से आगे की राशि तीन प्रकार से जानी जा सकती है ।

(क) (दोनों संख्याऐं का योग – आधार) × $\frac{\text{आधार}}{10}$

(ख) (आधार – दोनों बची हुई संख्याओं का योग) × $\frac{\text{आधार}}{10}$

(ग) (बड़ी संख्या – बड़ा शेष) × (छोटी संख्या – छोटा शेष) × $\frac{\text{आधार}}{10}$

इस प्रकार किसी भी तरीके से प्रापत राशि में वह राशि जोड़ दें जो इकाई के स्थान पर गुणानफल का प्रथम अंक रखने के पश्चात् शेष बची थी और दोनों के योग को इकाई के अंक के आगे रखदें । इसी को उदाहरण द्वारा इस प्रकार समझए– प्रश्न– 85 × 84 का गुणानफल ज्ञात कीजिए ?

सोपान प्रथम एवं द्वितीय

चूँकि दोनों संख्याऐं दो दो अंकों की है अतः दोनों के लिये आधार 90 या 100 किसी को भी माना जा सकता है

सोपान तृतीय

90 − 85 = 5
90 − 84 = 6

सोपान चतुर्थ–5 और 6 का गुणा कीजिए । यह हुआ– (5 × 6) = 30 इसमें से 0 को इकाई के स्थान पर रख दीजिए ।

सोपन पंचम

(5 क) के अनुसार– $(85 + 84 - 90) \times \frac{90}{10}$

$= 79 \times 9 = 711$

(5 ख) के अनुसार $90 - (5 + 6) \times \frac{90}{10} = 711$

(5 ग) के अनुसार (85 − 6) अथवा (84 − 5) $\times \frac{90}{10}$

$= 711$

711 में पहले बचे हुए 3 जोड़कर 714 को 0 के आगे रखदें । यही अभीष्ट गुणनफल होगा ।

85
84
7140

विषय अंकों वाली संख्याओं का गुणा

प्रश्न– 191 और 95 का गुणा कीजिए ।

हल– यहाँ पर दोनों संख्याओं के लिये आधार संख्या 200 और 100 अलग अलग भी मानी जा सकती है, और दोनों के लिये केवल एक ही आधार 200 भी माना जा सकता है, शेष क्रिया उसी प्रकार होगी–

- संख्याऐं हैं 191 और 95
- आधार हुए 200 और 100
- आधारों में से मूल संख्याओं को घटाने पर

100 − 95 = 5
200 − 191 = 9

- इकाई एवं दहाई का अंक 5 × 9 = 45 में 45
- (क्योंकि आधार तीन अंकों का है अतः पहले दो अंक यथावत रखे जायेंगे ।)
- आगे की राशि– (v ग) के अनुसार

$(191-9) \times \frac{100}{100} = 182$ ——(i)

$(95-5) \times \frac{200}{100} = 180$ ——(ii)

- इसे 45 के आगे रख दीजिए । यही अभीष्ट उत्तर होगा ।

191
95
17145 अभीष्ट उत्तर

विशेष

1. इस विधि से कितनी ही राशियों (45 × 84 × 91 × 37 आदि) का गुणनफल ज्ञात किया जा सकता हैं, लेकिन गुणानफल ज्ञात करते समय पहले दो दो के जोड़े बनाने होंगे । उसके बाद गुणानफल उसी प्रकार आगे निकला जायेगा ।

2. आधार आदि दो अंकों वाली राशि है । अर्थात 100 से विभाजित होने वाली है तो इकाई के स्थान यथावत रहेंगे और यदि आधार 1000 से

विभाजित होने वाला है तो इकाई, दहाई और सैंकड़ा के तीनों अंक यथावत रहेंगे । शेष अंक अगले गुणनफल में जुड़ेंगे ।

3. अभ्यास हो जाने के पश्चात् इस विधि से लम्बे से लम्बे और क्लिष्ट से क्लिष्ट गुणानखण्ड भी सरलता से ज्ञात किये जा सकते हैं । ☐☐

रा. वि. (डीम्ड यूनीवर्सिटी)
लोकमान्य तिलक शिक्षक, प्रशिक्षण महाविद्यालय
डबोक (उदयपुर)

बच्चों के विकास में माता की भूमिका

❑ राजमल डांगी

बिना सोचे समझे आँख मीच कर खाते जाईये, थोड़े दिन मे आपका पेट और पुर्जे जवाब दे देंगे। फिर आपकों हल्का भोजन पचाने में भी कठिनाई होगी। थोड़ी–सी गलती ने आपकी पाचन शक्ति को मंद कर दिया जो बात शारीरिक स्वास्थ्य के लिये सोचना आवश्यक हैं।

बालकों के मासूम मस्तिष्क के छोटे पुर्जो पर लगातार जब प्रहार किये जाते है तो उन पुर्जो की कार्य क्षमता धीरे धीरे मन्द हो जाती है, और बालक मन्द बुद्धि, की कोटी में आ जाता है। उसे मन्द बुद्धि किसने बनाया ? यह एक जटिल प्रश्न हैं।

बालक को मन्द बुद्धि बनाने में प्रथम जिम्मेदारी उसकी माँ की है। जो बालक पर पल पल में गुस्सा किया करती हैं। तनाव की अवाज के द्वारा ही उसके मस्तिष्क को काम करने के लिये अभ्यस्त बना देती हैं। इस प्रणाली से अच्छें किस्म की बुद्धि की स्प्रिंग भी अधिक वजन के दबाव में ढीली होती जाती हैं।

अतः आवश्यकता तो इस बात की हैं कि बालकों के मिस्तष्क को धीमी आवाज के द्वारा काम करने का अभ्यस्त बनाया जावे। यदि बिना आवाज कियें ही उन्हें आँख के इशारे से ही काम करते रहने का अभ्यस्त बनाया जावें तो उसके महित पुर्जे कम घिसेगें।

बज शेर से जंगली स्वभाव वाले प्राणियों को रिग मास्टर आँखों की पुतली के बल पर नाच नचा सकता हैं तो क्या आपका लाड़ला उससे भी निष्कृष्ट कोटि का हैं। क्या वह इतना गया बीता हैं ?

दूसरी जिम्मेंदारी जो प्रत्येक माता को पूरी करना पड़ती हैं वह पठन–पाठन की प्रक्रिया भी मस्तिष्क के भार को नाप तोल कर ही उपयोग में लाना चाहियें। प्रत्येक माता अपने लाल को शंकराचार्य समझकर उसके छोटी उम्र में ही एकदम पढ़ाई का काफी बोझ लादना चाहती हैं। उसे अधिक से अधिक पहाड़े याद कराने का प्रयास कराया जाता हैं यदि बालक को शीघ्र पहाड़े याद नही हों तो उसे रटन्त की पद्धति से रटने को कहाँ जाता हैं। इस रटन्त प्रणाली से पहाड़ा तो याद करा दिया बाकी सब भुला दिया।

मासूम मस्तिष्क को सोचने की शक्ति जानने की उत्सुकता और आत्म विश्वास के साथ सही उत्तर प्रकट करने की शक्ति कमजोर हो गई हैं। इस शक्ति को कमजोर किसने किया ? इस प्रणाली से वृद्धि को अपाहिज किसने किया ?

यह सम्पूर्ण श्रेय उसकी माता को ही दिया जाना चाहिये जो जीजाबाई तो बनना चाहती है किन्तु

जीजाबाई बनने के तारीके को जानने की कोशिश नहीं करती हैं ।

जीजाबाई का शिवा धीर्मक और राष्ट्रीय चरित्रों की कहानियाँ सुना करता था । आप भी अपने लाडले को अच्छे चरित्रवान पुरुषों की कथा सुनाईयें ।

समस्या मूलक कहानियों और पहलियों के माध्यम से उसने मस्तिष्क के छोटे छोटे पुर्जो को भी कार्य करने का अभ्यस्त बनाईयें । यें छोटे छोटे मस्तिष्क के पुर्जे कार्यशी बनकर भविष्य के आधार पर जीवन की समस्याओं को शीघ्र सुलझावेगें ।

पहाड़ों का पठन भी महत्वपूर्ण हैं किन्तु उन्हें याद करने के कुछ दिन बाद ही बालक भूल जाता हैं । याद कराओं और फिर भूल जाता है । क्यों ?

जिस प्रकार पैन, औजारों और चमकीले बर्तनो की पालिश भी उपयोग के अभाव में हल्की पड़ जाया करती हैं, उसी प्रकार से पहाड़ो को याद करने के बाद भी चुप्पी नहीं साधना हैं । उन पहाड़ो से संबन्धित मौखिक व्यवहारिक हिसाब के प्रश्नों के द्वारा उसका उपयोग करने से पहाड़े भूलने पर भी नही भुलाये जा सकते ।

इसी प्रकार कुछ कक्षाओं के प्राथमिक शिक्षक भी बालकों को बड़े बडे प्रश्न रटने को कह कह कर मजबूर कर देते हैं । इन बड़े बड़े प्रश्नों के उत्तर बिना सोचे समझे रट लेना भविष्य में उतना ही हानिप्रद सिद्ध होता हैं जितना की बिना चबाया हुआ भोजन । □□

ज्ञानपिपासा
13/2, रामटेकरी, मन्दसौर (म. प्र.)

खुला एवं अलौकिक विश्वविद्यालय शान्ति निकेतन

□ वेद प्रकाश गुप्ता

शान्तिनिकेतन कलकत्ते से 159 कि.मी. दूर और वर्धमान से आगे स्थित है । जहां बोलपुर रेलवे स्टेशन से पैदल या रिक्शा द्वारा जाया जा सकता है ।

सन् 1861 में महर्षि देवेन्द्र नाथ ठाकुर (रविन्द्रनाथ ठाकुर के पिता जी) ने शान्तिनिकेतन में एक आश्रम स्थापित किया जहां पर 1901 में रविन्द्रनाथ ठाकुर ने ब्रह्मचर्य आश्रम शुरु किया । प्राचीन काल में लोग अपने बच्चों को आश्रम में विद्या ग्रहण करने के लिये भेजते थे । रविन्द्र नाथ ठाकुर ने 5 विद्यार्थियों को लेकर यह आश्रम आरम्भ किया । थोड़े ही समय में इस आश्रम की ख्याति इतनी फैल गई कि सारे संसार से भिन्न 2 देशों के विद्यार्थी इस आश्रम में शिक्षा लेने के लिये आने लगे ।

1923 में यहाँ पर विश्व भारती विश्वविद्यालय आरम्भ हुआ और यहां पर हर विषय में एम. ए. तक शिक्षा दी जाने लगी जैसे नाच, गाना ड्रामा, नाटक, कला, विज्ञान आदि । यदि कोई व्यक्ति बांसुरी बजाता है और वह पढ़ा लिखा नहीं है तो भी वह बांसुरी बजाने में एम. ए. पास कर सकता है । एक बार गुरु रविन्द्रनाथ ठाकुर शिलांग गये, उन्होंने वहां पर मणीपुरी नृत्य देखा जो उन्हें बहुत पसंद आया । इस नृत्य में सारे शरीर की बजाय केवल हाथों से संकेत दिये जाते हैं जो कि भगवान् की

पूजा के संकेत होते हैं। गुरुदेव ने ब्रिटिश सरकार से अनुमति मांगी कि वह मणिपुर में जाकर वहां के लोगों को देखना चाहते है जो कि इतना अच्छा नृत्य करते हैं, लेकिन सरकार ने उनको अनुमति नहीं दी। गुरुदेव ने अनुमति न मिलने पर मणिपुर से एक नृत्य सिखाने वाले गुरु को बुलाकर अपने आश्रम में रख लिया। और मणिपुर नृत्य की शिक्षा आरम्भ कर दी, और अब तो एम. ए. भी इस विषय में किया जा सकता है।

शान्तिनिकेतन में सह शिक्षा की व्यवस्था है तथा विद्यार्थियों को खुले वातावरण में वृक्षों के नीचे बैठकर पढ़ाया जाता है। वृक्षों के नीचे विद्यार्थी तथा अध्यापकों के बैठने की सीटें बनी हुई हैं। यहां विद्यार्थियों तथा अध्यापकों में मित्रों जैसा सम्बन्ध होता है। उनमें किसी प्रकार का भेदभाव नहीं होता। मैंने छठी तथा सातवीं कक्षा में जाकर वहां के विद्यार्थियों तथा अध्यापकों से बातचीत की। प्रकृति के खुले आंचल में वृक्षों के नीचे थोड़े-थोड़े फासले पर ये कक्षायें लगीं हुई थीं। समस्याओं का बड़े सरल तरीके से समाधान करते थे। विद्यार्थी और अध्यापकों में इतना गहरा अपनापन देख कर मन गदगद हो उठा।

यहां का समस्त वातावरण बिल्कुल घर परिवार जैसा ही लगता है और प्राकृतिक वातावरण में पढ़ने में बड़ा आनन्द आता है। तथा पढ़ाई भी बहुत अच्छी होती है, बंगला, अंग्रेजी, भूगोल, इतिहास, हिन्दी, संस्कृत गायन, नृत्य, ड्राइंग और खेल कूद आदि के विषय हैं साथ ही हैंडीक्राफ्टस की भी कक्षायें हैं।

शान्तिनिकेतन के 5 भवन यहां का मुख्याकर्षण हैं। इनके नाम हैं।

(1) कोनार्क
(2) उद्रयन
(3) श्यामली
(4) पुनश्च तथा
(5) उदीची

रविन्द्रनाथ ठाकुर बारी-बारी इन सब भवनों में रह चुके हैं इनके नामकरण भी उन्होंने ही किये थे।

यहां एक विशाल संग्रहालय है, तथा एक उपशान्तिनिकेतन है इसे श्री निकेतन भी कहते हैं। इस निकेतन में कृषि, दस्तकारी इत्यादि सिखाई जाती है। शान्तिनिकेतन में पौष महीने की सात तारीख को इसका का जन्म दिन मनाया जाता है और यहां पर बहुत बड़ा मेला लगता है।

इस प्रकार यह विश्वविद्यालय अन्य से भिन्न व अलौकिक है, देश में ऐसे और विद्यालयों की आवश्यकता है, जिससे बच्चे निर्भरतापूर्वक अपनी रुचि अनुसार शिक्षा ले सकें। ☐☐

174, देवली, नई दिल्ली

संकल्प

❑ सुष्मिता

बालिका वर्ष बीत गया, और बालिका दशक का सूर्य पूर्वांचल से झांक उठा । देश में अनेक कार्य गोष्ठियाँ, सेमिनार और कार्यशालायें आयोजित की गईं । विचार गोष्ठियों में लम्बे-चौड़े भाषण दिये गये, किन्तु एक व्यक्तित्व मात्र ऐसा था जो इन सब से दूर रहा । जल में खिले कमल की भांति इन बातो से अनभिज्ञ, अनजान थी वह बालिका जिसके लिये यह सब किया जा रहा था । क्या मिला उसे इस बालिका वर्ष में, और क्या मिलेगा उसे बालिका दशक में ?

आज समस्त देश में, गाँव के खलिहानों से लेकर शहर की भव्य इमारतों से एक ही स्वर, एक ही प्रश्न गूंज रहा हैः आखिर लड़कियों को ही क्यों इतना दबाया जाता है ? क्यों समझा जाता है उन्हें मनहूस, और एक बोझ ? समय बदल रहा है, और उसके साथ साथ लड़कियों को आगे बढ़ने देने की माग भी । आज ज़रूरत इस बात की है, कि उनमें आत्मविश्वास जगाया जाये, उन्हें नए नए काम करने का अवसर दिया जाये । उन्हें बोझ न समझ कर चमकते-दमकते सितारों का प्रारुप समझा जाये । उनमे झांसी की रानी लक्ष्मीबाई जैसी वीरता, मदर टेरेसा जैसी मानवता और महादेवी वर्मा जैसी रचनात्मकता का विकास किया जाना चाहिये ।

यदि समाज उनके प्रति अपना दृष्टिकोण नहीं बदलता, तो उन्हें समाज के सामने सिर उठा कर खड़ा होने देना चाहिये । देश की स्वतंत्रता का वास्तविक अर्थ है- व्यक्तित्व का पूर्ण विकास, और यदि बालिकायें पिंजरे में बन्द पक्षी की तरह अपने पंख फड़फड़ाती रहीं, तो इस स्वतंत्रता की सार्थकता ही क्यों होगी ?

सृष्टि की नींव बालिकाओ ने भी तो डाली है । यदि उन्हें उचित प्राशिक्षण, उचित शिक्षा और उचित दृष्टिकोण नहीं मिलेगा तो भविष्य में वे उन्नति की भव्य इमारत किस प्रकार खड़ी कर पायेंगी ? रुढ़ियों की बेड़ियों से मुक्त हो कर ही वे आकाश की ऊंचाइयों को छू सकेंगी । इस अधखिली कली की सुन्दरता को कोई किस प्रकार देख सकेगा और कैसे होगा उनकी प्रतिमा का विकास ? आज तो आवश्यकता इस बात की है कि वे लड़की के कदम से कदम मिला कर चलें, दूसरे का सहयोग लें, अपना सहयोग दें और जीवन को मधुर बनायें । यदि हम इस कार्य को नहीं कर सके, तो 1991-2000 को बालिका दशक मनाने का क्या अर्थ होगा ?

वैसे तो स्वयं बालिकाओं में बहुत कुछ कर गुज़रने की क्षमता हैं, हिम्मत है- क्योंकि वे सक्षम और समर्थ हैं । आवश्यकता तो केवल उन्हें राह दिखाने की है, दिशा निर्देश करने की है । हम जानते है कि जहां चाह होती है, वहां राह भी होती है । आइये, इस दशक में, 21वीं शताब्दी में कदम रखने से पहले हम बालिकाओं को स्वावलम्बी और सशक्त व सक्षम बनाने का संकल्प करें । ❑❑

द्वारा श्री रामेश्वर दयाल
73/91 दरभंगा कॉलोनी, इलाहाबाद

बाल विश्वविद्यालय

❑ विमला रस्तोगी

अपनी किलकारियों और सहज हावभाव से घर भर को खुशियों से भर देने वाला बच्चा अपनी दूध की बोतल के साथ ढाई या तीन वर्ष की आयु में स्कूल जाना प्रारम्भ कर देता है । अपने देश का भविष्य कहे जाने वाले इन बच्चों को हम स्नेह, प्यार, दुलार स्वास्थ्य और सही शिक्षा जैसे मौलिक अधिकारों से भी वंचित कर रहे हैं । अपनी अपेक्षाओं की सन्तुष्टी के लिए उनके भावी विकास को अनदेखा किया जा रहा है । शिक्षित और सम्पन्न मात-पिता बच्चे की अच्छी शिक्षा के प्रति उसके जन्म लेते ही, या जन्म के पूर्व से चिन्तित रहते हैं । दान देकर व प्रभाव द्वारा वह अपने बच्चे का अच्छे से अच्छे स्कूल में दाखिल कराना चाहते हैं । छोटे नगर या कस्बे में सम्पन्न परिवार मे पैदा हुआ बच्चा अंग्रेजी शिक्षा की खातिर 5-6 वर्ष की आयु में ही 'होस्टल' भेज दिया जाता है । आजकल मध्यमवर्ग और निम्न मध्यम वर्ग वाले भी जो हम न बन सके हमारा बच्चा बन जाए' की लालसा में बच्चों का पब्लिक स्कूलों मे दाखिला कराने के लिए अपनी हैसियत से ज्यादा पैसा और फीस देते हैं ।

खेलने कूदने और मस्त रहने की उम्र में बढ़ता किताबी बोझ आज अच्छी शिक्षा का पैमाना समझा जा रहा है, जबकि इस बोझ से बच्चों में तनाव और कुंठा बढ़ी है । इस बात को जानते हुए भी शिक्षक, संरक्षक और मनोवैज्ञानिक अनजान बन रहे हैं । यह भी सर्वविदित है कि बच्चे की प्राथमिक शिक्षा से उसका भावी विकास जुड़ा है, शारीरिक व, मानसिक भी । लेकिन आजादी के तैतालिस वर्षों के बाद भी बच्चों के लिए कोई सुलभ, ग्राह्य व दिलचस्प शिक्षा पद्धित नहीं अपनाई जा सकी यद्यपि यूनीसेफ की कई योजनाएँ इस दिशा मे कार्य कर रही हैं । समय समय पर सेमीनार और गोष्ठियों का भी आयोजन किया जाता है, पर शिक्षाविदों के विचार गोष्ठियों तक ही सीमित रह जाते हैं या फिर फाइलों में बन्द हो जाते हैं । माता-पिता भी बच्चो का पब्लिक स्कूलो में दाखिला कराकर निश्चिन्त हो जाते हैं उसके बाद उनकी पढ़ाई संबंधी रोजमर्रा की शिकयतों, जिनमें शिक्षक शिक्षिकाओं का दुर्व्यवहार, पढ़ाने के तरीके, पक्षपात शिक्षक या प्रिंसिपल के लड़के की दादागिरी आदि शामिल होती हैं, में माता-पिता रुचि नहीं लेते । अकेलेपन का अहसास करते बच्चे में पढ़ाई के प्रति अरुचि के साथ-साथ कुठांए जन्म लेने लगती हैं । बच्चे को अपनी जिज्ञासा विकास व उपलब्धियो का उचित प्रति उत्तर कम से कम प्रोत्साहन के रूप में अवश्य मिलना चाहिए । दुर्भाग्य से बच्चों को न उन्मुक्त परिवेश मिल पा रहा है न खेल का मैदान, जहाँ से वह भाई चारा आपसी तालमेल, नेतृत्व और लक्ष्यप्राप्ति जैसे गुणो को स्वय ही पा लेता है । बच्चे अपनी कल्पना शीलता व बुद्धि से जटिल स्थितियों का हल स्वयं ही कर लेते हैं । लेकिन खेल से हटकर दूरदर्शन में सिमटकर बच्चों की कल्पना का दम घुट गया है ।

आज के बदलते परिवेश में रोजमर्रा होने वाली

हिंसा की घटनाएं और मारधाड़ वाली फिल्मों का भारत के भावी नागरिकों के बाल सुलभ मस्तिष्क पर पड़ता बुरा प्रभाव, सही दिशा बोध वाली शिक्षा के अभाव में गहराता जा रहा है । कैन्सर की तरह फैलता जा रहा कामिक्स का जाल बड़ों को भ्रमित कर रहा है तो बच्चों की क्या औकात । कॉमिक्स का असर बच्चों पर अच्छा नहीं पड़ रहा है । वैसे भी 70 प्रतिशत बच्चे शिक्षा जैसी बुनियादी आवश्यक सुविधा से वंचित है, उनका भविष्य अनिश्चित है । होश संभालते ही उन्हें रोजी रोटी की चिन्ता सताने लगती है । लेकिन बाल शिक्षा के इस बोझिल क्षितिज पर आशा की नई किरन चमकी है बाल विश्वविद्यालय के रूप में, जिसे शीघ्र स्थापित करने की चर्चा दुनियाभर में है ।

बाल शिक्षा परिषद ने (लगभग तीन वर्ष पहले) सीरीफोर्ट सभागार में बाल शिक्षा सम्मेलन का आयोजन किया, जिसका उद्घाटन किया उपराष्ट्रपति डा. शंकरदयाल शर्मा ने । इस सम्मेलन में देश के सभी भागों के शिक्षविदों, शिक्षकों, पत्रकारों और बाल साहित्यकारों ने भाग लिया । बच्चों के लिए अच्छी शिक्षा पद्धति हेतु प्रयत्नशील बाल शिक्षा परिषद ने बाल विश्वविद्यालय की परिकल्पना को सब के सामने रखा, जो अपने आप मे अनूठी है । शायद गैर परम्परागत रुप से चलने वाला यह बाल विश्वविद्यालय ही इस देश की शिक्षा को सही रुप दे सके क्योंकि इसमें शिक्षा प्रदान करने के तरीके रोचक और स्वभाविक होंगे ।

बाल शिक्षा परिषद्, दो सौ एकड़ भूमि मे अनुदान बिना एक बाल विश्वविद्यालय बनाना चाहती है, जहा बच्चों को किताबों के बोझ से न लादा जाए । बच्चे अपने बचपन का पूरी तरह आनन्द उठा सके और ज्ञान भी प्राप्त कर सकें । इसके लिए इस विश्वविद्यालय में तीन मुख्य भाग होंगे ।

पहला भाग होगा तीन से छः बरस के बच्चों के लिए । उन्हें बिना किसी पाठ्यपुस्तक के सारी शिक्षा खेल खेल में दी जाएगी ।

दूसरे मुख्य भाग में 5 वर्ष से ऊपर के बच्चे लिए जाएंगे, जिनकी शिक्षा ग्यारह वर्ष की आयु तक वहीं रहकर होगी । यह तीन भाषाऐं (हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी) के साथ–साथ गणित व दूसरे विषय भी पढ़ेंगे । इस विश्वविद्यालय में इस शिक्षाकाल में बच्चों को कोई ऐसा काम भी सिखाया जाएगा, जिससे वह 16 या 17 वर्ष की उम्र में अपने पैरों पर खड़े होना चाहें तो हो सकें । इस तरह शिक्षा के इस दूसरे दौर की अवधि 11 वर्ष होगी इसमें परीक्षा प्रमाण पत्र नहीं होंगे । प्रारम्भ मे केवल एक हजार बच्चे इसमें लिए जाएंगे और प्रतिवर्ष एक हजार के हिसाब से बढ़ते रहेंगे । कुल दस हजार से ज्यादा बच्चे नहीं रखे जाएंगे ।

तीसरे भाग में, बच्चों की समस्याओं व अध्ययन पर शोध करने वाले संस्थान भी इस विश्वविद्यालय में होंगे अतः सोलह सत्रह वर्ष की आयु में अपनी विशेष रुचि के अनुसार छात्र किसी विशेष विषय में विशेषज्ञ की शिक्षा ग्रहण करेंगे जो छः या सात वर्ष तक चलेगी । इस प्रकार 23 वर्ष की आयु तक छात्र अच्छी सर्विस हेतु पूर्ण रुप से तैयार हो जाएगा यदि छात्र चाहेंगे तो विश्वविद्यालय परिसर में ही उपयुक्त आकर्षक वेतन पर काम कर सकेंगे ।

इतना नहीं बाल विश्वविद्यालय बच्चों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी करता रहेगा साथ ही बच्चों से संबंधित सभी समस्याओं पर रिसर्च (शोध) भी होंगे । जिससे बच्चों के खेलकूद स्वास्थ्य और व्यवहार को और भी अच्छा बनाया जा सके । इस विश्वविद्यालय के परिसर मे भारत के विभिन्न राज्यों की सभ्यता संस्कृति से भी जुड़े रहेंगे । प्रत्येक राज्यों से आए बच्चे एक साथ रहेंगे में एकता का सूत्रपात करेंगे प्रत्येक राज्य भी यहां अपने अपने सांस्कृतिक केन्द्र

स्थापित करेंगे ।

इस अनूठे बाल विश्वविद्यालय की रुप रेखा को सजाने संवारने तथा कार्यन्वित रुप देने के लिए एक समिति गठित की गई है जिसके अध्यक्ष ख्याति प्राप्त शिक्षाविद प्रो. मुनिस रजा हैं । भारतीय बाल विकास परिषद ने अपने ढंग की इस मौलिक अवधारण पर कार्य करना प्रारंभ कर दिया है, देखना है कि बच्चों के लिए वरदान सिद्ध होने वाले इस बाल विश्वविद्यालय को बनने में कितना समय लगेगा । वह कौन से सौभाग्यशाली बच्चे होंगे जो किताबों के बोझ से छुटकारा पाकर इसमें पहले/पहल पढ़ेंगे ।

अच्छे संस्कारों की नींव पर भारत के भावी नागरिक ही सबल और सक्षम होंगे । ❑❑

127, गगन विहार
दिल्ली

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद् नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित प्राइमरी शिक्षक एक त्रैमासिक पत्रिका है।

इस पत्रिका का उद्देश्य केन्द्रीय सरकार की शिक्षा नीतियो से संबधित आधिकारिक जानकारी को शिक्षकों और सम्बद्ध प्रशासको तक पहुचाना है। इसका उद्धेश्य कक्षा में इस्तेमाल की जा सकने वाली सार्थक और सम्बद्ध सामग्री प्रदान करना भी है। भारत के विभिन्न केन्द्रों में चल रहे पाठ्यक्रमो और कार्यक्रमो आदि के बारे में समय समय पर इसमें सूचनाएं प्रकाशित होती रहती हैं। शिक्षा-जगत् मे होने वाली हलचलो पर विचार-विमर्श के लिए यह एक मच का काम भी करती है।

इस पत्रिका के प्रमुख स्तम्भ है—

(1) प्राथमिक शिक्षा से सबधित शैक्षिक नीतिया।

(2) प्रश्न और उत्तर।

(3) राज्यो के समाचार।

(4) कक्षा मे इस्तेमाल की जा सकने वाली सचित्र सामग्री।

स्कूलों के शिक्षको की रचनाए प्रकाशनार्थ आमत्रित हैं। हर प्रकाशित रचना पर पारिश्रमिक की व्यवस्था है। लेख हिन्दी या अग्रेजी मे कागज के एक ओर लिखा होना चाहिए। सुविधा के लिए कृपया टाइप की गई या साफ-साफ, सुन्दर अक्षरो में लिखी रचना की दो प्रतियां भेजे।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली- 110016 के लिए सचिव द्वारा प्रकाशित तथा ए जे प्रिन्टर्स, 5 बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली- 110002 द्वारा मुद्रित।

ISSN 0970-9312

प्राइमरी शिक्षक

वर्ष 16 | अंक 4 | अक्तूबर 1991

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्राइमरी शिक्षक

सम्पादकीय सम्पर्क
प्रधान संपादक, पत्रिका प्रकोष्ठ, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली–110016
फोन : 652459
666047/4283

एक प्रति 2.00 रुपये, त्रैमासिक
वार्षिक मूल्य 8.00 रुपये

पत्रिका संपादन–राजकुमार गुप्त

कृपया अपना चन्दा व्यावसायिक प्रबन्धक, प्रकाशन विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद् नई दिल्ली – 110016 को भेजें।

प्राइमरी शिक्षक

वर्ष 16 | अंक 4 | अक्तूबर 1991

इस अंक में

सम्पादकीय

शिक्षा का स्वरूप

शिक्षा क्या है ? अपने मे एक मूलभूत प्रश्न है जिसके अनेक उत्तर हैं । उद्देश्यो की दृष्टि से इस विषय पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है किन्तु इसकी विषय वस्तु का ज्ञान बहुत कम लोगों को है । इस अज्ञान का कारण बुद्धि का अल्पविकास नहीं है वरन् स्थिति की अपनी मजबूरिया हैं । मज़े की बात तो यह है कि शिक्षा द्वारा प्रकाशित अथवा प्रकाशित तथ्य केवल "सूचना" (इन्फोरमेशन) की कोटि मे ही आता है । यदि यह सत्य है तो अध्यापक के अतिरिक्त भी अनेक उपलब्ध साधन हैं जिनसे बच्चे सूचना प्राप्त करते हैं। वास्तव में आज की शाला कुछ लिपि ज्ञान तथा सगठित, सुनियोजित पाठ्यसामग्री ही दे पाती है जो कदाचित भावी सूचना अर्जन के लिये मूल आवश्यकताये हैं । इसमें लिपि ज्ञान कौशल है, और पाठ्यसामग्री–मात्र सूचना । क्या शिक्षा कौशल देने के लिए आयोजित है, अथवा सूचना प्रसार–प्रचार का साधन है ।

ठीक से देखने पर ज्ञात होगा कि शिक्षा ज्ञानार्जन के लिये ही दी जाती है । इसके अतिरिक्त शेष सब कुछ मात्र साधन अथवा सीढ़ी हो किन्तु अपने में ज्ञान विभिन्न सूचनाओं मे अन्तर्सम्बन्ध स्थापित करने का परिणाम होता है । सूचना तथा कौशल ज्ञानार्जन के साधन तो हो सकते हैं किन्तु साध्य केवल ज्ञान ही होगा ।

ज्ञान मानव की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि होती है जो मनुष्य को पशु के धरातल से ऊपर उठाती है । कौशल कोई पशु भी प्राप्त कर सकता है जैसे बन्दर, रीछ आदि नृत्य कर सकते हैं तोता सूचना तथा कौशल के आधार पर मनुष्य के बोले वाक्य दुहरा सकता है, परन्तु केवल मनुष्य ही इन दोनो से ऊपर उठकर उनमें आपसी अर्न्तसम्बन्ध स्थापित कर ज्ञान प्राप्त कर सकता है ।

शिक्षा क्या है ? क्या हम जानते हैं ? स्कूल इस दिशा मे क्या कर रहे हैं ?

❐ राजेन्द्र पाल सिंह

शिक्षा, शिक्षक और समाज

❒ डा. नवल किशोर अम्बष्ट
❒ डा. ओमप्रकाश सिंह

शिक्षा एक ऐसी सामाजिक प्रक्रिया है जो व्यक्ति के जीवन मे सतत रूप से गतिशील रहती है । अपने पूरे जीवनकाल में व्यक्ति लगातार कुछ न कुछ सीखता ही रहता है । शिक्षा ही एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से व्यक्ति का सम्यक विकास होता है । सम्यक विकास शब्द का प्रयोग जानबूझ कर इस आशय से किया गया है कि शिक्षा के अन्तर्गत वे मानवीय क्रियाए भी आती हैं जो व्यक्ति के विकास से संबंधित होती हैं । ये क्रियायें शारीरिक भी हो सकती हैं और मानसिक भी । निश्चय ही व्यक्तित्व के विकास मे इनका योगदान होता है, अतः ये शिक्षा के अंतर्गत ही परिणित की जाती है । कहना न होगा कि व्यक्ति का जीवन क्रियाशील है । वह आजीवन अनेक प्रकार की क्रियाओ के द्वारा अनेक प्रकार का अनुभव प्राप्त करता रहता है । इन अनुभवो से समय–समय पर व्यक्ति का व्यवहार भी परिवर्तित होता रहता है । इस तरह इन अनुभवो का शिक्षा के क्षेत्र में एक विशिष्ट स्थान हो जाता है ।

शिक्षा समाज की अपरिहार्य आवश्यकता है । मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और वह समाज मे ही रहकर अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करता है । समाज मे रहने या जीवन व्यतीत करने के लिए मनुष्य को कुछ निश्चित शक्तियों की आवश्यकता पड़ती है । इन्हीं शक्तियों के माध्यम से वह समाज के साथ सामंजस्य स्थापित कर पाता है । अतएव इन शक्तियो का विकास भी अति आवश्यक है । वैसे तो मनुष्य जीवन की प्राराभिक अवस्था से अंतिम अवस्था तक शिक्षा प्राप्त करता रहता है । जीवन मे अनेक व्यवहारो, घटनाओ और सम्पर्कों से उसे शिक्षा मिलती ही रहती है पर इसके बावजूद भी एक ऐसे विशिष्ट स्थान की आवश्यकता समझी जाती है जहॉ पर व्यक्ति को निश्चित समय तक व्यवस्थित शिक्षा प्रदान की जा सके । समाज ने इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए विद्यालय की स्थापना की । किमी देश, राष्ट्र अथवा समाज की उन्नति शिक्षा से होती है और शिक्षा देने का गुरुतर दायित्व विद्यालयो के ऊपर है । इन्हीं विद्यालयों से शिक्षा प्राप्त करके बालक अपने आय को भविष्य के लिए तैयार करता है ।

ऊपर यह स्पष्ट किया गया है कि शिक्षा की आवश्यकता की पूर्ति के लिए समाज विद्यालय की स्थापना करता है । साथ ही साथ यह भी ध्रुव सत्य है कि समाज में कोई विद्यालय या इस प्रकार की अन्य कोई दूसरी सस्था हो न हो पर बच्चा लगातार कुछ न कुछ सीखता ही रहता है । यही थोड़ी देर रुककर यह विचार कर लेना प्रासंगिक होगा कि विद्यालय के बाहर वह कैसे और कहॉ से सीखता है ? वास्तविकता यह है कि बच्चा समाज से या दूसरे शब्दों में कहे तो वह अपने परिवेश से हमेशा अनेक तरह का अनुभव प्राप्त करता रहता है और फिर इन अनुभवो की मदद से वह जाने–अनजाने अनेक बातें भी सीखता रहता है । यह परिवेश किसी

भी प्रकार का हो सकता है– सामाजिक, भौतिक या प्राकृतिक कोई भी । इस प्रकार हम देखते हैं कि विद्यालय के बाहर अनेकानेक प्रकार से बच्चा तमाम नई–नई जानकारी पाता है और उन्हे सीखता भी है ।

समाज मे शिक्षा प्रदान करने के लिए विद्यालय या जिन अन्य संस्थाओं की स्थापना की जाती है उनके क्रिया–कलापों और वास्तविकता पर विचार करना भी सभीचीन होगा । वर्तमान समय की स्थिति यह है कि शिक्षा के लिए स्थापित ये संस्थाये अपने परम्परागत और रुढ़िवादी स्वरूप के कारण बच्चो मे अपेक्षित कौशलों और उनके व्यक्तित्व का सम्यक विकास करने में असमर्थ हैं । ऐसे कौन से कारण हैं जो इन सस्थाओं को लक्ष्य की संम्प्राप्ति मे बाधा पहुचा रहे हैं, इन पर विचार करना और इन्हे दूर करने के लिए आवश्यक कदम उठाना आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है । इन कारणो के तलाश क्रम में हमें सबसे पहले इन सस्थाओ की भूमिका पर विचार करना आवश्यक होगा । इन संस्थाओं की भूमिका दोहरी है । एक तरफ तो ये शिक्षा के केन्द्र के रूप में कार्यरत हैं पर दूसरी ओर इनका एक और अति महत्त्वपूर्ण कार्य है– आगामी पीढ़ी को सांस्कृतिक विरासत और मूल्यो की सही–सही जानकारी देना । केवल जानकारी ही नहीं बल्कि शिक्षार्थियों को संस्कृति और मूल्यो के अनुरूप ढालना । यह कार्य कुछ अधिक जटिल और पेचीदा है क्योंकि सीधे–सीधे पीढ़ी दर पीढ़ी से चली आ रही सामाजिक संस्कृति और मूल्यो से आगामी पीढ़ी को परिचित कराना पड़ता है और उनका ऐसा मानसिक–व्यावाहारिक विकास करना पड़ता है कि वे अपने दैनिक जीवन मे उनसे तारतम्य भी स्थापित कर सके । इस प्रकार हम देखते हैं कि विद्यालयो के ऊपर सास्कृतिक विरासत और मूल्यो की शिक्षा का भी गुरुतर दायित्व है ।

चूंकि शिक्षा और समाज परस्पर अभिन्न रूप से सबंद्ध हैं और शिक्षा की परिकल्पना ही समाज के निमित्त है, इसलिए यह आवश्यक है कि शिक्षा समाज की आवश्यकताओं पर सम्यक प्रकाश डाले । समाज की आवश्यकता और शिक्षा का संबध जैसा प्रश्न उठते ही हमारी शिक्षा–व्यवस्था पर प्रश्नचिन्ह लग जाता है और यह अपने विषयगत स्वरूप से बिल्कुल अलग–थलग दिखाई देने लगती है । अलग–अलग समाज की आवश्यकताएं कभी भी समान नहीं हो सकतीं । इनके अनुभव, आवश्यकताएँ, स्वरूप, मूल्य आदि सभी चीजो मे विभेद अवश्य होता है । इस तथ्य को ग्रामीण और शहरी समाज के माध्यम से सही–सही रूपों मे देखा और समझा जा सकता है । शहरी समाज का ढाँचा और उसकी आवश्यकताएँ एक प्रकार की हैं तो ग्रामीण समाज का ढाँचा और उसकी आवश्यकताए एकदम दूसरे प्रकार की । इतना ही नहीं इनके अनुभव भी अलग–अलग तरह के होते हैं । उच्चारण के स्तर पर भी दो समाजो मे स्पष्ट भेद देखा–सुना जा सकता है । एक समाज के लिए जो मूल्य सकारात्मक हैं बहुत सभव है दूसरे समाज के लिए वही मूल्य नकारात्मक हो । इस प्रकार यदि इन दोनों समाजो के लिए एक ही प्रकार की शिक्षा–व्यवस्था की जाती है तो उपयोगी और लाभकारी नहीं होगी । सामाजिक सरचना का ध्यान रखते हुए हमे शिक्षा के स्वरूप पर एक बार पुनः रुककर विचार करना होगा और यह निर्धारित करना होगा कि इस शिक्षा–पद्धति के माध्यम से हम जिस समाज के बच्चो को शिक्षित (?) करने जा रहे हैं, यह पद्धति उनके लिए कितनी लाभकारी होगी ? क्या हमारी शिक्षा–व्यवस्था ऐसी है कि अलग–अलग समाजों की सामाजिक पृष्ठभूमि के साथ अपना तालमेल स्थापित कर सके ? अगर ऐसा नहीं है तो हमे क्या करना पड़ेगा ? इस प्रकार शिक्षा–व्यवस्था पर नए सिरे से सोचना आजकी सबसे बड़ी आश्यकता है ।

हमारी आधुनिक शिक्षा–व्यवस्था के कुछ निश्चित मूल्य निर्धारित हैं । गौर से देखा जाए तो ग्रामीण जगत के कृषि प्रधान समाज मे आज की शिक्षा–व्यवस्था द्वारा निर्धारित मूल्य उपयोगी दिखाई नहीं देते । हमे इन मूल्यो पर पुनः विचार करना पड़ेगा । अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए हम दो उदाहरण लेते हैं । सर्वप्रथम 'श्रम की महत्ता' के मूल्य को ही लीजिए । ग्रामीण अचलो के समाज के लिए यह एक सकारात्मक मूल्य हैं । वहाँ का हर व्यक्ति श्रम की महत्ता से किसी न किसी रूप मे भिज्ञ है । स्वतँ कार्य करने की प्रवृत्ति उनके अन्दर विद्यमान है और शारीरिक श्रम करना उनकी दृष्टि में हेय नही है । इसके विपरीत हमारी शिक्षा व्यवस्था में मानसिक श्रम के विकास पर इतना अधिक बल दिया जाता है कि शारीरिक श्रम का विकास अपने आप गौण हो जाता है । हम पूरी कोशिश करके बच्चो का केवल मानसिक विकास ही करते हैं जिसके परिणामस्वरूप 'श्रम की महत्ता' के मूल्य का नकारात्मक पक्ष ही अधिक उभर कर सामने आता है, इसी तरह सहभागिता की भावना वाले मूल्य को भी देखा जा सकता है । हम लाख सहभागिता या सहयोग के मूल्य के विकास को चिल्लाते रहे पर हमारी शिक्षा व्यवस्था बच्चों मे व्यक्तिगत भावना या प्रतिस्पर्द्धा की भावना ही विकसित करती है । 'हम' की जगह 'मैं' का ही विकास हो रहा है और बालक अधिकाधिक मात्रा में स्वकेन्द्रित होता जा रहा है । इसे आप पढ़ना–लिखना सिखाने से लेकर मूल्याकन तक की प्रक्रिया में भलीभाति देख सकते हैं ।

पुनः यदि हम शिक्षा के सामाजिक स्वरूप का परीक्षण करें या इसकी आवश्यकता पर विचार करे तो पाएंगे कि सामाजिक विकास के लिए शिक्षा एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण माध्यम है । इस प्रकार ग्रामीण आंचलों के या उसके अलावा भी समाज का समुचित विकास करना शिक्षा का मुख्य लक्ष्य है । यह एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में परिलक्षित होता है । यह एक निश्चित तथ्य है कि शिक्षा एक सामाजिक तत्व है, क्योकि यह किसी क्षेत्र के समाज विशेष के लोगो के लिए ही है और उन्ही लोगो के बीच से निःसृत होती है । शिक्षा की प्रकृति, स्वरूप, विषय, उद्देश्य आदि अलग–अलग समाज के लिए अलग–अलग या उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप होता है । इसीलिए शिक्षा का मूल ढाचा भी अलग–अलग समाज के लिए अलग–अलग होना चाहिए । सामाजिक विकास का एक महत्वपूर्ण माध्यम होने के कारण यह आवश्य है कि शिक्षा समाज के विकास को सही सही प्रतिबिम्बित करे । यहाँ पर पुन इस बात को दुहराना आवश्यक है कि विशेषकर शैक्षिक रूप से पिछले हुए ग्रामीण इलाके के लोगो का सम्पर्क विकास करना ही शिक्षा का मुख्य उद्देश्य और कार्य है । इस समय हमारे सामने मुख्य प्रश्न यह है कि ग्रामीण क्षेत्रो मे सामुदायिक विकास के लिए शिक्षा को किस प्रकार गतिशील बनाया जाय ।

प्रायः यह देखा गया है कि शिक्षा प्रदान करना मुख्य रूप से विद्यालय की जिम्मेदारी है और विद्यालयो की स्थिति यह है कि वे समाज की आवश्यकताओ से बिलकुल ही अलग हटकर कार्य कर रहे हैं । समाज की क्या आवश्यकता है और हमे किस प्रकार की शिक्षा देकर इन आवश्यकताओं की पूर्ति करनी है, इस दिशा मे विद्यालयों के कार्य एकदम सतोषप्रद नही हैं । विद्यालय से शिक्षा प्राप्त करने वाले बच्चों मे केवल लिखने, पढ़ने और गिनने (3R) की कुशलताओ का ही विकास हो पर रहा है । शिक्षा के क्षेत्र में विद्यालय शायद ही कभी समाज विशेष के साथ जुड़ता हो । बच्चो को जो शिक्षा दी जा रही है वह समाज के लिए उपयोगी है या नहीं इस स्तर पर तो विद्यालय समाज से बिलकुल ही तारतम्य नही स्थापित कर पा रहा है । ऐसा क्यो हो रहा है ? इसके मूल मे जाकर ही इस

समस्या का समाधान मिल सकता है । आइए देखे कि शिक्षा और समाज अपना आपसी सबध क्यों नहीं बना पा रहे हैं–

हमारे यहाँ एक ही प्रकार का पाठ्यक्रम ग्रामीण और शहरी दोनो समाजो के लिए लागू किया गया है । यह उचित ही नहीं है । ग्रामीण और शहरी–ही नही बल्कि हमें विविध समाजों की सामाजिक आवश्यकता और पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम बनाना पड़ेगा । पाठ्यक्रम निर्माण के समय ग्रामीण समाज और जनजातियो की सामाजिक व्यवस्था पर विशेष रूप से ध्यान देना पड़ेगा ।

पाठ्यक्रम निर्माण की प्रक्रिया हमारे यहाँ एक निश्चित ढर्रे पर चली आ रही है । इस प्रक्रिया में उस समाज का सदस्य कभी भी शामिल नहीं किया जाता, जिस समाज के लोगों के लिए पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाता है । पाठ्यक्रम निर्माण की जिम्मेदारी केवल विशेषज्ञ शिक्षाविदो के ऊपर है । शिक्षाविद या विशेषज्ञ यह निश्चित करता है कि किसी समाजविशेष के लिए क्या अच्छा है और क्या बुरा । इस संबंध मे उसका निर्णय अंतिम माना जाता है । बच्चों को वह जिन सामाजिक मूल्यो या सांस्कृतिक विरासत की शिक्षा देने की संस्तुति कर रहा है या उसके लिए पाठ्यक्रम बना रहा है वह उस समाज के लिए प्रासंगिक होगा या नहीं, हम इस पर विचार नहीं करते । उसके बताये हुए मार्ग पर आंखें बंदकर चलना पड़ता है, भले ही यह मार्ग विपरीत हो या विवादास्पद ।

विद्यालय का कार्यक्षेत्र भी सीमित है । विद्यालय का मुख्य कार्य निर्धारित पाठ्यपुस्तको को निर्धारित समय के अंतर्गत पढ़ाकर समाप्त करना होता है । शिक्षक भी पढ़ाते समय इस बात पर ध्यान नहीं देते कि जो कुछ वह पढ़ा रहे हैं या बच्चों को सिखा रहे हैं वह समाज के लिए उपयोगी है या नहीं ? समाज विशेष को ध्यान मे रखकर पाठ्यक्रम तैयार करने और तदनुरूप शिक्षा प्रदान करने की बात कौन कहे, विद्यालयो मे तो इस पर भी ध्यान नहीं दिया जा रहा कि पाठ्यक्रम मे निर्धारित जिन मूल्यो, क्षमताओ और आदतों का विकास करना है, उनका विकास शिक्षा के माध्यम से बच्चो में हो रहा है अथवा नहीं ? शिक्षा का मुख्य कार्य हो गया है पाठ्यपुस्तकों मे लिखी गई बातों को येन केन प्रकारेण बच्चो को सिखा देना । यही मुख्य कारण है, जिससे बच्चो के व्यक्तित्व का सपूर्ण विकास नहीं हो रहा है । उपरिलिखित बाते यद्यपि सभी क्षेत्रो पर समान रूप से लागू होती हैं पर ग्रामीण क्षेत्रो के लिए यह बहुत ही ध्यातव्य तथ्य है । ग्रामीण क्षेत्रो मे जो बच्चे विद्यालय जाते हैं उनमे से अधिकतर ऐसे होते हैं जो अपने परिवार मे पहली बार शिक्षा प्राप्त कर रहे होते हैं । अर्थात विद्यालय जाने वाली यह पहली पीढ़ी है । विद्यालय में उन्हे जो पढ़ाया जा रहा है या सिखाया जा रहा है, इस सबध मे परिवार का कोई भी सदस्य उनकी मदद नही कर सकता । घर–परिवार या समाज से उन्हे इस क्षेत्र मे कोई भी शैक्षिक सहयोग मिलने की सभावना बिलकुल नही होती । इस स्थिति मे, दोनो तरफ से उचित मार्गदर्शन न मिलने के कारण उनका उचित विकास नहीं हो पाता ।

वर्तमान शिक्षा की जो व्यवस्था है यदि इसके माध्यम से कोई ग्रामीण बालक शिक्षा पाए और उसके अनुरूप अपने व्यक्तित्व का विकास भी कर ले तो निश्चय ही वह अपने समाज से सामजस्य स्थापित नहीं कर पाएगा । उसने जो शिक्षा प्राप्त की है वह उसकी आवश्यकताओ या उसके समाज की आश्यकताओं के अनुरूप नहीं है । ऊपर विस्तार से यह स्पष्ट किया गया है कि शिक्षा समाज विशेष की आवश्यकताओं के अनुरूप होनी चाहिए । और यहाँ

हम देख रहे हैं कि ग्रामीण बच्चा जो शिक्षा पा रहा है वह उसकी अपनी आवश्यकता के नजदीक न होकर उस समाज की आवश्यकता के नजदीक है जिस समाज मे विद्यालय अवस्थित है । इन सब बातों से जो निष्कर्ष निकलता है उसके आधार पर यह दृढ़तापूर्वक कहा जा सकता है कि हमे पाठ्यक्रम का निर्माण स्थानीय आवश्यकताओ और मूल्यो के साथ जोड़कर करना चाहिए । हमारा पाठ्यक्रम समाज विशेष से जितना ही नजदीक होगा शिक्षा उतनी ही सहज और प्रभावी होगी । साथ ही साथ हमें विद्यालयी पाठ्यक्रम में पर्याप्त और उचित लचीलापन भी लाना होगा जिससे स्थानीय आवश्यकताओ और परिस्थितियों का समावेश हो सके । अब यह अति आवश्यक हो गया है कि शिक्षा का स्रोत स्थानीय समाज की आवश्यकताओ के माध्यम से ही निकाला जाय । जब तक हम स्थानीय समाज की आवश्यकताओ का ध्यान रखते हुए शिक्षा पद्धति विकसित नहीं कर लेंगे तब तक शिक्षा के प्रति समाज की आस्था पैदा करने मे असफल रहेंगे । हमें समाज विशेष की आवश्यकताओ को जान–समझकर, पहचानकर उसके आधार पर अपनी शिक्षा प्रणाली विकसित करनी पड़ेगी ।

समाज और खासकर ग्रामीण समाज के लोगो की आस्था शिक्षा के प्रति कैसे जागृत हो, यह भी एक विचारणीय प्रश्न होगा । हमारे विचार से शिक्षा के प्रति लोगो की आस्था जागृत करने के लिए समाज का विकास एक महत्वपूर्ण पक्ष होगा । सब का विकास यदि शिक्षा के माध्यम से वहाँ के निवासियो को परिलक्षित हो तो निश्चय ही शिक्षा के प्रति उनकी आस्था जागृत हेगी । ग्रामीण इलाकों मे विद्यालय ही एक ऐसी सस्था है जो समाज के समग्र विकास के लिए कार्य कर सकती है । विद्यालय के माध्यम से ही ग्रामीण क्षेत्र के लोग अनेक कल्याणकारी क्रिया कलापो से परिचित हो सकते हैं । सामाजिक विकास के क्षेत्र में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान होता है यदि शिक्षाविद शिक्षा के इस महत्वपूर्ण स्थान और इसके करण उत्पन्न हुई अति महत्वपूर्ण जिम्मेदारी को समझे तो निश्चय ही समाज का कल्याण होगा और समाज की आस्था भी शिक्षा के प्रति जागृत होगी ।

विद्यालय में पढ़ाने वाला शिक्षक मात्र शिक्षक की ही भूमिका का निर्वाह नहीं करता बल्कि वह उस विद्यालय मे आने वाले बच्चो के लिए एक आदर्श व्यक्ति की भूमिका का भी निर्वाह करता है । शिक्षक के व्यक्तित्व और उसके क्रियाकलापो का प्रभाव बच्चो के मानस पटल पर गहराई से पड़ता है और स्थायी स्थान भी बना लेता है । बच्चे जब खेल–खेल में, किसी छोटे अभिनय आदि मे व्यस्त हों, उस समय यदि आप उनके क्रियाकलापों का सूक्ष्म विश्लेषण करे तो पाएगे कि अनेक व्यवहारिक बातों मे बच्चे शिक्षक के व्यवहार और क्रियाकलापो का अनुकरण करते हैं । इसी भावना के विकसित क्रम मे दूसरा उदाहरण भी देख सकते हैं– कभी–कभी बच्चे शिक्षक के हस्ताक्षर का भी अनुकरण करते हुए दिखाई पड़ते हैं । यह सब क्या है और इन क्रियाकलापो से क्या परिलक्षित हो रहा है ? इन सबसे हमें यह स्पष्ट सकेत मिल रहा है कि शिक्षक के व्यवहार का अमिट प्रभाव बच्चे के मस्तिष्क पर पड़ता है । बच्चो का मस्तिष्क अविकसित अवस्था मे होता है और उस समय जिन बातो का असर उनके मस्तिष्क पर पड़ता है, वे स्थायी हो जाती हैं । शिक्षक के व्यवहार का अनुकरण उसके सैंकड़ो छात्र सदैव किया करते हैं । इसलिए यदि शिक्षक स्वयं को सामाजिक क्रियाकलापो से अलग–थलग कर लेता है या उसमें हिस्सा नही लेता या सामाजिक क्रियाकलापों, अनुभवो आदि पर अपने शिक्षण कार्य को आधारित नहीं करता तो इसका परिणाम बहुत ही दूरगामी होगा । उसके विद्यालय से जितने भी छात्र

शिक्षा ग्रहण कर निकलेगे उनका विकास गैर सामाजिक नागरिक के रूप मे ही होगा । गैर सामाजिक इस सदर्भ मे कि वे समाज की आवश्यकता, रीतिरिवाज, कठिनाइयाँ आदि से पूर्णतय अपरिचित ही रह जाएगे । किसी भी प्रकार से यदि शिक्षा और समाज का अर्न्तसंबध स्थापित नहीं हो पाता तो उसका सीधा असर छात्रों के विकास पर पड़ेगा और उनका जिस रूप मे विकास होगा वह समाज के लिए कल्याणकारी नहीं होगा । इस प्रकार यहाँ पर शिक्षक की भूमिका अत्यत ही महत्वपूर्ण हो जाती है । उसे *केवल शिक्षक की ही भूमिका का निर्वाह नहीं करना* है बल्कि एक साथ ही शिक्षक, सामाजिक कार्यकर्त्ता और समाज के अगुआ की भूमिका का निर्वाह भी करना है । यही एक ऐसा स्थल है जहाँ पर शिक्षक से बहुत अधिक सावधानी अपेक्षित है ।

भारतीय समाज में और खासकर भारतीय ग्रामीण समाज मे शिक्षक की भूमिका अनेक रूपो मे महत्वपूर्ण है । उसकी भूमिका के महत्व का आकलन हम ऊपर की पंक्तियो मे कर चुके हैं । कुछ अन्य दृष्टिकोण से भी ग्रामीण समाज मे शिक्षक की भूमिका का महत्वपूर्ण स्थान होता है । इस पक्ष पर भी संक्षेप मे चर्चा करना आवश्यक है । भारतीय समाज में शिक्षक को अत्यत आदर पूर्ण स्थान प्राप्त होता है । वह केवल उनके लड़के–लड़कियो का शिक्षक ही नहीं है बल्कि इसके अतिरिक्त और भी कुछ है । ग्रामीण समाज में अक्सर शिक्षक ही एक मात्र पढ़ा–लिखा व्यक्ति होता है । गाव या समाज के लोगों को अनेक अवसरो पर उससे सलाह–मशविरे की आवश्यकता पड़ती है । गांव के बड़े–बुजुर्ग भी उसकी राय के आकाक्षी होते हैं, क्योकि वह शिक्षित है । इस प्रकार वह गांव या समाज की महत्वपूर्ण भूमिका होती है । उसकी यही भूमिका ऐसी है जिसके माध्यम से वह अनेक अपेक्षित कार्यो को आसानी से संपन्न कर सकता है । वह अपनी इस जिम्मेदारी के प्रति सचेत रहकर और अपनी भूमिका का उचित निर्वाह कर गांव के विकास के लिए अनेक महत्वपूर्ण कार्य कर सकता है । यहीं पर वह लोगो को शिक्षा के प्रति आस्थावान बना सकता है और अभिभावको को भी इस बात के लिए प्रेरित कर सकता है कि समाज के पूर्ण विकास के लिए वे अपने बच्चो को शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से विद्यालय अवश्य भेंजे ।

सामाजिक विकास के अनेक क्षेत्रो मे अध्यापक भी भूमिका समाज और सबंधित विभाग के बीच सर्म्पक व्यक्ति की भूमिका होती है । गाव या समाज के पूर्ण विकास के लिए वह स्वास्थ्य, कृषि, बचत, सफाई आदि की पूर्ण जानकारी गाव के लोगों को दे सकता है और साथ ही साथ गाव या समाज के लोगों तथा संबधित विभाग के लोगों के बीच संपर्क अधिकारी का भी कार्य कर सकता है । इस तरह उसके थोड़े से प्रयास से समाज के लोग विकासात्मक क्रियाकलापों से भलीभांति परिचित हो सकते हैं । वास्तविकता यह है कि ग्रामीण समाज मे शिक्षक के ऊपर समाज का पूर्ण विश्वास होता है और यदि वह उनके विश्वास के प्रति सतर्क रहकर कार्य करता है तो यह भी दावे के साथ कहा जा सकता है कि गांव स्तर पर कार्य करने वाला शिक्षक ही एक मात्र ऐसा व्यक्ति है जो समाज की आवश्यकताओं से बखूबी परिचित होता है । वह केवल शिक्षा के क्षेत्र मे गाव वालों की क्या आवश्यकता है इतना ही नही जानता वरन अनेक क्षेत्रों मे गाव की क्या आवश्यकता है इससे भी परिचित रहता है । शिक्षक की इस भूमिका को देखते हुए आवश्यक हो जाता है कि जब कभी भी शिक्षा के क्षेत्र मे या अन्य किसी भी विकासात्मक क्षेत्र में योजनाये तैयार की जा रही हो तो प्रखण्ड स्र पर उनका सहयोग अवश्यय लिया जाय, यह दोनो तरफ से लाभकारी होगा । समाज विशेष की आवश्यकताओं का आकलन करने के लिए शिक्षक का सहयोग बहुत आवश्यक है ।

ग्रामीण समाज के बच्चो को शिक्षा प्रदान करने के लिए आवश्यक है कि हम शिक्षा को कक्षा के अंदर से कक्षा के बाहर ले आएं। कक्षा मे बैठाकर केवल पढ़ा देने या सिखा देने से ही हम अपनी जिम्मेदारियों से मुक्त नहीं हो जाते। हमें शिक्षा को कार्यकलापो से जोड़कर उसी के माध्यम से शिक्षण प्रदान करना पड़ेगा। कार्यकलापो के माध्यम से शिक्षा देते समय भी इस बात पर विशेष ध्यान देना पड़ेगा कि जिस समाज विशेष के छात्रों को अभ्यास कराया जा रहा है उनके लिए कौन-कौन से क्रिया कलाप उपयुक्त होंगे और कौन-कौन से नहीं। ऐसे कार्यों को माध्यम बनाकर कभी भी शिक्षा नहीं दी जा सकती जिन कार्यों से उस समाज के छात्रो का सम्बन्ध ही न हो। इस पूरे प्रसंग के माध्यम से हम क्या चाहते है ? अत्यंत सक्षेप में कहे तो हम केवल यह चाहते हैं कि भावनात्मक स्तर पर किसी भी तरह शिक्षक, विद्यालय और समाज का जुड़ना अनिवार्य है। यही एक ऐसा पथ है जिसका सधान कर हम अपने गंतव्य पर पहुँच सकते हैं। साथ ही साथ शिक्षा के प्रति समाज की आस्था भी उत्पन्न कर सकते हैं। □□

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद,
नई दिल्ली
भारती भाषा केन्द्र,
जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली

शिक्षा और शिक्षक की भूमिका

❐ रमेश चन्द्र पारीक

सच्ची शिक्षा वह है जो बालकों को सुसंस्कारित करे, उनका चरत्रि उन्नयन करे, उनमे शारीरिक सौष्ठव बढ़ाए, उनमे मानसिक प्रगाढ़ता को विकसित करे, उनमें सेवा की भावना को विकसित करे, उनका भावात्मक एव संवेगात्मक स्तर बढ़ाए अर्थात नन्हे मुन्नों का सर्वागीण विकास करे । उन्हें सुसभ्य नागरिक बनने की राह प्रशस्त करे, उन्हे सद् और सत् के मार्ग पर बढ़ने की अभिप्रेरणा प्रदान करे, सीखने की अभिरूचि जाग्रत करे, उन्हे विनय और शील का पाठ सीखिए, उन्हे निष्ठावान व कर्मशील बनाए । सच्ची शिक्षा बालको को मनसा वाचा कर्मणा आदर्श बनाती है, कर्मठ व निष्ठावान बनाती है कुशलता व निपुणता लाती है । उनमे आत्मानुशासन व स्वावलंबन का भाव जगाती है । देश के भावी कर्णधारों को समय की धारा व युग की आवश्यकतानुसार संबल प्रदान करती है । उन्हें आत्मनिर्भर स्थान व प्रतिष्ठा दिलाती है । बालकों में देश प्रेम व विश्व की मंगलेच्छा को जागृत रखती है ।

छात्रों को सद्व्यवहार व सुसस्कार सिखाने की महत्वपूर्ण कर्मस्थली है पाठशाला एक विद्यालय ही बालकों मे शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक, भावात्मक उन्नयन का सबसे उत्तम प्रशिक्षण केन्द्र होता है जहाँ शिक्षक की भूमिका पद, प्रस्थिति सीधे-सीधे प्रभावित करती है । शिक्षा का मूल ध्येय होता है प्राथमिक स्तर से ही बच्चों के ज्ञान, समझ, अभिरूचि, कौशल, अनुभव में वृद्धि करना । एक सुविज्ञ शिक्षक बालको मे चहुंमुखी विकास के लिए अवधारणाएँ, कौशल तथा सुयोग्यताएँ विकसित करने का प्रयास करता है । वह बालकों को स्वतंत्र व आनंदमय वातावरण प्रदान करता है, उनमें आत्मविश्वास, निडरता, सहनशीलता आदि जीवन मूल्यों को विकसित करता है तथा नैतिक मूल्यो को बालको के जीवन मे धीरे-2 संवारता उतारता है । छोटे बालक महान चिंतक नहीं होते है किन्तु वे अति संवेदनशील प्रकृति के अवश्य होते है, उन्हे प्यार व प्रताड़ना तुरत फुरत प्रभावित करती है । कई अटपटी बाते व घटनाए उनके कोमल ह्रदय पर कुठाराघात कर सकती है तो स्नेहित भावाचल की मधुरिम बौछार उन्हे खिलता हुआ सुमन का रूप दे सकती है । प्राथमिक स्तर पर ही बालक बहुत सी महत्वपूर्ण जीवनोपयोगी आदते सीखता है इसलिए हरेक शिक्षक का यह पुनीत दायित्व बन जाता है कि वे बालक के कौशलात्मक विकास व अभिवृति को सहज ढग से विकसित करे तथा उन्हें समाज मे प्रभावशाली स्थान प्राप्त करने में जी तोड़ सहायता प्रदान करे ।

अधिकांश शिक्षण वार्तालाप पर निर्भर करता है । हरेक शिक्षक यह अच्छी तरह जानता है कि बालक जब सीखने के इच्छुक हो तभी कुछ सीखता है, वह जोर जबर्दस्ती से कभी नही सीखेगा । हमे थ्री आर (रीड राइट रिमेबर) को नहीं भूलना चाहिए किन्तु सशोधित सभी शिक्षण विधियो को भी अमल करना चाहिए । हमें हर समय हसमुख व प्रसन्नमुद्रा मे रहना चाहिए, हमे संवेदेनशील व सहानूभूमि रखनी

चाहिए । हमे सुस्ती व आलस से कोसों दूर रहकर चुस्त व स्मार्ट रहना चाहिए । हमे बालको के समक्ष अच्छा व्यवहार करना चाहिए । हमें शिक्षा मनोविज्ञान को ध्यान मे रखते हुए बालको के साथ मित्रवत आचरण करना चाहिए । हमे बालको मे पायी जाने वाली कमियों, गलतियो व अज्ञानता को तलाश करके दूर करना चाहिए । हमें बुद्धिमान, समझदार व हाजिर जवाब रहना चाहिए । स्थिति व परिस्थिति को समझकर तत्पर निर्णय क्षमता होनी चाहिए । व्यवस्था व परिस्थिति को जानने समझने मे तत्परता रखनी चाहिए । यदि प्रत्येक शिक्षक कक्षा मे ऐसा ही करेंगे तो कक्षा निर्माण भी उत्तम रहेगा और बालक भी पूरे कालश जिज्ञासु, सतर्क व चुस्त रहेगे । ऐसा करके हम शिक्षा प्रक्रिया से सक्रिय दोस्ती बनाए रख सकेंगे ।

एक सुविज्ञ शिक्षक यह जानता है कि बालक जब स्कूल में प्रवेश लेता है तो उसके मस्तिष्क में जो कल्पना व अवधारणा है उसे समृद्ध छेनी से कुशलता से तराशना चाहिए, उसे सुसंस्कातिर हथौड़ी से सजीव व शिष्ट आकार देना चाहिए । प्रत्येक बालक के ज्ञान तथा चरित्र का विकास शिक्षक के अपने व्यवहार व कार्य प्रणाली से प्रतिबिंबिल व प्रभावित होता है । प्रत्येक समाज में शिक्षक की भूमिका व प्रस्थिति सम्मानीय होती है । विद्यालय मे उसका आचार–विचार, व्यवहार शिष्ट होना चाहिए । छात्रों साथियो व अभिभावको के प्रति बातचीत का ढंग प्रभावोत्पादक होना चाहिए । रहन–सहन का सलीका, अदब के लफ्ज व तौर तरीके शिष्ट होने चाहिएं । भाषा–बोली व वेश भी बालकों को प्रतिपल प्रभावित करते है ।

हरेक को संवेदनशील होना चाहिए । उसे अपनी शक्ति व रूचि भावी पीढी को संवारने मे बेझिझक लगानी चाहिए । एक अच्छा शिक्षक यह साबित कर देता है कि स्कूल मनोरंजन का पवित्र स्थान है, सीखने की एक सुंदर रगशाला व उत्तम प्रणाली है । जीवन मूल्यों को साकार करने का एक सुगम माध्यम है । वह बालको को पितृत्व जैसा प्यार देता है तथा सभी परिस्थितिया व भावी विपतियों से जूझने की शक्ति व संबल देता है एक जीवंत प्रेरण देता है । वह अपने विषय का विशद ज्ञान भी देता है तथा छात्रो को स्वयं सीखने के योग्य बनाता है । उनके मस्तिष्क एवं तार्किक चिंतन को बढ़ाता है, बालकों को हाजिर जवाब व चुस्त बनने का प्रशिक्षण देता है ।

शिक्षक को प्रभावशाली कार्य व व्यवहार की अच्छी आदतें विकसित करनी चाहिए । उसे अध्यव्यवसायी बने रहना चाहिए, उसमे आत्मानुशासन व शब्दानुशासन पर नियत्रण होना चाहिए । उसे शारीरिक एवं मानसिक रूप से दक्ष व स्वस्थ होना चाहिए । मानव मूल्यों का आदर व प्रशंसा करना तथा सामूहिक कार्य–प्रणाली में सहयोग देने की तमन्ना व योग्यता विकसित करनी चाहिए । उसे आत्म संप्रेषण की कला का पूर्ण योगदान देना चाहिए । उसे ध्वनि व उच्चारण शुद्धता पर ध्यान रखना चाहिए । निस्पक्ष व स्वतंत्र अभिव्यक्ति को बल मिलना चाहिए ।

शिक्षा जिंदगी को सवारती है उसे सार्थकता, सुघड़ता प्रदान करती है, समय की कीमत बढाती है, व्यक्ति की प्रतिष्ठा मे वृद्धि करती है । शिक्षा संस्कारो का अतरण व संचरण पीढ़ी दर पीढ़ी करती है, पशु से मानव बनाती है, असभ्य से सभ्य बनाती है । कोई भी साक्षर व्यक्ति चाहे दफ्तर मे कलम घिसने का उद्यम करे या खेत मे हल चलाए या कारखाने मे पसीना बहाए, शिक्षा हर स्तर पर उसे सबल प्रदान करती है, हौसला बुलंद रखती है, जीवन को हर्षोल्लास के संग गुजारने की एक प्रतिबद्ध पहल कायम रखती है । आज समय सोचने, विचारने, समझने व करने का है । जो कार्य हमे विद्यालय मे पूरी निष्ठा व ईमानदारी से करना चाहिए उसे हम करते है या उसके साथ सौतेला व्यवहार करते है या

उसी कार्य को घर पर करने की साजिश करते है । इससे समाज में हमारी प्रतिष्ठा व मार्यदा दांव पर लग जाती है ।

अच्छी शिक्षा वही है जो निरक्षर को साक्षर बनाए, प्रेम के अढ़ाई आखर सिखलायें, मिलजुल कर रहने की आदत डाले, अंधकार से प्रकाश की ओर राह दिखाए अन्तर्मन में छायी धुंडियों के बधन खोलकर विनय व शील बनाए । शिक्षा निरंतर चलने वाली एक सशक्त प्रक्रिया है जो जन्म से मृत्यु पर्यन्त साथ निभाती है । प्रतिपल कुछ करने, समझने का अहसास कराती है । यह काबलियत बढ़ाती है, संवेगात्मक विकास करती है । शिक्षा जिंदगी के हरेक क्षण को सरस भावचल मे गुजरने का सुन्दर नगमा है, खुशहाली की निर्मल धारा में स्वर गुनगुनाने की अमूल्य घड़ी है । शिक्षा हमें मेहनती, आत्मनिर्भर काबिल बनाती है ।

शिक्षा और शिक्षक एक दूसरे के पूरक व आवश्यक सावयव हैं शिक्षा के बिना शिक्षक पगु है और शिक्षक के बिना शिक्षा घूंघट की ओट में है । रुचि कर पाठ्यक्रम, सुयोग्य व मनोवैज्ञानिक शिक्षक, सुव्यवस्थिति शिक्षा प्रणाली, परमावश्यक वीछित सुविधाएं, प्रभावी शिक्षण विधिया एवं सहायक सामग्री, उपयुक्त वातावरण, निष्ठावान व जागरूक अभिभावक, सस्कारित वालक सब मिलकर इस सुघड कल्पना को साकार बना सकते हैं । अपना सम्पूर्ण व समर्पित सहयोग देकर इस पुतीत यज्ञ को पूर्णाहूत कर सकते हैं । □□

बी–3, स्टाफ क्वार्टर्स
केन्द्रीय विद्यालय नं 1
मोती डूंगरी के नजदीक
अलवर (राजस्थान)

खुली कक्षा - एक नया प्रयोग

❒ डा. ए. के. पाण्डेय

(प्रस्तुत लेख मे स्वयं द्वारा किये गये एक प्रयोग का उल्लेख है । यह प्रयोग प्राथमिक कक्षा पर किया गया है । तथा इसका मुख्य उद्देश्य सिर्फ, नवीनता है । यह एक लघु शोध कार्य है ।)

एक बड़े शहर के एक प्राइमरी स्कूल में पढ़ाते समय मुझे यह एहसास हुआ कि शायद मे इस नौकरी को तभी तक कर रहा हूँ जब तक कि मुझे कोई दूसरी नौकरी नहीं मिलती है । छोटे-छोटे क्लास रूम, फर्नीचर की कमी तथा बच्चो की अधिकता के कारण मुझे स्कूल जाने मे भय लगने लगा था । मुझे यह समझ में नहीं आ रहा था कि किस प्रकार लाखों प्राइमरी स्कूल शिक्षक अपने कार्य को करते हैं । शायद मेरी ही तरह वे भी मजबूरी मे इस कार्य को कर रहे है । मैं अपना वह दिन याद कर आज भी कांप जाता हूँ जब बिना मन से पढ़ाये गये पाठ को बिना मन से पढ़े बच्चे याद करके नहीं आ पाते थे और मै उन्हे अपनी लाल-लाल आखो से घूरकर तथा कभी-कभी पीटकर आत्म संतोष का अनुभव करता था । सोचने पर समझ में नहीं आता था कि गलती कहा हो रही है ।

लेकिन इस बोरियत से बचने के लिए मैने एक रास्ता निकाला । मैन तय किया कि जब इसी नौकरी में रहना है तो क्यो नहीं मन बहलाने के लिये कोई नई चीज खोजी जाय । मैंने अपनी कक्षा के ऊपर एक प्रयोग करने की बात सोची । मैं वह जानता था कि किसी भी नये प्रयोग के लिये मुझे इससे सम्बन्धित ज्ञान की जरूरत होगी । पहले मैंने अपनी कक्षा के आग्रेना हजैगम पर ध्यान दिया जो कि पढ़ाई के ऊपर कुछ प्रभाव डाले । इसके पहले स्कूल में किये गये कार्यों का अनुभवों का इस बदली परिस्थिति में उपयोग करने का निश्चय किया कि मेरे क्लास के कमजोर बच्चो जो मुख्यत अंग्रेजी तथा गणित के थे, पर मैं अपने नये विचार का प्रयोग करना चाहता था । अब भी मैं अपने ऊपर के बन्धन से डर रहा था । क्योंकि मुझे यह मालूम था कि मेरा मैंनजमेंट इस प्रयोग मे सहयोग नहीं करेंगे । यह सोचते हुए भी मैं अपने नये प्रयोग मे जुट गया ।

मैं अपन प्रोजेक्ट को निम्न रूप में आपके सामने रख रहा हूँ :

1. साधारण विचार

मेरी कक्षा मे पहले जो भी परिवर्तन कियो गये थे वे अन्दाज रूप में ही थे । अब मैं जो परिवर्तन करने जा रहा था उसके सारे पहलुओ को मैन विशेष ध्यान दिया । परिवर्तन मुख्यतः मैं इस लिये करना चाहता था-ताकि मेरा अपना कार्य कुछ घंटे (बच्चों को हिसाब बनवाते समय मुझे हमेशा उन पर ध्यान रखना पड़ता था) मैं सोच रहा था कि ऐसा करने से समय की बचत होगी तथा बच्चों को अपने से कार्य

करने की लगन उत्पन्न होगी । मैं समय–समय पर उन्हे मदद करता रहता था तथा बाकी समय का उपयोग उनके लिये नये प्रकार के प्रश्न खोजने में लगाता था । चूंकि बच्चे अपने अनुसार कार्य करते थे ।

अतः तेज बच्चे और नहीं होते थे तथा कमजोर बच्चों को कार्य करने के लिये अधिक समय मिल जाता था । पहले मैं एक ही पाठ को तेज तथा कमजोर लड़के दोनों को पढ़ाता था जिससे धीरे–धीरे तेज बच्चो में पढ़ाने के प्रति अरूचि उत्पन्न होती जा रही थी ।

टारगेट ग्रुप के कार्यों के सही सपादन के लिये मैंने एक पोरटेबल टेपरिकार्डर का उपयोग करना शुरू कर दिया । मैं अपने उद्देश्य को बच्चों को बता भी दिया । शुरू में टेप रिकार्डर देखकर बच्चो थोड़ा डरे लेकिन एक सप्ताह के बाद स्वाभाविक रूप से कार्य करने लगे । मैं अपने साथ एक डायरी रखता था जिसमें मैं समस्त बातों को लिखा करता था । कभी–कभी तो मुझे बहुत झुझलाहट होती थी क्योकि एक ही क्लास मे पांच–छ. ग्रुप को देखना पड़ता था ।

मैंने इस प्रयोग को चक्र की भाति घुमाना शुरू कर दिया ।

2. कार्य पद्धति

❒ विषय के अनुसार काल–खड न देकर ग्रुप काल–खड देना शुरू किया । मैंने प्रत्येक काल खड के लिये एक घंटा दिया ।

❒ मैंने विषय वस्तु का ठीक से अध्ययन कर उसे इकादयों मे बाटा ।

❒ इकाई परीक्षा के लिये परीक्षण की व्यवस्था की ।

❒ इकाई परीक्षा की कापियो को भी मैंने बच्चों से ही दिखलाना शुरू किया जिससे उनके अन्दर ऊपर उठने की भावना की शुरूआत हुई ।

❒ सोसियोमेट्री के आधार पर मैंने ग्रुप का गठन किया जिससे बच्चो के अन्दर दोस्ताना व्यवहार उत्पन्न हो गया और उनके अन्दर विशेष ग्रुप भावना का विकास हुआ ।

3. कार्यनुभव

मैंने अपने ऊपर तुरंत ही कार्य के बीच की कमी को महसूस किया चुंकि किताबो की संख्या बहुत कम थी अतः ग्रुप मे बंट जाने से यह कमी दूर हो गई । पहले एक ग्रुप से दूसरे ग्रुप में कार्य बटवारे के कारण समय ज्यादा लगता था । लेकिन धीरे–धीरे वह भी एक रास्ते पर चलने लगा ।

4. परिवर्तन

यह प्रयोग कार्य तो अच्छा कर रहा था लेकिन मैंने इसमें भी कुल कमियां पाई, जैसे–

(क) हिसाब के लिय एक घंटा कम पड़ता था ।

(ख) कुछ बच्चो के ऊपर विशेष ध्यान देना पड़ता था नहीं तो वे एक घटे का समय किसी तरह से काट देते थे ।

(ग) मैं अपने समय का अभी भी पूर्णतया उपयोग नही कर पा रहा था ।

(घ) कुछ बच्चो में व्यक्तिगत अतर होने के कारण वे किसी भी ग्रुप के साथ कुछ नहीं पाते थे । अतः वे एक समस्या बन गये थे ।

5. परिवर्तित कार्य पद्धति

मैंने बच्चो के ऊपर ही ग्रुप बनाना तथा कार्य के बटवारे का काम छोड़ दिया तथा उन्हें इतनी भी स्वतन्त्रता दे दी कि वे चाहे तो एक घंटे के बदले

किसी विषय के लिये दो घंटे का भी समय ले सकते हैं।

6. उद्देश्य प्राप्ति

यह प्रयोग काफी सफल रहा। यह प्रयोग सैद्धान्तिक था लेकिन मैंने इसे विशेष उद्देश्य के लिये कुछ साख्यिकी का भी प्रयोग किया जिससे की निम्न लिखित तथ्य सामने आये–

(क) लड़को तथा लड़कियों के आउट पुट मे कोई मान्य अन्तर नहीं पाया गया।

(ख) इस तरह से पढ़ाये गये बच्चों तथा ट्रेडिशनल विधि द्वारा पढ़ाये गये बच्चो के बीच (t = 5 23 ds = 98) पाय गया जो 001 पर मान्य था। □□

प्राचार्य
एन. एम डी. सी. प्रोजेक्ट विद्यालय
मझगवां माइन्स, पन्ना (म. प्र.)

बाल साहित्य तथा पाठशाला शिक्षण

❐ डा. रोहिताश्व अस्थाना

बाल साहित्य का अर्थ है– बच्चो का साहित्य या बच्चो के लिए साहित्य ! इसका अंग्रेजी अनुवाद है– 'Children's Literature' सामान्यतः बाल मनोविज्ञान को ध्यान मे रखते हुए बाल रूचि, बाल परिवेश एवं बाल ग्राहयता के अनुरूप बड़ो द्वारा लिखा गया साहित्य बाल साहित्य के अन्तर्गत आता है । बाल साहित्य लिखने के लिए लेखक को बाल मानसिकता के धरातल पर उतरना पड़ता है अर्थात् उसे बच्चों में बच्चा बनकर उन्हीं के मानसिक स्तर से सोचना पड़ता है । इस अर्थ में सफल बाल साहित्य वही है, जो बालपन को सीधे सीधे प्रभावित कर सके । बाल साहित्य के सच्चे समीक्षक तो बच्चे ही हैं । जो रचना बच्चो को सर्वाधिक पसन्द हो, वही रचना सबसे सफल बाल रचना मानी जा सकती है ।

अवस्था अथवा आयु वर्ग की दृष्टि से बाल साहित्य को तीन वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है– 1. शिशु साहित्य 2. बाल साहित्य 3 किशोर साहित्य

इसी प्रकार विधा परक दृष्टि से बाल साहित्य का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है– ❐ बाल कविता ❐ बाल कहानी ❐ बाल उपन्यास ❐ बाल नाटक ❐ बाल जीवनी ❐ बालोपयोगी विज्ञान साहित्य ❐ बाल कामिक्स ।

आयुवर्ग के अनुरूप बाल कविता के तीन रूप देखे जा सकते हैं–

1. शिशुगीत 2. बालगीत 3. किशोर गीत

विषय वस्तु की दृष्टि से बालक कविता के अनेक भेद किए जा सकते हैं । यथा–पशु पक्षियों के गीत, राष्ट्रीय भावना पर आधारित गीत, समूहगान, खेल गीत, लोक शैली पर आधारित गीत,

विषय वस्तु की दृष्टि से बाल कहानी, बाल, उपन्यास, बाल नाटक का वर्गीकरण इसी प्रकार किया जा सकता है ।

बाल जीवनी के अन्तर्गत विभिन्न क्षेत्रों के श्रेष्ठ महापुरुषों की जीवन गाथा प्रस्तुत की जाती है । इस प्रकार कार्य क्षेत्र एव विषय वस्तु की दृष्टि से बाल जीवनियाँ निम्न प्रकार की हो सकती हैं ।

❐ धार्मिक महापुरुषों की जीवनियाँ ❐ सामाजिक महापुरुषों की जीवनियाँ ❐ वीर पुरुषों की जीवनियाँ ❐ राजनैतिक महापुरुषो की जीवनियाँ ❐ वैज्ञानिक महापुरुषों की जीवनियाँ ❐ वीर साहसी एव विदुषी महिलाओं की जीवननियाँ

युग की माँग के अनुरूप बच्चो के लिए वैज्ञानिक बाल साहित्य के सृजन की महत्ता बढ़ गयी है । आज का बालक परीकथाओं एवं कपोल कल्पित कथाओं की अपेक्षा उड़न तश्तरी, रोबोट, कम्प्यूटर,

अन्तरिक्ष यान से दूसरे ग्रहो की सैर आदि पर आधारित बाल साहित्य पढ़ना अधिक पसन्द करता है ।

आकाशवाणी एवं दूरदर्शन जैसे मनोरजन प्रदायक प्रचार माध्यमों ने बालकों से पर्याप्त समय छीन लिया है । उसके पास पढ़ने के लिए समय का अभाव होता जा रहा है । अतः बालक कम से कम समय मे अधिक से अधिक सामग्री पढ़ कर आनन्द लेने के लिए उसके पास नहीं रह गया है । अत. ऐसी स्थिति मे बालचित्र कथाओं एवं बाल कॉमिक्स की महत्ता बढ़ गयी है । इनमें चित्रों एवं उनके नीचे लिखे सक्षेप वाक्यों के सहारे कहानी आगे बढ़ती है । जहाँ बाल उपन्यास पढ़ने मे दो तीन घंटे लगते हैं, वही इन्हे मात्र बीस या तीस मिनट मे पढ़कर समाप्त कर सकते हैं । बच्चों के लिए बाल चित्र कथाएँ एवं बाल कामिक्स तैयार करते समय इस बात का पर्याप्त ध्यान रखना चाहिए कि वे मनोरंजन के साथ-साथ प्रेरक एव जीवन मूल्यो की अभिवृद्धि में सहायक हो । उन्हे पड़कर बच्चे अपने जीवन मे कुछ न कुछ उतारने के लिए सचेष्ट हो सके ।

बालक के सर्वांजीण विकास में शिक्षा का सर्वाधिक महत्व है । शिक्षा दो प्रकार की होती है— 1. अनौपचारिक शिक्षा 2. औपचारिक शिक्षा

अनौपचारिक शिक्षा हर समय एवं हर स्थान पर प्राप्त की जा सकती है । बालक अनौपचारिक शिक्षा का प्रथम पाठ अपनी माँ की गोद में सीखता है । इतना ही नहीं बालक अपने बड़े-बुजुर्गों को जो भी करते देखता है, अनुकरण की रीति से सीखता रहता है ।

इसी प्रकार बालक अपने आसपास के वातावरण से बहुत कुछ सीखता है । बालक जिज्ञासा वश जब गरम-तवे को छूता है, तो वह जल जाता है और तुरन्त यह सीख लेता है कि गरम वस्तुओ से हमें दूर रहना चाहिए । इसी प्रकार बालक जब अपने बड़े भाई को दाँत साफ करते देखता है तो वह भी ब्रुश करना और मंजन की मिठास का स्वाद लेना सीख जाता है । पिता या बाबा को अखबार पढ़ते देखकर बच्चा भी उसमे कुछ न कुछ खोजने लगता हैं । इस प्रकार बालक की अनौपचारिक शिक्षा उसकी माँ की गोद से लेकर घर-परिवार एवं आस पड़ोस के वातावरण के बीच सम्पन्न होती है । एक विद्वान ने तो माँ की गोद को बालक की प्रथम पाठशाला ही कह दिया है ।

परन्तु पाठशाला तो बालक की औपचारिक शिक्षा का केन्द्र है । सामान्य अर्थों में पाठशाला वह भवन है, जहाँ एक निश्चित समय में, निश्चित गुरुजनो एव अपेक्षित पाठ्यसामग्री के द्वारा बालक को औपचारिक शिक्षा प्रदान की जाती है । पाठशाला में आकर बालक विभिन्न शिक्षण विधियो के माध्यम से निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुरूप विषयो का अध्ययन करता है । अतः पाठशाला शिक्षण में पाठ्यक्रम का विशेष महत्व है । पाठ्क्रम के निर्धारण मे विषय के चयन एव प्रस्तुतीकरण का विशेष महत्व है ।

बालक अपनी शैशवावस्था, बाल्यवस्था एवं किशोरावस्था पाठशाला मे ही व्यतीत करता है । अतः पाठ्यक्रम के निर्धारण मे उसकी अवस्था को ध्यान में रखना बहुत आवश्यक है ।

पाठशाला मे भाषा शिक्षण के लिए पाठ्यक्रम निर्धारित करते समय बालक की अवस्था के अनुरूप बाल-साहित्य का चयन करना अत्यन्त उपयुक्त एव उपादेय है । उदाहरणार्थ तीन वर्ष से पाँच-छ. वर्ष के आयु वर्ग के बालक भाषा ज्ञान की दृष्टि से आधे-अधूरे होते हैं । उन्हे अक्षर-ज्ञान एव मात्रा

ज्ञान से पूर्व सुन्दर चित्रो से सजे हुए शिशुगीतो की पुस्तकें देनी चाहिए । बच्चे जहाँ एक ओर चित्रों को पहचानेंगे, वहीं दूसरी ओर शिक्षकों को चाहिए कि बालको को शिशुगीत गाकर सुनायें और उनसे सामूहिक रूप से बोलने या गाने को कहे । बच्चे एक साथ कई बार उन्हें दोहराकर खेल–खेल मे ही कण्ठस्थ कर लेंगे । उदाहरणार्थ सरल–सरस भाषा मे लिखा गया प्रस्तुत शिशुगीत बच्चो को सहज ही कण्ठस्थ कराया जा सकता है–

हाथी राजा बहुत भले, ।
सूंड हिलाते किधर चले, ।।
मेरे घर आ जाओ ना ।
हलवा पूड़ी खाओ ना ।।
आओ बैठो कुर्सी पर ।
कुर्सी बाले–'चर चर चर' ।।

(निरिकार देव सेवक)

प्राय· भाषा ज्ञान से पहले बच्चों को शिशुगीत सुनाकर उन्हे गुनगुनाने के लिए प्रेरित करके उनमें रागात्मक प्रवृत्ति जाग्रत की जा सकती है । इधर श्रेष्ठ बाल साहित्यकारों द्वारा रचित तथा सपादित कुछ शिशु गीत सकलन देखने मे आए हैं, जिनमे 'बिल्ली के गीत', बजा झुनझुना, लो खिलौने, फूल खिले, नन्ही कविताए (तीन भागो मे) प्रमुख हैं ।

कक्षा एक से पाँच तक की पाठ्यपुस्तको मे जीवन मूल्यों को जगाने वाले, राष्ट्रप्रेम, एकता, ऋतु, पर्व आदि पर आधारित बालगीत देखे जा सकते हैं, जिनके पठन–पाठन से बच्चों मे अपने आस–पास के वातावरण को जानने–समझने की क्षमता जाग्रत होती हे । होली और दीपावली के बारे में तो सभी जानते हैं, परन्तु ईद, क्रिस्मस आदि पर्वो पर आधारित बालगीत पाठ्यपुस्तकों में रखकर इनके बारे में भी छात्रो को ज्ञान कराया जा सकता है । इस प्रसग मे ईद पर आधारित बालगीत की कुछ पक्तियाँ उद्धरणीय हैं–

"घर–घर पकी सिवईयाँ मीठी,
जी भर खाओ और खिलाओ ।
भेद भाव के बिना सभी को–
हसकर अपने गले लगाओ ।
कभी न कम हो जिसकी खुशियाँ–
ऐसा है भण्डार ईद का ।।"

(डॉ. रोहिताश्व अस्थाना)

मनोवैज्ञानिकों का मत है कि किशोरावस्था उत्साह एव उमग की अवस्था है । इस अवस्था के बालकों मे कुछ कर गुजरने का अदम्य साहस होता है । पाठ्यपुस्तकों में संकलित किशोरोपयोगी कविताओं के माध्यम से इस नई शक्ति को उचित दिशा मे लगाकर समाज, देश एवं राष्ट्र का विकास किया जा सकता है / उदाहरणार्थ किशोरो के मन मे देश के लिए आत्मोत्सर्ग करने की सकल्प शक्ति निम्न पक्तियो द्वारा जाग्रत की जा सकती हैं–

"जिस पर गिरकर उद–दरी से, तुमने जन्म लिया है ।
जसका खार अन्न, सुधा सम नीर, समीर पिया है ।
वह सनेह की मूर्ति दयामयि, माता तुल्य मही है ।
वह सनेह की मूर्ति दयामयि, माता तुल्य मही है ।
उसके प्रति कर्त्तव्य तुम्हारा, क्या कुछ शेष नहीं है ?

(राम नरेश त्रिपाठी)

बाल कहानियों, बालनाटको एव बाल–जीवनियो के माध्यम से बालमन पर सदाचार, साहस, एव वीरता की छाप अकित की जा सकती है । इसी उद्देश्य से इस प्रकार की रचनाएँ पाठ्यपुस्तको मे सकलित की जाती हैं । पचतत्र, 'कथा सरित्सागर' आदि की कहानियाँ अनेक पाठ्यपुस्तकों मे सकलित की गयी हैं·। इनमे पशु पक्षियों की कहानियो के आधार पर

बालको को शिक्षा दी गयी है । इसी प्रकार तमाम अन्य कहानियाँ पाठशाला शिक्षण मे सहायक होती हैं । माता जीजाबाई ने तो कहानियो के द्वारा प्रेरणा देकर शिवाजी को छत्रपति शिवाजी बनाया । अभिमन्यु एव नाटको को पढ़कर या देखकर बालक उन्हीं के समान महान बनने की प्रेरण लेते हैं । इन चरित्रो को कहानियो अथवा नाटक के रूप में शिक्षक द्वारा प्रस्तुतीकरण इतना सजीव और प्रेरक होना चाहिए कि वह मन मे उतर जाय । उदाहरण के लिए अकबर या अभिमन्यु का नाटक दिखाते समय छात्रो को यह आभास हो कि अकबर ने किशोरावस्था से ही विजय पाना आरम्भ कर दिया ! या फिर उन्हें लगे कि अभिमन्यु तो उन्हीं की अवस्था का था जब उसने चक्रव्यूह का भेदन करते-करते वीर गति प्राप्त की । इससे बालकों को नए सस्कार मिलते हैं, और वे अपने जीवन में भी महान बनने का सकल्प लेते हैं ।

प्रेरक जीवनियो को भी अनेक प्रदेशों के पाठ्यक्रमों मे सम्मिलित किया गया है । हमारी गौरवशाली परम्परा को बनाए रखने वाले पूर्वजों एवं देश के सच्चे सपूतों की जीवनियाँ भी पाठशाला मे बच्चो को रोचक ढंग से पढ़ाने की आवश्यकता है । उदाहरणार्थ बालक महात्मा गाँधी की जीवन गाथा पढ़कर यह सोचने को बाध्य होगा कि उन्होने अनेक सघर्षों को भी झेलकर सत्य का दामन नही छोड़ा । तभी वे इतने महान बन सके । इससे बालक सत्य को अपने आचरण में उतारने की शिक्षा ग्रहण कर सकेंगे ।

बालक को कपोल कल्पित कथाओ से ऊपर उठाकर उसमे स्वस्थ तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण जाग्रत करने के लिए पाठ्क्रम मे विज्ञान से सम्बन्धित जानकारी को समावेश करना समीचीन होगा । इस प्रकार हम देखते हैं कि पाठशाला शिक्षण मे बाल साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान है । बालक के अपरिपक्व मानस पर शिक्षक पाठ्यपुस्तको में संकलित बाल साहित्य- सम्बन्धी पाठो को प्रभावशाली ढग से प्रस्तुत करके अपनी स्पष्ट छाप अंकित कर सकते हैं । अध्यापक तो कक्षा का नायक होता है । बालक उसका अनुकरण ठीक उसी प्रकार कर लेता है, जैसे फिल्मी सितारो को नाचते-गाते देखकर वह भी वैसे ही हाव भाव प्रदर्शित करता है ।

पाठ्यपुस्तकों को सपादित करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि उनमें बालक की अवस्था के अनुरूप बाल साहित्य का समुचित प्रतिनिधित्व होना चाहिए । इन पाठ्यपुस्तकों के अतिरिक्त आपरेशन ब्लैक बोर्ड के अनतर्गत तथा अन्य स्त्रोतों से शासन द्वारा पाठशालाओ के पर्याप्त मात्रा मे बाल साहित्य सम्बन्धी पुस्तकें उपलब्ध करायी जानी चाहिए । शिक्षको एव अधिकारियों को यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि यह बाल साहित्य केवल पुस्तकालयो में बन्द ही न रह जाय । अपितु बालक इस साहित्य को पढ़ने को अवसर प्राप्त कर सके । पाठ्य सहगामी क्रियाओ के अन्तर्गत बालकों को कहानियाँ, समूह- गान आदि सुनाने का अवसर प्रदान करना चाहिए तथा राष्ट्रीय पर्वों पर बाल नाटक आदि का मंचन करने के लिए प्रेरित करना चाहिए । अवकाश के क्षणो मे बालको को अच्छी बाल कॉमिक्स की पुस्तकें पढ़ने को देना चाहिए । बालको की पाठशाला के विभिन्न कार्यक्रमो मे श्रेष्ठ स्थान प्रापत करने पर खेल-खिलौनो की जगह पुरस्कार के रूप मे बाल साहित्यकी पुस्तकें प्रदान करनी चाहिए ।

अन्त मे हम उस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि बालक के सर्वांगीण विकास के लिए अनौपचारिक शिक्षा के साथ-साथ औपचारिक शिक्षा की विशेष आवश्यकता है । बालक की औपचारिक शिक्षा

पाठशाला में ही सम्भव है । बालक की पाठ्यपुस्तको मे उनकी अवस्था के अनुकूल समुचित मात्रा मे बाल साहित्य का समावेश रहता है । शिक्षको को चाहिए कि वे बालमनोविज्ञान एव प्रशिक्षण से प्राप्त ज्ञान के आधार पर अपने बाल साहित्य सम्बन्धी पाठो को इस प्रकार उत्तमता से प्रस्तुत करे कि छात्र उनसे ज्ञान के साथ–साथ शिक्षा, प्रेरणा एवं अनुकरण क्षमता ग्रहण कर सके । अत· सफल पाठशाला शिक्षण के लिए पाठ्यक्रम एव पाठ्य–सहगामी कार्यक्रम मे बाल साहित्य की उपादेयता और भी बढ़ जाती हैं । ◻◻

बाबा मन्दिर, हरदोई
(उ. प्र.)

बाल शिक्षा में पुस्तकालय का महत्व

□ के. बी. भारद्वाज

शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास करना है । यह विकास एक निरन्तर प्रक्रिया है, जीवन भर चलता रहता है । शिक्षा का लक्ष्य है इस कार्य प्रणाली को हमेश चालू रखना । मानव सभ्यता के आरम्भ से लेकर विकास के वर्तमान चरण तक प्रत्येक युग में शिक्षा और शिक्षितो को विशेष महत्व दिया जाता रहा है । आज के वैज्ञानिक युग मे शिक्षा का महत्व और भी अधिक बढ़ गया है । भारत मे शिक्षा को नेत्र और प्रकाश के नाम से अभिहित किया जाता है । नेत्रो का काम है देखना और प्रकाश का काम है अन्धकार का नाश करना । इसका तात्पर्य है कि शिक्षा व्यक्ति को उचित अनुचित को देखकर, परख कर चलने मे सहायता देती है और उससे प्राप्त होने वाला ज्ञान का प्रकाश अज्ञान रूपी अंधकार का नाश कर सत्पथ का निर्माण करने में सहायता पहुंचता है । जहाँ सूर्य की किरणें अंधकार को दूर करने में असफल रहती हैं, वहाँ ज्ञान रूपी सूर्य ही अज्ञान रूपी अधकार को दूर करता है । वह ज्ञान गुरु की कृपा से पुस्तको से ही प्राप्त होती है । पुस्तके हमे प्राप्त होती हैं पुस्तकालयो से । पुस्तको का मान, सम्मान भारत देश मे आदिकाल से होता आया है । पूर्व इतिहास से हमे विदित होता है पुरोहित, पंडित गुरुजन, आचार्य, मुनि, ऋषि ही ग्रंथों के सग्रह करने वाले व प्रणेता व इनकी रक्षा करने वाले रहे हैं । प्राचीन काल मे एक-एक मुनि के पास दस-दस या बीस-बीस हजार छात्र रहते थे । वे मुनि ही उनके रोटी, कपड़े और रहने के स्थान, आश्रम आदि का प्रबन्ध करते थे, साथ-साथ वो वहीं विद्याध्ययन करते थे, ऐसा प्राचीन ग्रथ हमे बताते हैं । पहले जब लिपि का आविष्कार नहीं हुआ था, साहित्य का विकास प्रारम्भ हो चुका था । उस समय कोई ऋषि अथवा मुनि एक श्लोक या मत्र कह दिया करते थे, हजारो छात्र उनको थोड़े समय मे ही उसे अपने हृदय मे रख लिया करते थे । इसी प्रकार पिता से पुत्र को गुरु से चेले को वश परम्परानुसार यह क्रम चला आता था । प्राचीन काल में ये मुनि व गुरु लोग ही चलते फिरते पुस्तकालयों का कार्य सम्पादन करते थे ।

प्राचीन काल में भारत मे पुस्तकालयों का जाल सा बिछा था । राजा से लेकर गरीब से गरीब आदमी के घर में छोटे स्कूल से लेकर विश्वविद्यालयों मे समृद्ध पुस्ताकलय स्थित थे । 7वीं सदी में ह्वेन सांग, चीनी यात्री ने नालदा बिहार मे हजारों ग्रंन्थों का अध्ययन किया व उनको देखा परखा । स्वदेश जाते समय वह 40 घोड़ो पर लादकर भारतीय ग्रंथो को ले गया । आज भी चीन व जापान के मठो में भारतीय ग्रंथ सुरक्षित हैं । राजा भोज का पुस्कालय भी बड़ा स[illegible] था कवि बाण भट्ट उस पुस्तकालय के पुस्तकालय अध्यक्ष थे । नालन्दा विश्वविद्यालय के पुस्तकालय की ख्याति उस समय पूरे ससार मे थी । ससार के अनेक विद्यार्थी व भिक्षु यहाँ आकर अपनी ज्ञान की प्यास बुझाते थे । बाद में अनेक मुसलमान

बादशाहों के निजी पुस्तकालय थे । बहुत से आक्रमण–कारियो ने हमारे समृद्ध पुस्तकालयों को जलाकर खाक भी किया । प्राचीन भारत के पुस्तकालयो की गाथा या तबारीख बड़ी ही गौरवमयी व महिमामंडित रही हैं ।

मुगलकालीन शासन के बाद व अंग्रेजो के आगमन के बीच, जिसे संधि समय के नाम से पुकारा जाता है, पुस्तकालय का विकास संतोषजनक नहीं रहा । अंग्रेजों ने अपने धर्म प्रचार व शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया, तथा हमारे देश की शिक्षा पद्धति व धर्म को समूल नष्ट करना शुरू कर दिया । हमारे सम्पूर्ण मूल्य, मान्यताओ व सभ्यता को बदल, अपनी मनचाही पद्धति भारत के हर क्षेत्र में लागू करना शुरू कर दिया । अपने धर्म के अनुसार स्कूल खोलें व धार्मिक किताबें बनाना शुरू कर दिया । सैंकडों की संख्या मे स्कूल बनाये जिनके साथ पुस्तकालय भी संलग्न थे । इन स्कूली पुस्तकालयो मे अन्य विषयों की पुस्तकों से अधिक उनके धर्म से सम्बन्धित पुस्तके ज्यादा होती थीं ।

लेकिन दीर्घकालीन स्वतन्त्रता संग्राम के पश्चात, अनेक त्यागी पुरुषों के त्याग के योगदान तथा आजादी के दीवानो की कुर्बानी के फलस्वरूप 15–8–47 को भारत के जनमानस ने स्वतन्त्रता की सांस ली । देश स्वतन्त्र हो गया । भारत में निवास करने वाले सब भारतवासियों की सब गति विधियाँ बिल्कुल बदल गई हैं उसका लक्ष्य बदल गया है । साधनों के अम्बार लग रहे हैं । नये 2 साधनों की निरन्तर खोज हो रही है । उच्च शिक्षा व स्वाध्याय का अर्थ बिल्कुल बदल गया है । शिक्षा के क्षेत्र को व्यापक किया जा रहा है । शिक्षा आजकल सार्वजनिक हो गई है, जो आवश्यक भी है ।

आज इस युग मे सबको अपनी उन्नति के लिये सब क्षेत्रो में अवसर मिलना चाहिये । यह सम्भव तभी है जब सम्पूर्ण देश का जनता जनार्दन शिक्षित हो इसके लिये हमारी सरकार भागीरथी प्रयास का इस बात को सफल बनाने की कोशिश कर रही है कि देश का प्रत्येक देशवासी पढ़ा लिखा हो, ताकि वह अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास कर सके । जिससे देश को सबल बनाने में अपनी योग्यता का परिचय दे सके । प्रजातन्त्र की सफलता बच्चों के मस्तिष्क में प्रजातांत्रिक विचार भरने पर आधारित हैं । और इन विचारो को भरने तथा प्रचार हेतु पुस्तकालय ही प्रमुख साधन हैं ।

बच्चे देश के भावी निर्माता होते है । बच्चो का मानसिक विकास, शारीरिक विकास अधिक से अधिक हो ऐसा सोचना प्रत्येक माता, पिता, समाज व राष्ट्र का कर्त्तव्य है । बच्चो के सोचने का पैमाना वयस्को व वृद्धो से अलग होता है इस बात पर हमारे संसार के विद्वानो ने काफी समय से सोचना विचारना शुरू कर दिया है । बच्चों के व्यक्तित्व के विकास के लिए उचित वातावरण कैसे बनाया जाए । आज बच्चो के लिए अलग बाल पुस्तकालय बाल विद्यालय, बाल उद्यान आदि खोले जाने लगे हैं ।

यह बात साफ है आज के बच्चे जैसे निर्णय अपनी समझ बूझ से करेंगे आगे के लिए देश का वातावरण, उन्नति व समाज का निर्माण होगा । यह सब ठीक देश हित में हो वर्तमान पीढ़ी का यह उत्तरदायित्व हो जाता है कि बच्चो के मानसिक, शैक्षिक व शारीरिक विकास पूर्ण रूप से हो ऐसा वातावरण बनाये । अगर वातावरण ऐसा नहीं बनेगा तो देश के भावी निर्माता, सच्चे देशभक्त व अच्छे चरित्र वाले नागरिक नहीं होंगे । देश का विकास तो होगा ही क्या, विकास की जगह देश गर्त में चला जायेगा ।

इस ऊपर वाले लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सर्वप्रथम बच्चो को सम्बन्धित पाठ्य सामग्री देनी चाहिए । जिसे अच्छी बातो व आदतों की जिज्ञासा उत्पन्न हो तथा नई–2 बातों को जानने का कौतूहल उत्पन्न हो । कहावत है "खाली दिमाग शैतान का घर होता है ।" बच्चों को कोई काम न दिया जाए तो वह शरारत करेंगे ही । इस शरारत को समाप्त करने का उचित व अच्छा साधन है अच्छा पुस्ताकलय । पुस्तकालय चाहे वो स्कूल का हो या सार्वजनिक, बच्चो के शैक्षिक व मानसिक व शारीरिक विकास मे सहयोग करेगा । साथ–साथ उनके व्यक्तित्व के विकास कामधेनु का कार्य करेगा ।

यह वात अधिकतर सभी जानते हैं कि पश्चिमी देशो में बाल पुस्तकालयो की तरफ काफी प्रगति हुई है । प्रत्येक सार्वजनिक पुस्तकालय के साथ, बाल पुस्तकालय की स्थापना की गई है । वहाँ बच्चे अधिक से अधिक संख्या में जाते हैं और अपनी इच्छित पुसतक चयन करते हैं और बाल पुस्तकालय मे बैठकर उनका अध्ययन करते हैं अथवा घर ले जाते हैं । बाल पुस्तकालयो का शैक्षणिक व सामाजिक महत्व बहुत है । बाल पुस्तकालय मे बच्चे भिन्न–2 स्थानों से, भिन्न–2 विद्यालयो से आते हैं । और वह एक ही वाचनालय में बैठकर अच्छे बच्चो की तरह अध्ययन करते हैं । इससे उनमें एक दूसरे के प्रति प्रेम की भावना की जागृत होती है तथा देश भक्ति भी आती है । अच्छी आदतें एक दूसरे से सीखते हैं । अनुशासन, पढ़ने की प्रतिस्पर्धा की भावना जागृत होती है । बाल पुस्तकालय बच्चे के आचार, व्यवहार, शीलता के गुण भरने में भी बहुत सहायक होते हैं । बाल पुस्तकालय मे बच्चा अपने को समुदाय का एक अग महसूस करता है । उसके हृदय से अकेलेपन की भावना समूल नष्ट हो जाती है । पुस्तकालय मे बाल उपयोगी साहित्य के साथ–साथ, बालकों की फिल्म, वार्तालाप तथा संगीत जैसे कार्यक्रमो का आयोजन होना चाहिये । आकाशवाणी जब बच्चो का कार्यक्रम दे तो बच्चो को इसकी सूचना के साथ–2 सुनाने का प्रबन्ध भी करना चाहिए । देर से ही सही हमारे देश मे बाल पुस्तकालयों को बहुत महत्व दिया जाने लगा है । पर अभी भी प्रगति सतोषनक नहीं है । अभी हमारे देश मे पुस्तकालयो की दशा बहुत ही सोचनीय हैं । प्रत्येक पुस्तकालय मे बाल विभाग गठित करना चाहिए ।

भारत की अधिकतर जनता गाँवों मे निवास करती है । अतएव वहाँ चाहे ग्राम हो, पचायत प्रखड हो पुस्तकालयों की समुचित व्यवस्था नहीं है । यहाँ तक बच्चों के लिए बाल साहित्य तो अलग रहा वहाँ ब्लैक बोर्ड स्कूलो मे उपलब्ध नहीं हैं । बच्चो को बैठने के लिये डेस्क टेबल अलग की बात फर्स पर बिछाने को टाट पट्टी भी नही है । छोटी–2 किताबें चपक, चदामामा बच्चो के साहित्य की ये किताबे भी नहीं हैं । सरकार को इस तरफ ध्यान देने की आवश्यकता है । जिससे वे ग्रामीण बालक इन चीजों के अभाव के कारण रेगिस्तान के पौधे की तरह न सूख जाये । पुस्तकालयो का होना चाहे वो गाँव हो, शहर हो, कस्बा हो सरकार को हर जगह अवश्यक करना चाहिए । पुस्तकालयो मे बच्चे अपने बुजुर्गों से सीधा सम्पर्क स्थापित करते हैं । उनसे साक्षात्कार करते हैं । उनकी हँसी खुशी दुख लिखे गये ग्रन्थों के द्वारा करते । उनकी अमृत से पूर्ण वाणी हमको उत्साहित करती है ।

आज हमारे महाकवि तुलसी, सूर, जायसी, टैगोर, बाल्मीकि, शैक्सपीयर, या गाँधी जिस्मानी तौर पर हमारे बीच नहीं हैं लेकिन ये सभी अपनी कृतियो के बल पर हमारे बीच हैं । उनकी आत्माये उनके ग्रन्थों मे बोल रही हैं । कृष्ण का अमृत तुल्य उपदेश आज गीता मे सुरक्षित है । यहाँ तक ग्रन्थो का प्रेम ही

परमात्मा के राज्य मे पहुँचाने वाला दिव्य विमान है । सुकरात के अनुसार–"जिस घर मे अच्छी पुस्तकें नहीं हैं वह घर वास्तव मे घर कहलाने योग्य नही वह तो जीवित मुर्दों का कब्रिस्तान है । उत्तम पुस्तकों का संग्रह ही वर्तमान युग का सच्चा विश्वविद्यालय है । पुस्तके घर की रोशनी, समाज की ज्योति और कुल की आभा है ।" पुस्तकों की चयन बड़ी सावधानी से करना चाहिए । अध्ययन चुनी हुई उपयोगी पुस्तकों का ही करना चाहिए । एक विद्वान ने कहा है– "कुछ पुस्तके स्वाद लेने को होती हैं, दूसरी निगलने को और कुछ थोड़ी सी ऐसी होती हैं, जिन्हें चबाया जाना व पचाया जाना चाहिए ।" यही पुस्तकालय की उपयोगिता और महानता है । अमेरिका के महान ग्रन्थालयी मेलविल डेवी ने अमेरिकी पुस्तकालय सघ के लिए प्रयुक्त शब्द "ALA" से पुस्तकालय की उपयोगिता की दृष्टि से इसका दूसरा अर्थ बताया है Ask Library Anything, दूसरे शब्दो मे पुस्तकालय आधुनिक कामधेनु है । ❑❑

पुस्तकालय अध्यक्ष
राजकीय बाल उच्चतर
माध्यमिक विद्यालय न० 2
सरोजिनी नगर, नई दिल्ली

शिक्षा में कम्प्यूटर

❐ अरूण कुमार

परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है, जो सफल जीवन के लिए आवश्यक है तथा शिक्षा, व्यवस्थित परिवर्तन का एक साधन है । किन्तु परिवर्तन की इस दौड़ में आज शैक्षिक परिवर्तन, सामाजिक परिवर्तन से काफी पिछड़ गया है, अतः शिक्षा मे जन आकाक्षओं एव लक्ष्यों के अनुरूप परिवर्तन की माग सर्वत्र की जा रही है । नई शिक्षा नीति मे शिक्षा–शास्त्रियों द्वारा शिक्षा प्रणाली मे गतिशीलता प्रदान करने हेतु नये विचार, नये कार्यक्रम तथा नई विधियो और तकनीकों के प्रयोग की सिफारिश की गयी है ।

जनसख्या में विस्फोटक वृद्धि सामाजिक एव आर्थिक समस्याओं के साथ–साथ शैक्षिक समस्याओ को भी जन्म देती है । इससे निपटने के लिए कुछ नवीन विधियों को अपनाना अनिवार्य हो गया है ताकि सबके लिए शिक्षा की समुचित व्यवस्था की जा सके ।

जन आकाक्षओं की पूर्ति के लिए पाठ्यक्रम एवं शिक्षण की तकनीक में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है । शैक्षिक तकनीकी का आधुनिक अर्थों में सर्वप्रथम प्रयोग 1967 मे ब्रिनमोर जोन्स रिपोर्ट मे किया गया । ब्रिटेन की नेशनल कौंसिल आफ एडूकेशनल टक्नालॉजी ने 1967 में शैक्षिक तकनीकी की परिभाषा इस प्रकार की –"शैक्षिक तकनीकी मानव अधिगम के प्रक्रम को सुधारने एव उन्नत करने के लिए प्रणालियों, तकनीकियो ओर सहायक उपकरणो का विकास प्रयोग एवं मूल्याकन है" ।

आल इण्डिया कान्फ्रेंस आन प्रोग्रामम्ड इन्स–ट्रक्सन टेकनार्लोजी (1969) के अवसर पर एस एस. कुलकर्णी महोदय ने शैक्षिक तकनीक की परिभाषा इस प्रकार दी है– "शौक्षिक तकनीकी उन सभी प्रणालियो, विधियों एव माध्यमो का विज्ञान है जिसके द्वारा शिक्षा के उद्देश्यो की प्राप्ति की जा सकती है" ।

शौक्षिक तकनीकी के आन्दोलन को प्रभावित करने वाली परम्पराओ मे तीन प्रमुख हैं–

1. दृश्य श्रव्य सहायक सामग्री परम्परा – ज्ञान प्रदान करने की क्रिया को सहज एवं बोधगम्य बनाने की सबसे अधिक पुरानी एव प्रयोजनावादी प्रक्रिया ।

2. मानव अभियान्त्रिकी परम्परा – इस परम्परा का आधार एवं श्रोत अधिगम मे आनेवाली त्रुटिया हैं इसकी एकधारा प्रतिपुष्टि सिद्धान्त है तो दूसरी संगणना ।

3 मनोवैज्ञानिक परम्परा – इसका प्रमुख उद्देश्य वातावरण को नियत्रित एव संरचित करना है ।

संगणना, अपने वर्तमान अर्थ में इस शताब्दी के पाचवे दशक के कम्प्यूटर के निर्माण से प्रयुक्त होने

लगा । अपनी विस्तृत उपयोगिता के कारण कम्प्यूटर ने शैक्षिक तकनीकी में भी प्रवेश किया और शैक्षिक तकनीकी के अन्तर्गत एक नई शाखा का जन्म हुआ जिसे हम कम्प्यूटर - सह-अनुदेशन कहते हैं ।

अभी शिक्षा में संगणक अथवा कम्प्यूटर का प्रयोग अपनी शैशवास्था में है किन्तु अपनी भावी अनन्त सम्भावनाओं और चमत्कृत करने वाली क्रियाओं के द्वारा यह जनमानस पर छाता जा रहा है । वैज्ञानिक प्रयोगो के अलावा दैनिक जीवन के अनेक पहलुओ जैसे- रेल, डाक, उद्योग एव सरकारी कार्यालयों के क्रियाकलापों आदि में इसका प्रयोग एक दशक से प्रारम्भ हो चुका है । शिक्षा मे भी इसका प्रयोग हो गया है । कम्प्यूटर के द्वारा शिक्षक तथा शिक्षाशास्त्री निम्न क्षेत्रो में लाभ एव सहायता प्राप्त कर सकते हैं-

1. स्कूलों के उबाने वाले कार्यों का उत्तरदायित्व कम्प्यूटर को सौंपा जा सकता है । जैसे- टाइम टेबुल बनाना, छात्रो को उनकी योग्यतानुसार वर्गीकृत करना ।

2. व्यक्तिगत छात्रो और छात्र समूहो के लिए कम्प्यूटर अधिगम संसाधन एवं सामग्रियो का आबंटन और प्रस्तुतीकरण कर सकता है अर्थात कम्प्यूटर के माध्यम से अनुदेंशन की व्यवस्था की जा सकती है ।

3. कम्प्यूटर छात्रो के प्रगति पत्रों का रख-रखाव अति गोपनीय रीति से कर सकता है जिससे छात्रो के वस्तुनिष्ट मूल्यांकन मे सहायता मिलती है ।

4. छात्रों के मार्गदर्शन के लिए उनसे सम्बन्धित सूचनाओं की फाइल बहुत सरलता पूर्वक शिक्षकों एवं परामर्श दाताओ को प्रदान कर सकता है ।

5. छात्रो और विषयवस्तु से सम्बन्धित सीखी जा सकने वाली साम्ग्रियो के मध्य सीधी परस्पर क्रिया का अवसर प्रदान कर सकता है ।

6. छात्रो को ट्यूटोरियल वार्तालाप और परस्पर क्रिया में लगाये रख सकता है ।

कम्प्यूटर का शैक्षिक उपयोग

कम्प्यूटर की स्मृति मे बहुत बड़ी सख्या मे सूचनाएं अथवा ज्ञान सग्रहित रहता है जिसके कारण कम्प्यूटर अनेक शैक्षिक विषयो विशेष रूप से विज्ञान, गणित तथा तकनीकी विषयों को सीखने की प्रक्रिया में सहायक हो सकता है । शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर कम्प्यूटर शिक्षण और अधिगम के लिए कार्य करता है । यह शिक्षण व्यवस्था और शिक्षण के मूल्यांकन के कार्य करने मे समर्थ है । कम्प्यूटर का उपयोग हम निम्नलिखित रूपों मे करते हैं-

कम्प्यूटर सह अनुदेशन

कम्प्यूटर सह अनुदेशन के उदभव एवं विकास के सन्दर्भ में दो प्रमुख कारण दृष्टिगोचर होते हैं- (क) शिक्षाशास्त्रियों द्वारा तकनीकी यत्रो का शिक्षा मे प्रयोग करने की स्वभाविक इच्छा तथा (ख) अभिक्रमित अनुदेशन के सिद्धान्तो एव विधियो को कम्प्यूटर की सहायता से अधिक प्रभावकारी बनाने की कल्पना । इन्ही दो मूलभूत इच्छाओ से प्रेरित होकर कम्प्यूटर को इस प्रकार से अभिक्रमित करने का प्रयास किया गया कि वह मानव के साथ अधिगम के प्रक्रम मे परस्पर क्रिया करने मे सक्षम हो सके । शिक्षा जगत मे कम्प्यूटर सहअनुदेशन का सर्व प्रथम प्रयास 1961 मे इलिन्योय विश्वविद्यालय मे किया गया । वहां पर शिक्षाशास्त्रियों एवं तकनीकी विशेषज्ञो ने स्वत· शिक्षण प्रविधि के लिए अभिक्रम

तर्क की रचना की । इस शैली के विकास क्रम मे दूसरा मोड़ स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय के पैट्रिक सप्रेस के प्रयास द्वारा आया जब उन्होने 1966 मे प्राथमिक स्कूलो के बच्चों के लिए गणित एव वाचन पर कम्प्यूटर अभिक्रम निर्मित किया ।

कम्प्यूटर सह अनुदेशन की प्रमुख मान्यताएं

शिक्षा जगत मे इस शैली की भावी सम्भावनाओ के बढ़ने का कारण इसके मूल मे बहुत ही महत्वपूर्ण और ठोस शैक्षिक एव धारणाए हैं इससे सम्बन्धित कुछ प्रमुख मान्यताओ का उल्लेख नीचे किया जा रहा है–

❐ प्लोगर सल्डामा वेगा (1982) मे यह पाया कि कम्प्यूटर सह अनुसन्देशन के प्रयोग से विद्यार्थियों के उपलब्धि मे वृद्धि हुई ।

❐ कम्प्यूटर सह अनुदेशन का प्रयोग एक समय पर हजारो विद्यार्थियों के लिए किया जा सकता है । जिससे शिक्षा जगत मे व्याप्त गुणात्मक एव परिमाणात्मक दोनों ही प्रकार की समस्याओं का समाधान इसके द्वारा किया जा सकता है । इस शैली में छात्रो के व्यैक्तिक विभिन्नताओ के अनुरूप अनेक शाखात्मक अभिक्रम कम्प्यूटर में रखे जा सकते हैं । छात्रों की योग्यता और व्यवहार के स्तर को देखते हुए कम्प्यूटर छात्र के लिए अभिक्रम का चयन कर सकता है । अधिगमकर्त्ता अपनी योग्यता के अनुरूप अभिक्रम प्राप्त कर अपनी गति से अधिगम कर सकता है साथ ही साथ तत्काल व्यक्तिगत प्रतिपुष्टि भी प्राप्त कर सकता है । न्यू फिल्ड (1982) एय. टी. फेन्सन व अन्य (1982) ।

❐ प्रत्येक अधिगमकर्ता द्वारा अधिगम द्वारा अधिगम और परीक्षा के समय किया गये व्यवहार को कम्प्यूटर द्वारा स्वत. अभिलेखित किया जा सकता है । इस अभिलेख का शिक्षक तत्काल अध्ययन कर उसका मूल्याकन कर सकते हैं । तथा अधिगमकर्ता के लिए भावी अधिगम एवं शिक्षण योजना का पारूप तैयार कर सकते हैं शिक्षक कम्प्यूटर की सहायता से समय की बचत कर अन्य महत्वपूर्ण सृजनात्मक एव निर्देशनात्मक कार्यों मे उसका उपयोग कर सकते हैं । कोलिन (1984) ।

❐ कम्प्यूटर सह अनुदेशन का प्रयोग छात्रो की उपलब्धि बढ़ाने मे सहायक होता है । वों और येनी (1983) सलट एट आल (1984) ।

कम्प्यूटर द्वारा प्रदत्त शिक्षण की प्रक्रिया

छात्रो की वैयक्तिक विभिन्नताओ को ध्यान मे रखकर कई प्रकार के अभिक्रमों का निर्माण कर कम्प्यूटर मे सचित कर दिया जाता है । इस व्यवस्था के फलस्वरूप एक कम्प्यूटर तीस छात्रो को अपनी वैयक्तिक विभिन्नताओ के अनुरूप तीस प्रकार के अभिक्रमो का प्रस्तुतीकरण कर सकता है । कम्प्यूटर द्वारा प्रस्तुत अभिक्रम अथवा शिक्षण को दो पक्षो मे विभाजित किया जा सकता है । 1. पूर्व अनुवर्ग पक्ष– इस पक्ष मे कम्प्यूटर किसी विशिष्ट उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए उसी के अनुकूल किसी एक छात्र का चयन करता है । चयन की प्रक्रिया छात्र के पूर्व व्यवहार एवं पूर्व ज्ञान के आधार पर कम्प्यूटर द्वारा की जाती है ।

2. अनुवर्ग पक्ष– इसमें विशिष्ट उद्देश्य से किसी एक छात्र के लिए चुने गये अभिक्रम को कम्प्यूटर के द्वारा छात्र के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है । इस प्रस्तुतीकरण के सहारे छात्र सीखता है । अन्त मे कम्प्यूटर छात्र की उपलब्धियों का मापन भी करता है ।

कम्प्यूटर सह अनुदेशन से लाभ

कम्प्यूटर सह अनुदेशन अन्य सभी श्रव्य–दृश्य सहायक सामग्रियों की तुलना मे अधिक उत्तम सिद्ध हुआ है । समय बचाने के साथ–साथ छात्रो द्वारा की गयी अनुक्रियाओ का परिकलन भी कम्प्यूटर चमत्कारी ढग से करता है । विशिष्ट अधिगम परिस्थिति के बारे मे भी यह छात्रों को बताता है । इस प्रणाली की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता छात्र और अनुदेशनात्मक कार्यक्रम मे अत्यन्त गत्यात्मक परस्पर क्रिया का चलते रहना है जो अन्य किसी प्रणाली मे सम्भव नही है ।

कम्प्यूटर सह अनुदेशन की सीमाएं

कुल हैवी ने इसे "ज्यादा खर्चीली पन्ना वाली शैली मात्र" की सज्ञा दी है इस शैली की सबसे तीखी आलोचना इस बात की जाती है कि इसमे शिक्षक एव छात्र के संवेगात्मक एवं सौहार्दपूर्ण पारस्परिक शिक्षक को लौहमशीन में बदल देता है । छात्रों की शैक्षिक तथा मनोवैज्ञानिक समस्याओं का समाधान करने में भी कम्प्यूटर सक्षम नहीं है तथा भाषा सम्बन्धी आवश्यक दक्षता प्रदान करने मे असमर्थ है । साथ ही स्वतंत्र चिन्तन तथा सृजनात्मक क्रियाओ को बढ़ाने मे असमर्थ रहता है ।

कम्प्यूटर प्रबन्धित अनुदेशन

'कम्प्यूटर सहअनुदेशन जहां एक शिक्षक की भूमिका का निर्वाह करता है वही' कम्प्यूटर प्रबन्धित अनुदेशन एक प्रबन्धक का' इस अवस्था में कम्प्यूटर निम्नांकित कार्य करता है–

❐ कम्प्यूटर में ऐसे प्रोग्राम संग्रहित रहते हैं जो छात्रों के विशिष्ट कौशलों तथा ज्ञान का परीक्षण करते हैं ।

❐ छात्र को उसके योग्यताअनुसार कार्य तालिका प्रदान करना ।

❐ कार्य करने के सम्बन्ध में निर्देश देना ।

❐ छात्र की प्रगति का ताजा से जाता अभिलेख और उसकी सफलता या विफलता की सूचना कम्प्यूटर अपनी सग्रह प्रणाली मे रखता है ।

कम्प्यूटर के अन्य अनुदेशनात्मक उपयोग

❐ ड्रील और अभ्यास ❐ ट्यूटोरियल और संवाद
❐ अनुरूपेण एव क्रीडन ❐ सूचना प्रबन्धन

भारत में कम्प्यूटर शिक्षा का प्रसार

भारत मे 1984 मे सर्वप्रथम स्कूल एव कालेज स्तर पर कम्प्यूटर शिक्षा का प्रारम्भ किया गया है ।

छठीं पंचवर्षीय योजना में अन्तिम वर्ष (1984–85) में शिक्षण सस्थाओ में कम्प्यूटर की शिक्षा के शुभारम्भ के लिए भारत सरकार के शिक्षा मत्रालय ने कम्प्यूटर लिटरेसी उण्ड स्टडीज इन स्कूलस नामक एक पायलट प्रोजेक्ट अपने हाथ में लिया । इस प्रोजेक्ट में डिपार्टमेन्ट आफ इलेक्ट्रानिक्स, इण्डिय न इन्सीट्यूट आफ टेक्नालॉजी, एन सी . ई . आर . टी , सेन्ट्रल बोर्ड आफ सेकेण्ड्री एजूकेशन और केन्द्रीय विद्यालय सगठन का सहयोग था ।

क्लास ने 1984 मे स्कूल और कालेज स्तर पर कम्प्यूटर शिक्षा प्रदान करने हेतु निम्न उद्देश्य निर्धारित किया–

1. छात्रों के कम्प्यूटर तथा उसकी उपयोगिता के विषय मे समान्य ज्ञान करना ।

2. मानवजीवन के प्रत्येक आयाम मे कम्प्यूटर

के प्रयोग के क्षेत्र विस्तार से छात्रों को परिचित कराना ।

इस प्रोजेक्ट में शामिल सदस्यों ने सबसे पहले उच्चतर माध्यमिक स्तर फिर धीरे-धीरे माध्यमिक तथा प्राथमिक शिक्षा स्तर तक कम्प्यूटर के प्रयोग की सिफारिश की है ।

यद्यपि कम्प्यूटर का प्रयोग विश्व के सभी विकसित देशो मे लगातार बढ़ाता जा रहा है विकासशील देश भी इसका अधिकाधिक प्रयोग कर रहे हैं । भारत मे भी कम्प्यूटर के प्रयोग पर अधिकाधिक बल दिया जा रहा है ताकि विकसित देशों की तरह यहां भी इसका समुचित लाभ उठाया जा सके । लेकिन भारत की गरीबी, अशिक्षा तथा नौकरशाही मे व्याप्त भ्रष्टाचार इस मार्ग में बाधा उत्पन्न कर रहा है । भूतपूर्व प्रधान मंत्री स्व. राजीव गांधी का देश को एक्कीसवीं शताब्दी मे ले जाने के सपने को अगर साकार करना है, देश को प्रगति के पथ पर आगे बढ़ाना है तो हमें शिक्षित नागरिको की नई फसल तैयार करना होगी और प्रभावशाली शिक्षण के लिए दक्ष शिक्षक के साथ-साथ समुचित मात्रा में कक्षा-कक्ष के लिए दृश्य-श्रव्य सामग्रियों तथा मानव अभियान्त्रिकी सामग्रियो का उपाय करना होगा ।

शोध छात्र,
शिक्षा संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी

भारतीय शिक्षा पर राजनैतिक प्रभाव

❐ डा. वेद प्रकाश अग्रवाल

किसी देश की राजनैतिक दशा ने हमेशा ही तत्कालीन शिक्षा संगठन पर अपना प्रभाव डाला है । देश, काल तथा राजनैतिक परिस्थिति के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य सदा परिवर्तित होते आये हैं । प्राचीनकाल में राजनैतिक सगठन आज से भिन्न थे, अत. शिक्षा के उद्देश्य भी आज से भिन्न थे । समय-समय पर तत्कालीन राजनैतिक विचार धारा के आधार पर शिक्षा के उद्देश्यो को निर्धारित किया है ।

जिस देश का जैसा वातावरण रहता है उसी के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य बना जाता है । जिस देश के व्यक्ति प्रजातन्त्रवाद के भक्त हैं वहाँ की शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तियों को उत्तम नागरिक बनाना है । जहाँ समाजवाद फैला हुआ है वहाँ की शिक्षा का लक्ष्य ऐसे व्यक्ति तैयार करना है जो समाज के हित के सामने व्यक्तिगत लाभ को छोड़ दें । जिस देश में एक सत्तावाद का बोलबाला है वहाँ की शिक्षा का उद्देश्य ऐसे नागरिक तैयार करना है जो शासकों के प्रति श्रद्धा रखें और उनकी आज्ञा मानने को सदा तैयार रहे । संसार के जिन देशो ने, जिनमे जर्मनी प्रमुख है तानाशाह या एक सत्तावाद की स्थापना हुई, वहाँ शिक्षा को पूर्णतया नियन्त्रित कर दिया गया । ऐसे देशो मे शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का विकास न करके राज्य का विकास करना माना गया । राज्य की आवश्यकतों, आदर्शे तथा सिद्धान्तों के अनुसार ही शिक्षा प्रणाली का सगठन किया गया । जर्मनी, इटली, जापान तथा रूस ने अपने यहाँ शिक्षा व्यवस्था तथा विद्यालयो का संगठन इसी उद्देश्य को सामने रखकर किया । रूस के अन्दर शिक्षा का उद्देश्य जनता के अन्दर साम्यवादी भावनाये भरना है । वहाँ का पाठ्यक्रम राज्य द्वारा नियन्त्रित रहता है । इटली की फासिस्ट सरकार भी शिक्षा का उद्देश्य नागरिको को राष्ट्र के प्रति अपार श्रद्धा, शासक की आज्ञा का पालन, अनुशासन, आदि की भावनाओ का विकास करना मानती थी ।

प्रचीनकाल में भारत की शिक्षा पर राजनैतिक प्रभाव

हमारे देश मे भी राजनैतिक परिवर्तनो ने शिक्षा के उद्देश्यो और संगठन पर प्रभाव डाला । प्राचीन भारत मे राजनीति सदा धर्म से प्रभावित रहती थी । राजा किसी भू-भाग पर राज्य धार्मिक कर्तव्य समझ कर करते थे । अत. इस युग मे शिक्षा का स्वरूप भी धर्म प्रधान था । शिक्षा द्वारा अज्ञान दूर करने का प्रयत्न किया जाता था और अज्ञान दूर होने पर मोक्ष की कामना की जाती थी । जीवन का प्रत्येक क्षेत्र चाहे आर्थिक हो, चाहे राजनैतिक या सामाजिक सब पर धर्म की झलक थी । आर्यो के जीवन का प्रमुख उद्देश्य था – मोक्ष की प्राप्ति । अत. जीवन की प्रत्येक क्रिया मोक्ष प्राप्ति के लिये सगठित की जाती थी । इस भावना का शिक्षा पर भी प्रभाव पड़ा । उस काल मे शिक्षा को केवल ज्ञान प्राप्त करने का माध्यम नही माना जाता था । अपितु

शिक्षा मोक्ष प्रापत करने का साधन मानी जाती थी । परिणाम स्वरूप शिक्षा के प्रत्येक अग पर धार्मिक क्रियाओं का आवरण डाला जाता था । पाठ्यक्रम मे भी धार्मिक विषयो की प्रधानता रहती थी । राजा महाराजा विद्यालयों का निर्माण केवल धार्मिक कर्तव्य मानकर ही करवाते थे ।

मध्य काल

मुस्लिम शासन हमारे देश मे पर्याप्त काल तक रहा । इस युग मे मुस्लिम शासको ने भारतीय शिक्षा के स्वरूप को बदलकर नवीन शिक्षा को जन्म दिया । मुसलमान शासको का भारत मे प्रमुख राजनैतिक उद्देश्य मुस्लिम शासन की नींव दृढ़ करना तथा दूसरे धर्मावलम्बियो मे इस्लाम का प्रचार करना था । अत. इस काल मे शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य दो थे — प्रथम सैनिक और पदाधिकारियो को शिक्षा प्रदान करना तथा द्वितीय–शिक्षा द्वारा इस्लाम धर्म का प्रचार । अत मुस्लिम शासको ने जहाँ कही भी मकूतब या मदरसो का निर्माण करवाया, इन्ही उद्देश्यो को सामने रखकर करवाया ।

अंग्रेजी काल मे

अंग्रेजी के भारत मे आने पर देश की राजनैतिक स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुये । अंग्रेजो ने भारत मे अपने शासन की नींव दृढ़ करने के साथ–साथ यहाँ की आर्थिक तथा राजनैतिक दशा मे भी पूर्ण रूप से परिवर्तन किये फलत. परम्परागत शिक्षा प्रणाली भी अछूती न रह सकी । अंग्रेजो ने भारतीय शिक्षा प्रणाली को नष्ट करके अपने हितो की पूर्ति के लिये नवीन शिक्षा प्रणाली को प्रसारित करना आरम्भ कर दिया ।

ब्रिटिश कर्मचारियो ने हमारे देश मे सार्वजनिक शिक्षा के प्रसार की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया क्योकि सार्वजनिक शिक्षा का प्रसार हो जाने पर उनका राजनैतिक अस्तित्व खतरे मे पड़ सकता था । कम्पनी के संचालको को भारतीयों के बिना काम चलाने मे असुविधा होती थी । उन्हे अपने व्यापारिक तथा प्रशासकीय कार्यो के लिय क्लर्कों की आवश्यकता होती थी । अत उन्होने शिक्षा का प्रसार इसी उद्देश्य को अपने सामने रखकर किया । ब्रिटिश सरकार ने शिक्षा प्रसार की नीति को सीमित रखा क्योकि उन्हे केवल ऐसे शिक्षित भारतीयो की आवश्यकता थी जो कि अंग्रेजी साम्राज्य की नींव को दृढ़ करने मे सहायक हो सकें । इस कारण उन्होने शिक्षा मे निस्चन्दन सिद्धान्त को अपनाया । इस सिद्धान्त के अनुसार "जनसाधारण को थोडी सी शिक्षा देने की अपेक्षा उच्च वर्ग के कुछ व्यक्तियों को अधिक शिक्षा देना उपयुक्त होगा ।" इस शिक्षा सगठन का हमारे देश पर क्या प्रभाव हो सकता था, यह मैकाले के उन शब्दो से ज्ञात हो जायेगा "हमारी इस शिक्षा द्वारा एक ऐसे वर्ग की सृष्टि होगी जो रक्त और वर्ग मे भारतीय होगा परन्तु पसन्द विचार आचरण और विद्वता मे अंग्रेज होगा ।" इस प्रकार शिक्षा को केवल उच्च वर्ग के लिये ही उपयुक्त माना गया । फलस्वरूप देश का अधिकाश भाग निरक्षता के अन्धकार मे ही डूबा रहा । जो कुछ भी प्रयत्न शिक्षा के क्षेत्र मे ब्रिटिश युग में किये गये वे केवल उच्च वर्ग को शिक्षित करने से शीघ्र ही हमारे देश मे एक ऐसा वर्ग उत्पन्न हो गया जो केवल रंग रूप मे ही भारतीय था । यह वर्ग अंग्रेजी साम्राज्य की छत्र छाया मे ही पनपा और उनकी रक्षा करना अपना परम कर्तव्य समझता था । जनसाधारण से इस वर्ग का कोई सम्बन्ध नही रहा । इस वर्ग के लोगों का उद्देश्य सरकारी नौकरी प्राप्त करना हो गया । दूसरे अंग्रेजो को शिक्षित भारतीय की आवश्यकता केवल आफिस या थोड़ी बहुत प्रशासकीय कार्यो के लिये ही पड़ती थी, अत· शिक्षा केवल पुस्तकीय तथा

साहित्यिक ही बनी रही । तकनीकी तथा व्यवसायिक शिक्षा के प्रति अंग्रेज सरकार पर्याप्त काल तक उदासीन रही ।

अंग्रेजी शिक्षा का सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि भारतीयो के विचारो तथा दृष्टिकोणो मे क्रान्तिकारी परिवर्तन हुये । पाश्चात्य साहित्य के अध्ययन से उनमें एक विशाल तथा व्यापक जागृति उत्पन्न हुई जिसने हमारे देश के भाग्य को ही पलट दिया । 1885 मे राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हो गयी थी । इस संस्था ने देश के अन्दर एक नवीन चेतना का सचार कर दिया । उधर बंगाल आन्दोलन ने भारतीयो को राष्ट्रीय भावनाओं की ओर भी भड़का दिया यद्यपि स्वदेशी आन्दोलन पूर्णत्या राजनैतिक था परन्तु इसका प्रभाव भारतीय शिक्षा पर भी पड़ा । स्वदेशी आन्दोलन का प्रमुख उद्देश्य था विदेशी माल का बहिष्कार कर देश मे बने माल को प्रयोग में लाना था । अत. भारतीय नेताओ ने निश्चय किया कि शिक्षा के क्षेत्र मे भी विदेशी विद्यालयो का बहिष्कार कर उनके स्थान पर स्वदेशी विद्यालयों की स्थापना की जाये । इस विचार धारा के कारण ही देश मे राष्ट्रीय शिक्षा प्रसार की योजना का सूत्रपात हुआ । लाहौर में "दयानन्द एंग्लो वैदिक कालेज", बनारस मे सेन्ट्रल हिन्दू कालेज तथा हरिद्वार में गुरुकुल आदि की स्थापना राष्ट्रीय शिक्षा के प्रसार के लिये की गयी । बगाल मे राष्ट्रीय विद्यालयो का जाल सा बिछ गया कलकत्ता के अन्दर एक नेशलन कालेज की स्थापना की गयी इसमे राष्ट्रीय शिक्षा के निम्नलिखित प्रमुख सिद्धान्त स्वीकार किये गये–

भारतीयों द्वारा नियन्त्रण– देश के नेताओं के अनुसार शिक्षा पर भारतीयों का नियन्त्रण होना चाहिये । विदेशी नियत्रण में शिक्षा किसी भी दशा में पनप नहीं सकती ।

दासता की भावना का अन्त करना– राष्ट्रीय शिक्षा का मूल आधार छात्रो में स्वतन्त्र तथा भारतीय भावनाओ का विकास कर उनके मस्तिष्क से पाश्चात्य भावनाओ का अन्त करना था ।

देश प्रेम की शिक्षा– तत्कालीन शिक्षा का उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्य के भक्तो की सख्या बढ़ाना था परन्तु उसके विपरीत राष्ट्रीय शिक्षा का उद्देश्य छात्रो में राष्ट्र के प्रति प्रेम उत्पन्न कर देश की परतन्त्रता के बन्धन से मुक्त करना था ।

पाश्चात्य साहित्य और विज्ञान का अध्ययन– देशवासियो को संकीर्णता और आत्मविश्वास से मुक्ति दिलाने के लिये यह आवश्यक माना गया है कि वे बाह्य देशो से अपना सम्पर्क स्थापित करें । अत इसके लिये यह आश्यक था कि भारतीयो को पाश्चात्य साहित्य और विज्ञान का सर्म्पक कराया जाये ।

व्यवसायिक शिक्षा पर बल– ब्रिटिश कालीन शिक्षा का सबसे बड़ा दोष था कि उसमे व्यवसायिक शिक्षा को विशेष महत्व नहीं दिया जाता था । भारतीय नेताओ ने राष्ट्रीय शिक्षा मे व्यावसायिक शिक्षा को उचित स्थान दिया । राष्ट्रीय नेताओ के अनुसार बिना व्यवसायिक शिक्षा के देश का आर्थिक विकास नहीं हो सकता ।

इस प्रकार हम देखते है कि राष्ट्रीय जागृति से हमारी शिक्षा प्रभावित हुये बिना न रही । मांटेन चेक्सफोर्ड योजना तथा जलियांवाला बाग के हत्याकाड ने भारतीयों में ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति रोष भर दिया । 1 अगस्त 1920 को महात्मा गाँधी के नेतृत्व मे भारतीय जनता ने असहयोग आन्दोलन छेड़ दिया । गाँधी जी ने कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन मे जनता से अपने बालकों को पाश्चात्य विद्यालयों से हटा लेने की माँग की । सहस्त्रो छात्रो ने पाश्चात्य

शिक्षा प्रसार करने वाली सस्थाओ का बहिष्कार कर दिया । लेकिन ऐसे छात्रो की शिक्षा का प्रबन्ध भी करना आवश्यक था । अत· राष्ट्रीय नेताओं के प्रयत्नों से देशभर में अनेको राष्ट्रीय संस्थाओ की पुन स्थापना की गयी । पूना, अहमदाबाद, लाहौर, पटना, बनारस के विद्यापीठ जिनमें उल्लेखनीय है । राष्ट्रीय आन्दोलन का एक लाभ यह हुआ कि देश के तमाम लोग प्रसार के लिये आर्थिक सहायता प्रदान करना अपना कर्तव्य स्वीकार करने लगे । सर्वसाधारण जनता भी शिक्षा के महत्व को समझने लगी । 1931 ई. में नि·शुल्क अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के सिद्धान्त अपनाने पर कांग्रेस ने पुन· बल दिया । 1937 ई. मे गाधी जी ने जनसाधारण के लिये "वर्षा शिक्षा योजना" का सूत्रपात किया । योजना के अन्दर हस्तकार्य के द्वारा प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने की बात थी । आगे चलकर यह योजना वेसिक शिक्षा के नाम से प्रसिद्ध हुई । इस योजना के अन्दर शिक्षा की अवधि सात वर्ष की रखी गयी तथा शिक्षा 6 वर्ष से 14 वर्ष तक के बालकों के लिये नि·शुल्क तथा अनिवार्य करने को कहा गया । भाषा का माध्यम अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी को रखा गया छात्रो द्वारा बनायी गयी वस्तुओ को बेचकर विद्यालय पर होने वाले व्यय को किसी सीमा तक पूरा करने की आशा की गयी । वास्तव मे बेसिक शिक्षा पूर्ण रूप से देश की तत्कालीन आवश्यकताओ की पूर्ति करती थी । इस योजना का आधार प्रत्येक दृष्टिकोण से राष्ट्रीय था । देश के स्वतन्त्र होने पर बेसिक शिक्षा राष्ट्रव्यापी बनाने का प्रयत्न किया गया ।

स्वतन्त्रता के पश्चात

1947 के पश्चात् देश की राजनैतिक परिस्थिति मे परिवर्तन आया और उसके साथ–साथ शिक्षा के स्वरूप और उद्देश्य मे भी परिर्वन करने की आवश्यकता महसूस हुई । स्वतन्त्रता प्राप्ति के कुछ काल पश्चात् ही भारतीय नेताओ ने अधक परिश्रम से नवीन संविधान निर्मित किया । भारत मे प्रजातन्त्र की स्थापना की गयी । संविधान के अन्दर प्रत्येक नागरिक को न्याय, स्वतन्त्रता समानता और भातृत्व के अधिकारो से प्राप्त किये जाने का विस्तृत उल्लेख किया गया है,

"हम भारत के लोग भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व–सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बनाने के लिये तथा उसके समस्त नागरिकों को सामजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धैर्य और उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त करने के लिये तथा उन सब मे व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता बढ़ाने के लिये यह दृढ़ संकल्प होकर इस संविधान को अंगीकृत अधिनियमित और आत्मार्पित करते है"

संविधान के अन्दर वर्णित मौलिक अधिकारों के द्वारा भारत के नागरिक को विशाल और व्यापक अधिकार प्रदान किये गये है । परन्तु देश मे प्रजातन्त्र की स्थापना हो जाने से भारत के नागरिक के ऊपर एक महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व भी आ गया है । नागरिक को शासन मे भाग लेने का अधिकार मिल जाने से प्रत्येक नागरिक को उन अधिकारो के योग्य बनने की आवश्यकता है । नागरिको की योग्यता तथा ईमानदारी पर ही जनतन्त्रात्मक प्रणाली सफल हो सकती है । परन्तु देश का प्रत्येक नागरिक जनम्जात योग्यता लेकर नही आता । अत ऐसी दशा मे राष्ट्र का कर्तव्य हो जाता है कि वह अपने नागरिको को योग्य तथा शिक्षित बनाये परन्तु यह कार्य बिना उचित शिक्षा प्रसार के नहीं हो सकता । वास्तव मे जनतंत्र की सफलता शिक्षा के स्तर पर निर्भर है । बिना शिक्षा के कोई भी नागरिक अपने

कर्तव्य को भली प्रकार से नहीं समझ सकता उसे कर्तव्य का ज्ञान कराने के लिये यह आवश्यक है कि राष्ट्र जनतन्त्रात्मक आधार पर शिक्षा प्रदान करने का प्रबन्ध करे ।

भारतीय सविधान के अनुसार शिक्षा का दायित्व राज्यों को सौंपा गया है परन्तु कुछ विश्वविद्यालयो उच्च शिक्षा केन्द्र, माध्यमिक विद्यालय और राष्ट्रीय महत्व की शिक्षा संस्थायें केन्द्र के अधीन संचालित करने की भी व्यवस्था की गयी है । इस व्यवस्था से शिक्षा प्रशासन में सवैधानिक समस्याये उत्पन्न हुई है । राज्य की सस्थाओं की अपेक्षा केन्द्रीय संस्थाये धनाभाव से पीड़ित नही रहती उनका शैक्षिक स्तर भी अच्छा रहता है । अतः राज्यो में यह खीचातानी चलती है कि कोई राष्ट्रीय महत्व की शिक्षा सस्था किस राज्य मे स्थापित हो ।

राज्य में 14 वर्ष तक के बालको और बालिकाओ की शिक्षा व्यवस्था तीन स्तरो क्रमश केन्द्रीय, प्रादेशिक तथा स्थानीय स्तर पर चलती है । भारतीय सविधान की धारा 45 मे इसका उत्तरदायित्व राज्य सरकारों को सौपा गया है । सब से दुखद स्थिति तो यह है कि केन्द्र सरकार ने संविधान की दुहाई देकर अधिक खर्चीली योजनायें राज्य सरकारों पर थोप दीं तथा अधिक आय देने वाली योजनाओ पर स्वयं कब्जा जमा लिया । परिणाम स्वरूप राज्यों की परियोजनाये धन के अभाव मे अधूरी ही रहने लगी तथा शिक्षा का विकास अवरूद्ध होता चला गया । शिक्षा की वर्तमान दयनीय स्थिति इसी का परिणाम है ।

भारतीय शिक्षा का यह दुर्भाग्य ही है कि अनेक बार शिक्षा शास्त्रियो, राजनेताओ एव प्रशासनिक अधिकारियो द्वारा शिक्षा मे परिवर्तन की आवाज उठायी गयी किन्तु भारतीय शिक्षा के हिस्से में केवल आश्वासन तथा सहानुभूति ही आयी ।

वर्ष 1986 मे काग्रेस सरकार द्वारा संरचना 10+2+3 को पूरे देश में लागू किये जाने का निर्णय लिया गया तथा इसके क्रियान्वयन से पूर्व पूरे देश मे शैक्षिक सम्मेलन किये गये । उच्चस्तरीय विचार विर्मश हुआ तथा शिक्षको को भी प्रशिक्षित किया गया और इसे पूरे देश मे एक साथ लागू किये जाने का निर्णय भी प्राय· प्रत्येक प्रदेश की सरकार द्वारा लिया गया, परन्तु केन्द्र मे काग्रेस सरकार के जाते ही जनतादल की सरकार ने 10+2+3 शिक्षा संरचना के क्रियान्वयन पर रोक लगा दी तथा इसके मूल्यांकन हेतु श्री राममूर्ति की अध्यक्षता मे एक सीमित गठित की गयी और अन्तत· यह नीति भी पूर्णत· राजनीति का शिकार होकर अपने यौवन पर न पहुँच सकी ।

देश में कोई भी शिक्षा संरचना अथवा शिक्षा नीति तब तक सफल नही हो सकती जब तक उस पर किसी राजनीतिक पार्टी का वर्चस्व रहेगा । यदि देश का प्रत्येक नागरिक चाहे वह किसी भी जाति, धर्म राजनेकि पार्टी तथा प्रान्तीयता से जुड़ा हो अपना अस्तित्व त्यागकर, देश की शिक्षा के विकास की ओर ध्यान दे तो हमारी शिक्षा को नयी दिशा तथा चेतना मिल सकती है अन्यथा राजनैतिक पार्टियो से पोषित शिक्षा व्यवस्था इसी तरह गिरगिट की तरह रग बदल बदलकर केवल स्वार्थ पूर्ति का एक माध्यम बनकर रह जायेगी तथा हमारा देश संसार के अन्य प्रगतिशील देशो से शिक्षा मे बहुत पीछे रह जायेगा । □□

वरिष्ठ प्रवक्ता, शिक्षक प्रशिक्षण विभाग,
टी.टी. कालेज, सीतापुर

शिक्षा तथा जनसंख्या

❑ राजेश कुमार सिह

जब हम शिक्षा की बात करते हैं, और उसको हम किसी भी पहलू से जोड़ते हैं तो सर्वप्रथम हमे यह जान लेना चाहिए, कि शिक्षा की हमारे जीवन में क्या उपयोगिता है ? यह क्यो जरूरी है ? शिक्षा का उद्देश्य मुख्यत. दो भागों में बटा है, पहला है सामाजिक व दूसरा व्यक्तिगत । चूकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, और व्यक्ति से ही समाज बनता है, समाज से हमारा देश निर्मित है, अतः दोनो उद्देश्य एक दूसरे के पूरक है ।

सामाजिक उद्देश्य मनुष्य को देश का अच्छा नागरिक बनाना है, जिसका समाज में एक दूसरे के प्रति अच्छा व्यवहार हो तथा विवेकशील हो एव एक दूसरे की मदद कर सके । समाज में उसकी उपयोगिता सिद्ध हो सके । उसका कार्य समाज के प्रति, देश के प्रति एव मानवता के प्रति एक योगदान बन सके ।

दूसरी तरफ व्यक्तिगत उद्देश्य से हमारा तात्पर्य यह है कि वह स्वयं स्वस्थ रहना सीखे, रह सके, अपनी आर्थिक उन्नति कर सके, उसके अन्दर मानवीय एव नैतिक मूल्यों का विकास हो, अपनी मानसिक उन्नति कर सके, अपनी सद्‌बुद्धि, विवेक व ज्ञान का विकास कर सके ।

शिक्षित मनुष्य ही, अपनी सभी समस्थाओ का विवेकपूर्ण ढ़ग से निराकरण कर सकता है, चाहे उसकी अपनी व्यक्तिगत समस्या हो, समाज की समस्या हो, देश या विश्व की समस्या हो । इस प्रकार हम देखते हैं कि मनुष्य को अपना बहुमुखी विकास करने के लिए शिक्षित होना आवश्यक है ।

आज जब कि टेक्नालॉजी के क्षेत्र मे निरन्तर क्रान्ति पैदा वाली आवश्यकताये मनुष्य को हैं भारत के सामने, हमारे अपने देश के सामने कई घरेलू चुनौतिया भी है जिसमे अति जनसख्या प्रमुख है । देश इन बाहरी व भीतरी चुनौतियो का जितनी सफलतापूर्वक सामना करेगा, उतना ही कल के नागरिको के जीवन का स्तर बढ़ेगा, इन चुनौतियो का सामना करने के लिए शिक्षा ही सबसे प्रभावशाली साधन है । केवल शिक्षा ही गतिशील, सवेदनशील व ससुगठित राष्ट्र का निर्माण करने के लिए लोगो को आवश्यक ज्ञान, प्रयोजन की चेतना और विश्वास की भावना से ओत-प्रोत कर सकती है, ताकि राष्ट्र अपने लोगो का जीवन बेहतर, भरा पूरा और अधिक अर्थपूर्ण बनाने के लिए साधन प्रदान करने के लायक बन सके ।

जनसंख्या शिक्षा का अर्थ

जनसंख्या शिक्षा एक शैक्षिक प्रयास है । जनसख्या शिक्षा किसी व्यक्ति के लिए जीवन पर्यन्त तक आवश्यक है । जिसके द्वारा विभिन्न वर्गो विशेषकर छात्र-छात्राओं को विश्व के सन्दर्भ मे, देश, प्रदेश तथा क्षेत्र की जनसख्या स्थिति, जनांकिकीय तत्वो, जनसंख्या-पर्यावरण के सम्बन्ध, जनसख्या वृद्धि

का आर्थिक व सामाजिक विकास पर प्रभाव आदि का बोध कराया जा सकेगा। साथ ही जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न समस्याओं व जन सामान्य के जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों के विषय में भी जागरूक कराया जा सकेगा।

जनसख्या शिक्षा को परिभाषित करने वाले प्रमुख विचार निम्न है–

विडरमैन के अनुसार, "जनसंख्या शिक्षा एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा छात्र जनसंख्या एवं उसकी विशेषताओ, जनसंख्या वृद्धि के कारण व परिणाम तथा इन परिणामों से देश पर पड़ने वाले प्रभावों का ज्ञान प्राप्त करता है।

जनसंख्या सन्दर्भ संस्थान ने जनसख्या शिक्षा के बारे में व्यापक दृष्टिकोण अपनाते हुए कहा है कि– "जनसंख्या शिक्षा विशिष्ट आयु वर्ग तक सीमित नहीं है। इसके द्वारा जनसंख्या की विस्फोटक स्थिति, जनसख्या घनत्व में प्राप्त व्यापक असमानता जनसख्या के सरचनात्मक स्वरूप में परिवर्तन की प्रवृत्ति एवं उसके प्रभाव का विश्लेषण, व्यक्ति, परिवार, समाज व पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावो को आकलित करने का प्रयत्न किया जाता है।"

मसियाला के अनुसार, "जनसख्या शिक्षा, जनसंख्या की प्रकृति तथा जनसंख्या परिवर्तन के प्राकृतिक व सांस्कृतिक परिणामों के बारे मे जाच विधि के विश्वसनीय ज्ञान को सीखना व सिखाना है।"

जनसख्या शिक्षा के उद्देश्य

देश की बढ़ती हुई जनसंख्या को ध्यान मे रखते हुए जनसख्या शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य हो सकते हैं–

❒ जनसंख्या वृद्धि की गति से परिचित कराना।

❒ देश तथा विश्व की जनसख्या वृद्धि के स्वरूप एवं उसकी सरचना का ज्ञान देना।

❒ जनसंख्या वृद्धि का हमारे परिवार, समाज, देश तथा विश्व के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा, रा नैतिक जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करना।

❒ यह धारणा विकसित करना कि जीवन स्तर को उन्नत बनाने हेतु परिवार के आकार को सीमित करना आवश्यक है।

जनसख्या तथा परिवार सीमित करने के लिए प्रभावी साधनो के उपयोग के महत्व से परिचित कराना।

❒ जनसख्या वृद्धि एव उत्पादन के मध्य सन्तुलन का ज्ञान कराना।

❒ देश के आर्थिक साधनो का विकास तथा जनसंख्या वृद्धि की गति को रोकने वाली विधियो का ज्ञान कराना।

❒ परिवार–आकार के मूल मे निहित रूढ़िवादी भावना को समाप्त करना।

❒ पर्यावरणीय सन्तुलन का ज्ञान कराना।

❒ जनसंख्या घनत्व मे तीव्र वृद्धि का व्यक्ति के जीवन एवं पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावो का ज्ञान कराना।

❒ विद्यालयो मे जनसख्या शिक्षण के लिए उपयुक्त सामग्रियों को तैयार करना।

❒ विद्यालयो मे जनसख्या शिक्षा के सम्बन्ध मे क्रियात्मक अनुसधान की व्यवस्था करना।

जनसंख्या शिक्षा और पाठ्यक्रम

संयुक्त राष्ट्र संघ के दो प्रमुख जनांकिकी वेत्ताओं डब्ल्यू. यस. थाम्पसन तथा फिलिप एम.

हाउसर ने जनसंख्या सम्बन्धी अध्ययन को प्राथमिक व द्वितीयक स्तर की शिक्षा में महत्त्वपूर्ण स्थान दिलाने का प्रस्ताव किया है ।

जनसख्या शिक्षा की विषय सामग्री को प्रो. जे ई जयसुरिया ने निम्नलिखित बिन्दुओ के अन्तर्गत व्यवस्थित करने का सुझाव दिया है ।

जनसख्या सम्बन्धी आकड़ो का सग्रहण एव विश्लेषण–

इसके अन्तर्गत निम्नलिखित उप बिन्दुओ का समावेश होना चाहिए ।

- आंकड़ो के सग्रहण की विधि
- जन्म, मृत्यु व प्रव्रजन की जनाकिकीय प्रक्रिया ।
- जन्म, मृत्यु व वृद्धि दरो की गणना ।
- जनसंख्या की आयु सरचना ।
- जन्म, अस्वस्थता, मृत्यु के उत्तदायी कारक ।
- जन्म, तथा मृत्यु सूचकाक ज्ञात करना ।
- जनसख्या वृद्धि के प्रवृत्ति का अध्ययन ।

जनसंख्या वृद्धि तथा मानवीय विकास

इसका अध्ययन दो स्तरो पर किया जाना चाहिए । **प्रथम**–वृहद स्तर पर, **द्वितीय**– सूक्ष्म स्तर पर प्रथम के अनतर्गत राष्ट्रीय स्तर पर जनसख्या वृद्धि व निम्नांकित तत्वों के मध्य अर्न्तसम्बन्धो का अध्ययन करना ।

• भूमि संसाधन • कृषि • खाद्यान्न • आवास • रोजगार • आर्थिक विकास • शौक्षिक विकास • स्वास्थ्य सेवाओ का विकास ।

द्वितीय के अन्तर्गत परिवार के स्तर पर, परिवार के आकार का जीवन के गुणवत्ता पर पड़ने वाले प्रभाव का तथा व्यक्तिगत विकास के विधि पक्षो का अध्ययन किया जाता है । इसके अतिरिक्त नगरीकरण की समस्यायें, तथा मनुष्य की यौन का शारीरिक, सामाजिक पक्षो एवं जनसंख्या नियोजन जैसे अध्ययन भी सम्मिलित हें ।

जनसंख्या शिक्षा एवं शैक्षणिक संस्थाओं की भूमिका

शुरू मे जनसख्या शिक्षा को परिवार नियोजन और यौन शिक्षा से सम्बन्धित समझा जाता था, परन्तु अब जनसंख्या शिक्षा की अवधारणा, जीवन को सुखी बनाने तथा जीवन मूल्यो की गुणवत्ता को ऊँचा बनाने वाली शिक्षा के रूप मे स्वीकृत की गयी है ।

आज आवश्यकता इस बात की है कि जनसंख्या शिक्षा के उद्देश्यो एव लक्ष्यों की जानकारी देने के लिए, इसे विद्यालयो, महाविद्यालयों एव विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों मे अनिवार्य रूप से सम्मिलित कर विद्यार्थियो को शिक्षित किया जाये । विद्यालय समाज के ऐसे अपरिपक्व एव अनुभवहीन वर्ग के साथ अनवरत जुड़े रहते हैं जो प्रौढ़ होकर अपना दायित्व निर्वाह करेंगे, परन्तु अभी इनकी आयु तथा अनुभव इस दायत्वि को समझने मे सक्षम नहीं है । वे शिक्षा के द्वारा ही अपने को तैयार करते हैं चूकि जनसख्या वृद्धि, बालक के व्यक्तिगत, पारिवारिक, राष्ट्रीय तथा सम्पूर्ण विश्व के मानवीय जीवन को सीधे या अप्रत्यक्ष रुप से प्रभावित करती है अत इस दृष्टि से जनसख्या शिक्षा को विद्यालयो, महाविद्यालयों, तथा विश्वविद्यालयों की शिक्षा का अभिन्न अग बनाया जाना बहुत जरूरी है ।

जनसंख्या वृद्धि एवं आर्थिक प्रगति

भारत जैसे विकासशील देश मे जहा जनसंख्या वृद्धि और आर्थिक प्रगति दोनों की दरे सामान्य से अपेक्षाकृत अधिक हैं, दिन–प्रतिदिन पर्यावरणीय प्रदूषण

बढ़ता जा रहा है । अन्न पैदा करने के नये-नये तरीके रासायनिक खादें, कीट-नाशक दवाये आदि उपज बढ़ाने के लिए अधिक प्रयोग में लाये जा रहे हैं । इस प्रकार औद्योगीकरण के कारण कूड़ा करकट का बढ़ना, कल-कारखानो से निकलने वाले धुएँ का सम्पूर्ण वातावरण में छा जाना आदि ऐसे कारण हैं जो वातावरण को प्रदूषित कर रहे हैं । यहाँ यह बताना भी अतिसयोक्ति न होगी कि ऊर्जा शक्ति की अधिक माग एव पूर्ति में कमी से होने वाले असन्तुलन एव ऊर्जा-विखण्डन ने प्रदूषण को बढ़ाया है । यह सच है कि आर्थिक प्रगति तथा देश के नागरिको के जीवन स्तर को ऊपर उठाने के लिए औद्योगीकरण आवश्यक है किन्तु अन्य सब साधनों के अनुपात में ही यदि यह भी बढ़ता है तो वह वातावरण को शान्त रख सकता है अन्यथा कोलाहल की विषम परिस्थिति का रूप ले सकता है ।

इसमे संदेह नहीं कि बढ़ती हुई जनसख्या के लिए अधिक अन्न और अधिक अन्न के लिए अधिक कृत्रिम साधन आवश्यक हैं । यह भी सत्य है उपज को बढ़ाने के लिए और नुकशान से बचने के लिए कीटनाशक दवाइयो, रासायनिक खादों आदि का अधिक उपयोग किया जाता है, जिसका प्रभाव धरती की अन्न पैदा करने की क्षमता पर उल्टा पड़ता है ।

देश मे 1911 में अशिक्षितों की संख्या लगभग 19 करोड़ थी जो 1981 मे बढ़कर 44 करोड़ हो गयी है । विश्व बैंक की एक रिपोर्ट के अनुसार यदि भारत की शिक्षानीति का यही हाल बरकरार रहा तो 21वीं सदी में विश्व के 54% निरक्षर केवल भारत मे ही होंगे । आंकड़ो के अनुसार 1951 मे शिक्षा पर जहाँ 114 करोड़ रु. खर्च हुआ वहीं 26 वर्ष बाद बढ़कर 2300 करोड़ हो गया इसके बावजूद आज 40% स्कूलो मे श्याम-पट्ट नहीं है और 60% स्कूलो मे पीने का पानी तक नही है, यहाँ 15% स्कूल ऐसे हैं जो मात्र एक शिक्षक के भरोसे चल रहे हैं ।

भारत मे बरोजगारी की संख्या भी विश्व मे सर्वाधिक है । इसका मुख्य कारण है जनसख्या मे हुई असीमित वृद्धि । जिस गति से जनसंख्या मे वृद्धि होती है उस गति से उत्पादन में वृद्धि नहीं हो पाती है । परिणाम यह होता है कि प्रति व्यक्ति औसत आय कम हो जाती है, जनता का जीवन स्तर और निम्न हो जाता है और उसकी कार्यकुशलता मे कमी आ जाती है । चूंकि प्रति व्यक्ति आय मे कमी बचत व विनियोग को भी कम कर देती है जिसके परिणामस्वरूप बेकारी बढ़ने लगती है । जनसंख्या मे वृद्धि प्रतिव्यक्ति आय मे कमी करके न केवल आर्थिक प्रगति में बाधक बनती है बल्कि जीवन स्तर भी निम्न करती है ।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि शिक्षा का प्रसार जितना ही अधिक होगा जनसख्या वृद्धि की दर मे उतनी ही स्थिरता आयेगी । पर्यावरण की रक्षा हमारा दूसरा लाभकारी कर्तव्य है । इसकी रक्षा के लिए जनसंख्या का सीमित होना बहुत आवश्यक है । अन्यथा हम या तो नष्ट हो जायेंगे या रोग का शिकार होकर हमे एक अस्वस्थ्यकर जिन्दगी जीने के लिए विवश होना पड़ेगा । ☐☐

शिक्षा शास्त्र विभाग
गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

हिन्दी शिक्षण-विधि

❒ सुरेश चन्द्र मिश्र

शिक्षण शब्द का उल्लेख करते ही स्वाभाविक रूप से सर्वप्रथम हमारा ध्यान शिक्षण के प्रयोजन अथवा उद्देश्य पर जाता है । क्योंकि, प्रत्येक विधा का शिक्षण अलग-अलग होते हुए भी उनके उद्देश्य एक ही होते हैं । किसी भी भाषा-शिक्षण के पाँच उद्देश्य निश्चित किए गए हैं-ज्ञानात्मक या बोधात्मक; रसात्मक; कौशलात्मक; अभिवृत्यात्मक एवं सर्जनात्मक । ससार की सभी भाषायें शिक्षण क्रम मे इन्ही उद्देश्यो की पूर्ति करती हैं । विषयवस्तु का अध्ययन कर हम निश्चित करते हैं कि हमें किस कोटि के उद्देश्य की प्राप्ति करनी है । गद्य के अधिकतर पाठ ज्ञानात्मक या बोधात्मक उद्देश्य को प्राप्त करने वाले होते हैं, जबकि काव्य पाठन का उद्देश्य रसात्मक और सर्जनात्मक होता है । निबन्ध-शिक्षण का उद्देश्य यदि कौशलात्मक है, तो निबन्ध, लिखना एक प्रकार का कौशल या 'स्किल' भी । दूसरे, गद्य-शिक्षण का उद्देश्य एकमात्र ज्ञानात्मक या बोधात्मक ही नहीं प्रतयुत सस्वर वाचन भी है । यहाँ तक कि ललति-गद्य-शिक्षण के खंड में रसात्मकता भी विद्यामान है ।

किसी भी भाषा-शिक्षण अथवा हिन्दी शिक्षण के क्रम मे विषयवस्तु सर्वाधिक ध्यान देने योग्य तथ्य है । पाठ्यपुस्तकों का निर्धारण या निर्माण आज भारत मे राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद् जैसी संस्था करती है; जिससे शिक्षक का कोई निकट सबध नहीं रहता । किन्तु यहाँ शिक्षक स्वय पाठ विशेष का सयोजन कर सकते हैं । पश्चात् पाठयसामाग्री के आधार पर शिक्षण का विधि-विज्ञान बनता है । सर्वविदित है, रोटी खाने की विधि खीर खाने की विधि से भिन्न होती है । अतएव, पाठयसामग्री के आधार पर विधि का निर्धारण निश्चित रूप से किया जाना चाहिए न कि विधि के आधार पर पाठ्य-सामाग्री का निर्धारण । प्राचीन ग्रन्थकार रचना करने के पूर्व इसीलिए रचना की शिक्षण-विधि भी बतला दिया करते थे । यदि पाठ्यसामाग्री की मनोवृत्ति भिन्न है तो उसकी शिक्षण विधि भी भिन्न होगी ही । शिक्षक को इतना अभ्यास अवश्य होना चाहिए ताकि वह भाषा शिक्षण की विधि का निर्धारण कर सके ।

गद्य और पद्य के शिक्षण उद्देश्य भिन्न-भिन्न होने के कारण उनके शिक्षण की विधियाँ भी भिन्न-भिन्न हो जाती हैं । मोटे तौर पर, कविता-शिक्षण को लिया जा सकता है, जिसका उद्देश्य रसात्मक और अभिवृत्यात्मक है । अत. उसके पाठन का उद्देश्य रसात्मकता उत्पन्न करना भी होना चाहिए । ध्यातव्य है, भाषा व्यक्ति का निर्माण करती है । हम जैसा सोचते हैं, हमारी भाषा भी वैसी ही होती है । असभ्य और अशोभनीय प्रतीत होने लगती है । वीर रस की कविता पाठन का उद्देश्य रस का आनन्द लेने के साथ-साथ उससे व्यक्ति का तादात्म्य संबध स्थापित करना है । यही कारण है कि कविता या काव्य को 'ब्रह्मानन्द सहोदर' कहा गया है । काव्य पाठन का दूसरा उद्देश्य अभिवृत्यात्मक है अर्थात हमारी मनोवृत्ति में परिवर्तन । अत. कविता-शिक्षण मे शब्दार्थ बतलाना उतना महत्वपूर्ण नहीं होगी, जितना कि मनोवृत्ति मे परिवर्तन लाना । क्योंकि गद्य के अनुरूप कविता पाठन का उद्देश्य नहीं होता है ।

शिक्षक के सुन्दर संस्वर वाचन द्वारा वातावरण की रचना करना, छात्र द्वारा सस्वर वाचन में कविता से प्रेरणा उत्पन्न करना तथा शिक्षक द्वारा प्रश्नोत्तर प्रणाली से विषयवस्तु का विस्तार करना ही कविता पाठन की विधियाँ हो सकती हैं । किन्तु, प्रश्नों के परिमाण दूसरे होने चाहिए । कारण, कविता शिक्षण के क्रम में शब्दो के शल्य–चिकित्सा का कोई अर्थ नहीं होता है । अन्त में, पाठ्य कविता की तुलना में समान भाव की कविता का उदहरण प्रस्तुत करना विषयवस्तु को अधिक स्पष्ट करता है । साथ ही, ऐसे उदहरणो से कविता के वातावरण को बनाए रखने मे अपेक्षित सहायता भी मिलती है ।

दूसरी ओर, गद्य पाठन के क्रम में सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य है–शब्दो के अर्थ की व्याख्या । अतः प्रयुक्त कठिन शब्द का चयन छात्रों के स्तर पर करना चाहिए न कि शिक्षक की योग्यता के स्तर पर । पुनः एक–एक शब्द की व्याख्या यहाँ अपेक्षित है, जिसके लिए शिक्षक को शब्द का सीधा–सादा अर्थ, पर्याय रूप, विलोम रूप, वैयाकरणिक रूप, शब्द का वाक्य प्रयोग, वस्तु को दिखाकर अथवा श्याम–पट्ट पर चित्र बनाकर शब्द की परिभाषा, नाम शब्द के लिए स्वयं अभिनय करके शब्द का अर्थ बतलाना चाहिए । अनन्तर, शिक्षक द्वारा पाठ से संबंधित बोधात्मक प्रश्न पूछना गद्य–पाठन के लिए अनिवार्य विधि है । परन्तु, ध्यान रहे, एक भाषा शिक्षक का उद्देश्य यहाँ पाठ विशेष के माध्यम से छात्रो को भाषा–ज्ञान देना न कि पाठ के वैज्ञानिक, भौगोलिक अथवा ऐतिहासिक अथवा सांस्कृतिक विषय–वस्तु का अन्वेषण ।

शिक्षण के उद्देश्य की प्राप्ति का मूल्याकन करना अंतिम चरण है, भाषा–शिक्षण के विधि–विज्ञान का । इस मूल्याकन का आधार छात्रो से प्रश्न का लिखित उत्तर करवाना, रिक्त स्थानों की पूर्ति कराना, पाठ के अनुरूप समान लेखन, अनुच्छेद रचना आदि गद्य–पाठन के क्रम में निश्चित किए जा सकते हैं; जबकि कविता–पाठन के क्रममें इस बात पर विशेष बल होना चाहिए कि अमुक कविता के पाठन से छात्रों ने कहाँ तक सीखा है ? या पाठन के उद्देश्य की पूर्ति कहाँ तक हो पायी है ? भाषा में कौशल और साहित्य में कल्पना विकसित हुई या नहीं–इस बात का मूल्यांकन होना चाहिए । क्योकि काव्य का आनन्द प्रत्यक्षीकरण से मिलता है । ❑❑

स्नातकोत्तर शिक्षक (हिंदी)
केन्द्रीय विद्यालय, कोयलानगर,
धनबाद (बिहार)

बच्चों में हीन भावना न आने दें

❑ एस. रत्नाकर

सुबोध असिस्टेन्ट मैनेजर है, पर आफिस में वह सहमा–सहमा सा रहता है । अपने बास के कमरे में जाने से डरता है । अपने मातहत नीचे काम करने वालों को यादि कुछ कह दे तो घंटों सोचता है । कहीं उस ने कुछ गलत तो नहीं कह दिया । किसी पार्टी मं जाए तो अकेला–अकेला रहता है । उसे लगता है सभी उसकी ओर देख रहे है, उसको लेकर बातें कर रहे है । लेकिन यह सब उसका बहम है । वास्तव मे यह हीन भावना का शिकार है । यह बात केवल सुबोध की नहीं, अनेक की है ।

उन में इस हीन भावना का बीज आज का नहीं अपितु बचपन से पनपने लगता है । जिसके दोषी वे नहीं है । उनकी परिस्थितियां, पारिवारिक एवं विद्यालय का वातावरण बच्चों में हीन भावना को जन्म देता है ।

पारिवारिक वातावरण को ले तो प्राय. देखा जाता है कि परिवार मे बच्चों की एक दूसरे से तुलना की जाती है । पंकज और दीपक दोनो भाई हैं । दीपक अधिक चुस्त है । पढ़ने मे भी तेज़ है । पंकज सारा दिन पढ़ता है फिर भी अंक कम लाता है । पिता उसे डांटते तो है ही साथ में यह कहना नहीं भूलते कि दीपक तुम से अच्छा है, तुम से अधिक अंक लाता हैं । दोनो भाइयो के झगड़ने पर गलती छोटे की हो फिर भी डाट बड़े को पड़ती है । उसे सुनना पड़ता है, तुम तो बड़े हो, तुम्हे सोचना चाहिए वह तो छोटा है । बस यहीं से हीन भावना के बीज पनपने लगते हैं । वह डर–डर कर काम करता है । कहीं गलती हुई नहीं तो डांट पड़ेगी, बिना गलती के भी पड़ सकती है ।

छोटे के सामने ही बड़े को डाटना, तुलना करना, अयोग्य घोषित करना, यह सब बातें जहा एक को अभिमानी बनाती हैं, दूसरे में हीन भावना उत्पन्न करती है । प्रारम्भ मे उन बातों का पता नहीं चलता लेकिन अन्त.करण में बैठी यह भावना कई बार गलत परिणाम भी निकालती है । बड़े का छोटे के प्रति ईर्ष्या भाव रखना, उससे प्यार न करना माता–पिता की अनुपस्थिति में पीटना, जिद्दी हो जाना आदि ।

कई बच्चों का व्यवहार पहले ठीक होता है । लेकिन धीरे–धीर उनमे परिवर्तन आने लगता है, यह परिवर्तन पारिवारिक वातावरण के कारण होता है । माता–पिता के आपसी व्यवहार के कारण, लड़ाई झगड़े, घर की कलह के कारण भी बच्चे सहमे–सहमे से रहते हैं । धीरे–धीरे यही सहमना, हीन भावना में परिवर्तित हो जाता है ।

बच्चे हीन भावना से ग्रस्त न हों इसके लिए विद्यालय का उत्तरादायित्व परिवार से भी. अधिक होता है । जहा अध्यापक जाने अनजाने कुछ व्यवहार कर बैठते है जिस से बच्चो में हीन भावना आ जाती है । अध्यापक को इन बातों की ओर जागरूक रहना चाहिए ।

सकल्प कक्षा का अच्छा विद्यार्थी था । पढ़ने में ठीक, अनुशासित साफ सुथरी ड्रैस पहन कर आता था । इधर कई दिनों से वह खोया–खोया सा रहने लगा । ड्रैस असत–व्यस्त, बिखरे–बिखरे बाल । अध्यापक ने एक दिन डाट दिया । सारी कक्षा के सामने उस ने स्वय को अपमानित अनुभव किया । दूसरे दिन से वह कक्षा में सब से पीछे बैठने लगा । पहले प्रश्नो के उत्तर बड़े उत्साह से देता था फिर कतराने लगा । दुबक कर बैठा रहता । परीक्षा होने पर अक भी कम आए । एक अच्छा भला प्रतिभावान छात्र पिछड़ गया ।

कई दिन के बाद पता चला कि उसकी मम्मी बीमार हो गई थी । घर मे बड़ा वही है पढ़ाई के साथ–साथ उसे घर के कई काम भी करने पड़ते थे । मानसिक रूप से परेशान रहने के कारण वह ड्रैस की ओर ध्यान भी नहीं दे पाता था । लेकिन जब तक जानकरी मिली तब तक अपमानित होने का दुख तो वह सह चुका था और इस अपमान ने उस के कोमल मन में हीन भावना के बीज भी बो दिए थे ।

कई बार विद्यार्थी के पास किसी वस्तु का अभाव होता है, कापी, किताब अथवा कोई अन्य वस्तु । अध्यापक सारी कक्षा के सामने उसे डांटता है तो वह कक्षा के अन्य विद्यार्थियों के सामने शर्मिन्दा होता है

जबकि इसमे उसका दोष नही होता । हो सकता है माता-पिता किसी कारण वश वह वस्तु समय पर उसे न दे पाए हो ।

अध्यापक का यह कर्तव्य है कि वह कक्षा मे पढ़ाने के साथ-साथ विद्यार्थियो के साथ व्यक्तिगत रुप से भी सम्पर्क बनाए रखे । उनके पारिवारिक वातावरण परिस्थितियो, परेशानियों, रुचियों आदि की जानकारी लेते रहना चाहिए, उनकी प्रतिभा को विकसित करने का प्रयास करें तथा उचित सम्मान, स्नेह देते रहे ।

विद्यार्थियों को कभी हतोत्साहित नहीं करना चाहिए । पढ़ाई में कमजोर होने पर भी जब विद्यार्थियो को कक्षा के सामने यह कह दिया जाए कि तुम तो कभी पास हो ही नही सकते । बार-बार यह अहसास दिलाते रहने से तो उसके कोमल मन को ठेस लगती है । परिश्रम करने का उसका उत्साह ठंडा पड़ जाता है । उसे लगता है वह सच में ही उत्तीर्ण नहीं हो सकता और यही निराशा उसके मन में घर कर जाती है और अंतराल मे हीन भावना का रूप ले लेती है और अत तक उसका साथ नहीं छोड़ती ।

बातें बहुत छोटी-छोटी होती हैं लेकिन उनकी ओर माता-पिता तथा अध्यापक पूरी ईमानदारी व कर्त्तव्य भावना से ध्यान दे तो बच्चों को हीन भावना से ग्रस्त होने से बचाया जा सकता है, जो उनके भरे पूरे जीवन को लील जाती है । □□

केन्द्रीय विद्यालय न. 1
फरीदाबाद

विचार

स्कूली शिक्षा नई शिक्षा नीति के सन्दर्भ में

❐ श्रीमती विनीता सिंह
❐ डा. एम. एन. सिंह

आजकल देश में नई शिक्षा नीति पर चर्चा चल रही है । पिछले दो दशकों पर नजर डालने से पता चलता है कि शिक्षा के क्षेत्र में वांछित सुधार इस लिये नही हो पया है क्योंकि कोठारी आयोग की रिपोर्ट की सिफारिशो पर ध्यान नहीं दिया गया । इसी रिपोर्ट में जिस शैक्षिक वातावरण और उपायो की कल्पना की गई थी उसे पूरा करने के लिये न तो पर्याप्त्त साधन रहे और न ही समुचित उपाय किये गये । यह रिपोर्ट 1985 तक बीस वर्षो के लिये शिक्षा नीति बननी चाहिये थी, लेकिन यह ज्यो की त्यो रखी रह गई । रिपोर्ट मे अनेक महत्वपूर्ण सिफारिशें की गई थीं । लेकिन इनमें से केवल कृषि शिक्षा के बारे मे सिफारिश पर ही अमल हुआ, जिससे देश मे हरित क्रान्ति लाने मे निश्चित रूप से मदद मिली और इस क्रान्ति पर हमे बड़ा गर्व है । लेकिन रिपोर्ट की बाकी सभी सिफरिशों की अनदेखी कर दी गयी और परिणामस्वरूप सकट हमारे सामने हैं ।

यह कहना अनुचित होगा कि शिक्षा के मामले में हमे निराशा ही हाथ लगी है । अगर ऐसा होता तो अनाज के मामले मे हम आत्मनिर्भर न बनते और दुनिया के दस सबसे अधिक औद्योगिकृत देशो मे हमारा स्थान न होता । हमारे देश मे परिणाम दिखा देने की क्षमता, योंयता तथा प्रतिभा का निश्चित रूप से विकास हुआ है और इसका सर्वश्रेष्ठ उपयोग करना हमारे राजनीतिक नेताओ का काम है । शिक्षा के मामले मे भारी समस्याएं रही हैं जैसा कि सुविधाओ का अभाव, घटिया स्तर, मामूली सार्थकता, स्टाफ की असन्तोषजनक भर्ती, काम–काम और व्यावसायिक विकास के बीच असन्तोषजनक तालमेल और अनुशासन तथा कुशलता का निरन्तर ह्रास । इस समस्या को दो तरीकों से हल करना होगा । एक तो शिक्षा प्रणाली के भीतर ही व्यवस्था इच्छाशक्ति का परिचय देना होगा । देश मे खासकर पिछले दो दशको से शिक्षा का बड़े ही बेतरतीब ढंग से विस्तार हुआ है ।

समुचित सुविधाओ की न तो कोई योजना बनाई गई, और न ये सुविधाए जुटाई गई । फलत: आज एक तरह तो बेरोजगारी की भारी संख्या जमा हो गई है तथा दूसरी तरफ ऐसे स्थानों की संख्या इनसे कहीं अधिक है, जिसके लिये उपयुक्त उम्मीदवार उपलब्ध नहीं है । पिछले तीन दशकों मे प्राथमिक शिक्षा का व्यय प्रति विद्यार्थी पांच गुना, माध्यमिक शिक्षा व्यय करीब 3.5 गुना और उच्चतर शिक्षा के लिये 2.5 गुना बढ़ गया है । लेकिन सामान्य मूल्यवृद्धि के कारण इन आकड़ो से स्थिति पूरी तरह स्पष्ट नहीं हो पाई है । सच्चाई तो यह है कि स्थिर मूल्यो पर उच्चतर शिक्षा के लिये प्रति विद्यार्थी व्यय मे काफी कमी आई है । अब तो हर अच्छे शिक्षा सस्थान में अब से 15–20 साल पहले के मुकाबले कई गुना विद्यार्थी हैं । लेकिन भौतिक सुविधाओं मे मामूली सा सुधार हुआ है जिसके परिणामस्वरूप

अध्यापको की कार्य परिस्थितिया, पुस्तकालयो, और प्रयोगशालाओ की सुविधा का ह्रास हुआ है और विद्यार्थियों के रहन–सहन की परिस्थितियो मे भी गिरावट आई है । इन सब बातों के कारण अनुशासन और पढ़ाई पर सबसे अधिक बुरा असर पड़ा है ।

इस बात को सब मानते हैं कि जब तक समुचित प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के दौर से निकले लक्ष्य शील और प्रेरित विद्यार्थी आगे नहीं आते तब तक उच्चतर शिक्षा परिणामदायी नहीं हो सकती । आंकड़े बताते हैं कि देश मे हर मील पर एक प्राथमिक विद्यालय और हर डेढ़ मील पर माध्यमिक विद्यालय तो हैं पर दुर्भाग्य यह है कि अधिकाश विद्यालयों में मूलभूत सुविधाओं का भयंकर अभाव है और यही कारणा है कि अधिकाश बच्चे पढ़ाई बीच में ही छोड़ जाते हैं । इसलिए सब विद्यालयो में न्यूनतम आवश्यक सुविधाए जुटानी ही होगी । विद्यालयो के लिये कुल प्रतिशत के आधे के लिये एक मूल पाठ्यक्रम सुझाया जा सकता है और बाकी का स्थानीय विकास किया जा सकती है । यह विकास स्थानीय आवश्यकताओं और पर्यावरण पर आधारित होना चाहिए ताकि पढ़ाई छोड़ देने वाले बच्चे बेकार न रह जाय ।

आज हमारी शिक्षा प्रणाली मे भारी विषमता है । शहरी और ग्रामीण क्षेत्र मे दी जा रही शिक्षा मे भारी अन्तर है । आम मान्यता यह है कि शहरी विद्यालय अच्छे हैं और ग्रामीण इलाके के विद्यालय खराब हैं । हमारी आधी आबादी लड़कियो की है, लेकिन उनके साथ शिक्षा के मामले मे भारी भेदभाव किया जाता है । महिला शिक्षा उपेक्षित पक्ष रहा है ।

यह सही है कि आरम्भ मे तो लड़कियो की संख्या विद्यालयों में खूब रहती है पर धीरे–धीरे ये पढ़ाई छोड़ती जाती हैं और शिक्षा पूरी करने वाली लड़कियों की सख्या बहुत कम रह जाती है । अपनी आबादी के इस आधे भाग की उपेक्षा करके अगर हम बाकी दुनिया के साथ चलने का दावा करते हैं तो यह खोखला दावा होगा ।

शिक्षा भविष्य को ध्यान मे रखकर दी जाती है । समाज मे होने वाले परिवर्तनो और भविष्य की तकनीक के इस्तेमाल के लिये मानवीय क्षमताओं का विकास वही करता है जिससे दुनिया के विकसित देशो से बहुत पीछे न रहे । औद्योगिक क्रान्ति की तुलना में आज की तकनीकी क्रान्ति अधिक तेजी विस्तार और क्रान्तिकारी तरीके से उत्पादन, परिवहन और संचार ही नही मनुष्य के पूरे जीवन दृष्टि को बदल रही है । इससे पारिवारिक और समाजिक रिश्तो मे भी बदलाव आ रहा है । इन सबका सही अन्दाजा लगाना होगा और इसी आधार पर ऐसी शिक्षा नीति तैयार करनी होगी जो सभी की वैज्ञानिक, तकनीकी और औद्योगिक जरूरतो को पूरी कर सके । साथ ही उस समय के लिये संगठन बनाने, उन बदलावो को पचा लेने वाला दृष्टिकोण और मूल्य विकसित करने का काम भी शिक्षा को ही करना है जिसें हमे विकास का पूरा फल मिल सके । सिर्फ यह कह देने से काम नहीं चलने वाला है कि हम 21वी. सदी मे दुनिया की 54.8 प्रतिशत अनपढ़ आबादी के साथ प्रवेश करेंगे । इसके लिये शिक्षा देने के तरीके, विषयवस्तु, माध्यम, और प्रक्रिया में क्रान्तिकारी बदलाव की जरूरत है । अभी भी शिक्षा का अधिकांश हिस्सा बाबा आदम के जमाने का है । उसको लाखा विरोध के बावजूद हटाना ही होगा । खिलौने और खेलों से लेकर ऊपर तक की पढ़ाई में वैज्ञानिक दृष्टिकोंण लाने की जरूरत है । "उदार" विषयों की जगह विज्ञान व गणित पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है । शिक्षा के विषयों को बाटने की दीवारे अब ढहती जा रही हैं । जैव–भौतिकी जैसे

कठिन विषय अब सिर्फ जीवन–विज्ञान या भौतिकी से अधिक उपयोगी बनते जा रहे हैं । अब एक ही विषय की विशेषज्ञता की जगह कई विषयो की जानकारी पर बल दिया जाने लगा है ।

नई तकनीकी क्रान्ति के लिये सगठित काम और संगठन की जरूरत है । यह जग जाहिर है कि कैसे हम भारतीय लोग अकेले मे तो दुनियां के किसी भी देश के आदमी का मुंकाबला कर सकते हैं या बेहतर भी काम कर लेते हैं लेकिन दूसरो के साथ या एक टीम के रूप मे हम फिसड्डी सिद्ध हो जाते हैं । अक्सर यह कहा जाता है कि एक भारतीय दो जापानी या जर्मन के बराबर होता है लेकिन तीन भारतीय मिलकर एक जर्मन या जपानी से कम हो जाते हैं । कुछ प्रसिद्ध वैज्ञानिकों के बारे में आशीषनन्दी ने जो विस्तार से अध्ययन किया है उससे स्पष्ट है कि अकेले मे तो उनके काम की कोई बारबरी ही नहीं कर सकता हे लेकिन एक टीम या संगठन बना देने पर ये ही लोग एक सिरर्दद साबित हो जाते हैं । यह बात सही है कि मुश्किल पड़ने पर हमारा काम काफी आश्चर्यजनक है । नई तकनीकी क्रान्ति की जो जरूरत हमें अभी भी पड़ी है, उसे लाने के लिये सिर्फ निरक्षरता दूर करना ही नहीं बल्कि नए ज्ञान के लिये दिमागी खुलापन और कार्य पद्धति तथा दृष्टिकोण मे क्रान्तिकारी बदलाव की जरूरत है । हमे टीम के साथ काम करना और सस्था खड़ी करना सीखना होगा जिससे काम करने के सही संस्कार आए, आलस्य खत्म हो, जिम्मेदारी कम हो, जवाब'देही का एहसास हो तथा काम के प्रति लगन हो । चाहे औपचारिक हो या अनौपचारिक लेकिन काम करने की ऐसी सस्कृति विकसित करने का काम शिक्षा को ही करना होगा । नई शिक्षा नीति मे इन बातो पर ध्याने ने देना आत्मघाती होगा ।

कुछ सामान्य मुद्दो को यहां उठाया गया है । इस तरह के लेख मे नई तकनीकी क्रान्ति लाने की जरूरतो की विस्तार से चर्चा करना सम्भव नहीं है । इस शताब्दी के अन्त तक ये जरूरते बहुत स्पष्ट हो जायेंगी और बाद मे भी उस चुनौती का सामना करने के लिये शिक्षा में लगातार बदलाव की जरुरत होगी । 21वीं सदी की जरूरतो के अनुसार शिक्षा मे विभिन्न स्तरों पर क्या कुछ बदलाव जरूरी होंगे, उस पर विस्तृत बहस की जरूरत है । हमे "21वीं सदी में जाने की तैयारी करनी है" इस जैसे नारो के बार–बार जपते रहने से कुछ होने वाला नहीं है । नई और उपयुक्त शिक्षा नीति बनाने के लिये गम्भीर सोच की जरूरत है ।

दूसरा उपेक्षित मुद्दा पूर्व–प्राथमिक शिक्षा का है । मौलिक शिक्षा पर जो जोर दिया गया है वह ठीक है । याद रखने की बात है कि शिक्षा ग्रहण का काम काफी पहले ही शुरू हो जाता है और इसका असर काफी बाद तक रहता है लेकिन निचले स्तर पर स्कूल छोड़ कर जाने की मौजूदा दर बहुत भयावह है । 100 में से सिर्फ 23 बच्चे ही सातवीं कक्षा तक पहुच पाते हैं । पढ़ाई छोड़ने वाले अधिकांश बच्चे हरिजन, आदिवासी या समाज के गदीब वर्ग के होते हैं । कुछ अध्ययनो से पता चला है कि प्राथमिक स्कूली शिक्षा पाने से पहले ही जिन बच्चो की पढ़ाई शुरू हो जाती है उनमे पढाई छोड़ने की दर कम है । यह मानी हुई बात है कि बाद की जरूरतो वाली अनेक अवधारणाएं या भाषाई कौशल इस प्रारम्भिक दौर में ही आसानी से मन में बैठ जाती है । अगर परिवार का माहौल ठीक रहा तो ये ज्ञान वहीं मिलते हैं या फिर नर्सरी स्कूलो मे । इसलिये प्राथमिक शिक्षा की योजना को सरल बनाने के लिये पूर्व–प्राथमिक शिक्षा और उसके लिये बच्चे को मिलने वाले वातावरण तथा परिवार के माहौल पर भी ध्यान देने की जरूरत है । अपने यहां भी हुए अनेके अध्ययनो से यह ताब सामने आई है कि सही

माहौल और पारिवारिक बहाने से बच्चे मे अनेक तरह के विकास, नकल करने की क्षमता तथा बाद के लिये जरूरी अनेक गुणा विकसित होते हैं, लेकिन इसमें मुख्य असर स्कूल परिवार के माहौल का ही पड़ता है । चूंकि यह समस्या गरीब घरो से आने वालों के लिये अधिक मुश्किल है, इसलिये उनके लिये पूर्व प्राथमिक शिक्षा के साथ ही पारिवारिक हालत सुधारने के लिये भी योजना बनाने की जरूरत है ।

कोई नीति बनाने से पहले उसके मूल उद्देश्यों और आवश्यकताओ पर विचार कर लेना जरूरी है । इसमे स्पष्ट और निश्चित लक्ष्य तथा उन्हे पाने के लिये एक योजना भी बनानी चाहिये । यह योजना महन कागजी न रह जाए इसके लिये उसे लागू करने की पूरी कार्यविधि भी नई नीति मे दर्ज होनी चाहिये और समय–समय पर इसकी प्रगति की समीक्षा करने की व्यवस्था भी होनी चाहिये जिससे इसे लागू करने के रास्ते में आ रही अड़चनो को दूर किया जा सके । अपने राष्ट्रीय जीवन के हर क्षेत्र में योजना के लक्ष्य और उसके लागू होने में काफी फर्क रह जाता है । इसी कारण अपना देश "उदार–देश" भी माना जाता है । अतः हमे सिर्फ बड़ी–बड़ी उम्मीदें ही नहीं बांधे रखना है, शिक्षा नीति को लागू कराने और उसकी समय–समय से समीक्षा करते रहने वाली प्रणाली भी विकसित करनी होगी । 1968 की शिक्षा नीति में भी बड़ी–बड़ी बातें कही गई हैं । यही नहीं आजादी के बाद शिक्षा के मामले को देखने के लिये अनेक आयोगो की सिफारिशो को भी इसमे शामिल किया गया था । अगर इस योजना का एक अश भी लागू हो गया होता तो देश मे शिक्षा की हालत आज जैसी नही होती । अतः इसे लागू करने की व्यवस्था किये बगैर नई शिक्षा नीति भी सिर्फ बड़ी–बड़ी बातो और मुहावरों का संग्रह भर रह जायेगा ।

इसी सन्दर्भ में जिन मुख्य बातो को छोड़ दिया गया है, उसकी थोड़ी चर्चा जरूरी है । वास्तविकता पर आधारित शिक्षा–नीति बनाने के लिये एक समन्वित दृष्टिकोण की जरूरत होती है । उसका इस दस्तावेज मे अभाव है । शिक्षा के विभिन्न स्तरों के बारे मे इसमें कुछ महत्वपूर्ण सूचनाएं तो दी हैं लेकिन जान–बूझकर आज की शिक्षा व्यवस्था की अनावृत्त संच्चाइयो का उल्लेख नहीं किया गया है, जो असलियत बताने की जगह उसे छुपाते हुये गड्डमगड्ड कर देते हैं । पूरी शिक्षा प्रणाली के कुछ महत्वपूर्ण पहलुओ को छोड़ दिया गया है जिससे लगता है कि यह दस्तावेज भी यू ही तैयार कर दिया गया है । पूरी शिक्षा व्यवस्था को एक समग्र दृष्टिकोंण से नहीं देखा गया है । यहां छोड़े गये मुद्दों की चर्चा सम्भव नहीं है इसलिये कुछ बिन्दुओं को ही उठाया जा रहा है । 1. इसमे 21वीं सदी की जरूरतो का सही अन्दाजा नहीं किया गया है और न ही उसे ध्यान में रखकर शिक्षा मे आवश्यक बदलावो के बारे में सोचा गया है । 2 पूर्व प्राथमिक शिक्षा, 3. शिक्षा मे बुनियादी मूल्यों और चरित्र निर्माण की जरूरत, 4. शोध और शोध संस्थाओ की भूमिका के बारे में कुछ नहीं कहा गया है ।

जिस परिवार के मिया–बीबी दोनो नौकरी करते हैं और बच्चों पर ध्यान देने वाला कोई नहीं होता, उस परिवार के बच्चों के लिए यह खास मुश्किल है–पारिवारिक प्यार की जरूरत । यह समस्या खाते–पीते मध्यवर्गी परिवारों में बढ़ती जा रही है । काम का बोझ बढ़ जाने से ऐसे परिवार सामाजिक जीवन से कट जाते हैं । परिवारो के बीच मेल–जोल से जो कुशलता, मूल्य और दृष्टिकोण का विकास होता है, वह ऐसे परिवारों के बच्चो में नहीं आ पाता । ये मूल्य आगे के जीवन के लिए बहुत जरूरी है लेकिन ये सीधे परिवार से न मिलकर स्कूलों या बच्चों के आपसी मेल–मिलाप के भारोसे रह जाते हैं ।

पारिवारिक व्यस्तताओं से बच्चों का जो नुकसान होता है उसे संस्थाएं या ऐसी ही अन्य व्यवस्था करके पूरा किया जा सकता है । वैसे यह काम तो खुद ऐसे समुदायों को करना चाहिए लेकिन वे आर्थिक या किसी मुश्किल के कारण ऐसा नहीं कर सकते तो सरकार को इसकी व्यवस्था करनी चाहिए । ऐसे बच्चो के लिए हमारे यहा अभी भी "आगनबाड़ी" या "बालवाड़ी" प्रोग्राम चल ही रहे हैं । इनको और प्रभावी बनाना होगा । इसमे प्रारम्भिक शिक्षा और सामाजिक मेल-जोल बढ़ाने के प्रोग्राम भी शामिल किए जा सकते हैं । समाज के गरीब वर्ग के बच्चों के लिए ऐसी व्यवस्था विशेष रूप से होनी चाहिए ।

एक और महत्वपूर्ण बात जिस पर पूरा ध्यान नहीं दिया गया है, वह है बुनियादी मूल्य, चरित्र निर्माण और नैतिक शिक्षा । वैसे दस्तावेज मे वैज्ञानिक स्वभाव विकसित करने, धर्म निरपेक्षता और लोकतन्त्र का जिक्र है लेकिन यह स्पष्ट लगता है कि सच्चाई, ईमानदारी दूसरो को तकलीफ न देना, लगन, इच्छाओ पर वश, दूसरों की चिन्ता जैसे चरत्रि-निर्माण और नैतिक मूल्यों की शिक्षा पर ध्यान नहीं दिया गया है । अगर नैतिक मूल्य खत्म हो जाएगे तो लोकतन्त्र और धर्म-निरपेक्षता का कोई अर्थ नहीं रह जाता । भारत में चरित्र का संकट सबसे गम्भीर है । दुनियां भर में नैतिक मूल्यों का ह्रास हो रहा है । यह कहने का कोई अर्थ नहीं है । इससे जान छुड़ाने की जगह इसका मुकाबला करने की जरूरत है ।

ये बुनियादी मूल्य बहुत कम उम्र मे ही समाज से घुलने-मिलने के क्रम मे विकसित होते हैं । जैसा कि सुधरी ककड़ ने बताया है, भारतीय मन में इन बुनियादी मूल्यो को प्रतिष्ठित करने में जीवन के विभिन्न कालों में आने वाले रस्म और पारिवारिक उत्सव बहुत सहायक होते हैं । लेकिन जैसा पहले ही कहा जा चुका है, परिवार अब यह भूमिका नहीं निभा रहा है । पारिवारिक उत्सव और रस्में तो अब पुरातात्विक चीजें मानकर छोड़ी जा रही हैं । एक किस्म की मूल्य-शून्यता की हालत आ गई है जो हमारे सामाजिक क्रियाकलापो से स्पष्ट है । सीधे-सादे और ईमानदार आदमी को बुद्धू और नैतिक मूल्य मानने वाले को पोगापंथी और अनुदार माना जाता है । बेईमान और धोकेबाजी को जीवन की रीति मान लिया गया है और शायद ही उनकी सामाजिक निन्दा होती है । अगर यह सब चलता रहा तो सामाजिक बन्धन बिखर जायेंगे । ऐसे मे जब प्रधान मत्री चरित्र निर्माण और व्यक्तित्व विकास की बात करते हैं तो अच्छा लगता है ।

जो दस्तावेज बाटा गया है, उसमे नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यो तथा हर तरह से व्यक्तिगत के विकास की ओर ध्यान नहीं दिया गया है । पारिवारिक अनुभवो और समाज मे घुलने-मिलने के महत्व की चर्चा पहले ही की जा चुकी है । प्राथमिक शिक्षा और लड़कपन मे मन बनाने की भी अपनी भूमिका है । अनेक मूल्य तो किस्से-कहानियो और उदाहरणो के मार्फत सीखे जाते हैं । अगर बच्चों की पाठ्यपुस्तकें साम्प्रदायिक तनाव और अलगाव पैदा करने वाली है तो उन्हे ऐसी सामग्री भी देने की जरूरत है जो उनमें सही किस्म के सामाजिक-सास्कृतिक मूल्य पैदा करें ।

इस सन्दर्भ मे यह ध्यान देने की बात है कि बच्चा धर्मनिरपेक्षता जैसे मूल्य आठ या नौ वर्ष की उम्र मे मां-बाप, परिवार, स्कूल या मीडिया से सीखता है । अतः शुरू से ही इन बातों पर ध्यान देने की जरूरत है ।

बच्चों के चरित्र निर्माण और नैतिक मूल्यो के

विकास में "आदर्शों" का बहुत बड़ा स्थान है। बच्चा ऐसे आदर्श लोगों को परिवार, समाज, किताबो या मीडिया के माध्यम से पाता है। इसलिये जब चोर, बेईमान और बदमाश सामाजिक–राजनैतिक क्षेत्र में आज आगे बढ़ते जा रहे हैं तो बहुत आश्चर्य नहीं होता। ये लोग हमारे पूरे सामाजिक जीवन को प्रदूषित कर रहे हैं। अगर चरित्र निर्माण और बुनियादी सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्यों को प्रतिष्ठित करने का काम भी शिक्षा का ही है तो इन्हें हमारी नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति में जगह मिलनी ही चाहिए। इसे हम सिर्फ एक शैक्षणिक उद्देश्य न माने बल्कि इन्हें बढ़ावा देना हमारी शिक्षा नीति का एक अभिन्न अंग बने।

बिना अनुसंधान और शोध संस्थाओं की भूमिका तय किए भविष्य के लिए बनने वाली शिक्षा नीति बहुत काम की हो ही नहीं सकती। यह आम तौर पर कहा जाता है कि विश्वविद्यालय ज्ञान पाने और पैदा करने के केन्द्र हैं और यह जीवन व समाज के प्रति दृष्टिकोण बनाने में मददगार होते हैं। विद्वानों के बीच आपसी मेल–मिलाप उन्हें ज्ञान के क्षेत्र में अगुवा बनाता है। एक समय ज्ञान का उपयोग वैज्ञानिक मुश्किलों को सुलझाने, समृद्धि पैदा करने और व्यपारिक उत्पादन के लिए सामान तैयार करने में होता था। इससे खास मकसद के लिए शोध को बढ़ावा मिला। लेकिन ऐसे शोध विश्वविद्यालय की संस्कृति से भिन्न किस्म के थे। दूसरे ऐसे शोध काफी मुश्किल हो गए है और उन पर काफी खर्च आता है तथा उनके लिए एक ग्रुप मे काम करने की जरूरत होती है। पढ़ाने का मुख्या काम करने वाले विश्वविद्यालय इसलिए ठीक सिद्ध नहीं होते। ऐसे में "प्योर" और "अप्लाइड" रिसर्च में द्वन्द पैदा हो गया प्रचार के दशक में इसी द्वन्द को देखते हुए स्वतन्त्र राष्ट्रीय विज्ञान नीति घोषित हुई और देश भर मे राष्ट्रीय प्रयोगशालाएं और विशेष क्षेत्र में ही शोध करने वाली संस्थाएं खोली गयी। वैसे राष्ट्रीय समाज विज्ञान नीति कभी घोषित नहीं की गई लेकिन देश भर मे समाज शास्त्रीय शोध करने वाली संस्थाएं बन गई। भारतीय समाज विज्ञान अनुसंधान परिषद इन सबके समन्व और इनको पैसा देने का काम करती है। अभी परिषद की सहायता से चलने वाली कम से कम ऐसी 20 संस्थाएं होंगी जो आकड़े जुटा रही है या ऐसे अध्ययन कर रही हैं जिनका राष्ट्रीय नीति बनाने और उसके कार्यान्वियन मे उपयोग हो सकता है। विज्ञान और समाज विज्ञान दोनो ही क्षेत्रो मे शोध करने वाली ये संस्थाएं उच्च शिक्षा के लिए इस पैसे से चलती हैं। विशेषकर समाज विज्ञान के क्षेत्र मे ऐसी अनेकों संस्थाएं पूरे देश मे बड़े राजनेताओ की छत्रछाया मे फलफूल रही हैं और उनकी ताकत का इस्तेमाल करके सरकारी मदद पा लेती हैं। इन "प्राइवेट" सस्थाओं में से कुछ का काम तो बहुत ही अच्छा है लेकिन अधिकाश घटिया काम कर रही है। इन पर जनता का पैसा बर्बाद करने की जरूरत नहीं है।

उच्च स्तरीय अनुसंधान और शोध के जरिए ही हमें प्रशिक्षित और कुशल लोग मिलेंगे जो विज्ञान और तकनीक समेत हर क्षेत्र में देश को दुनियां के विकसित देशों के मुकाबले के लायक बनाएगे। इसी प्रकार समाज विज्ञान में भी हमे उच्च अनुसंधान की जरूरत है जिससे देश की नीतियां ठीक–ठीक बनें और मानव कल्याण के कार्यक्रम अच्छे ढंग से चले। अतः नई राष्ट्रीय नीति मे बेहतर अनुसधान और शोध संस्थाओ को प्रमुख भूमिका सौंपनी होगी।

अनेक मुद्दो पर गम्भीर बहस और होशियारी से फैसले लेने की जरूरत है। अधिकाश विश्वविद्यालयों और कुछ शोध सस्थाओ के अनुसंधान के स्तर और उपयोगिता अभी बहुत कारगर नहीं है।

अनुसंधान की दिशा और स्तर का सवाल अभी काफी महत्वपूर्ण है । इंग्लैंड मे उच्च शिक्षा के बारे में लार्ड रोबिन्स ने अपनी रिपोर्ट मे जो कुछ लिखा वह भारत पर भी सही बैठता है । विश्वविद्यालयों में नियुक्ति और प्रोन्नति के लिए शोध को अनिवार्य बना देने से शोध का स्तर काफी गिरा है । स्तर को बनाएं रखने के लिए एक नीति बनाने की जरूरत है । दूसरे शोध सस्थाओं की भूमिका तय कर देनी चाहिए और शिक्षा में उनकी भूमिका भी निश्चित कर देनी चाहिए । साथ ही विश्वविद्यालयों, सरकार और पूरे समाज से उनका क्या रिश्ता हो, यह भी तय होना चाहिए । इन्हें अलग-अलग रखने से सिर्फ विश्वविद्यालयो में अच्छे लोगो और साधनों का अभाव ही नही हुआ है, खुद इन संस्थाओ का भी नुकसान हुआ है । निजी प्रयासों से शोध संस्थाओ का बनना अच्छी बात है लेकिन एक न्यूनतम स्तर को तय कर ही लेना होगा । और अंतिम बात सरकार और अन्य "उपभोक्ताओ" द्वारा इन अनुसंधानों के उपयोग की है । किस प्रकार उपयोगी आकड़ों को जुटाया जाये और उनका विभिन्न एजेन्सियां सही उपयोग करे । यह एक बड़ी समस्या है और इस पर गम्भीरता से विचार करना होगा । अप्लाइड रिसर्च का अगर उपयोग नहीं हुआ तो वह बेकार ही है ।

इन सब मुद्दो पर गम्भीर बहस की जरूरत है । अगर अनुसंधान और शोध संस्थाओं को नई शिक्षा नीति मे उचित स्थान नहीं मिला तो यह सर्वोच्च शिक्षा की एक बड़ी उपेक्षा होगी । ❑❑

म. मा. स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
कालाकांकर, प्रतापगढ (उ. प्र.)

खामोश ! पढ़ाई जारी है

❑ रामेश्वर काम्बोज "हिमांशु"

मायावी सरोवर पर जल पीने के लिए आए पाण्डव पुत्रों को यक्ष ने प्रश्नो का उत्तर देने पर पानी पीने की सलाह दी । भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव ने उत्तर दिए बिना जल पीने का प्रयास किया, इसका परिणाम हुआ मृत्यु । अन्ततः युधिष्ठिर को आना पड़ा और यक्ष के प्रश्नो के उत्तर देने पड़े । बनवास में रात-दिन साथ रहने पर भी चारो की स्थिति ने उनको विचारहीनता की स्थिति तक पहुँचा दिया था । इस स्थिति के लिए युधिष्ठिर भी समान रूप से उत्तरदायी थे ।

हमोर समाज में संवादहीनता की यह स्थिति निरन्तर बढ़ती जा रही है । बच्चों के परिवेश से जुड़े-अभिभावक शिक्षक तथा परिचित इतने सहिष्णु नहीं रह गए हैं कि एक बच्चे के साथ **'व्यर्थ की मगजपच्ची'** करे **'सिर खपाएँ 'समय बर्बाद'** करे । यह तो किसी अनजान पथिक को घोर घने जगल में भाग्य के भरोसे छोड़ देने जैसा है । उसका दिशाहीन सफर उसे कितना आगे ले जाएगा या कितना भटकाएगा, इसका केवल अनुमान किया जा सकता है ।

बच्चो का मन **'जिज्ञासाओं का अथाह सागर'** होता है । वे पूरे संसार को रहस्यमयी दृष्टि से देखते हैं । उनके मन के आकाश में अनगिनत प्रश्न बादलों की तरह घुमड़ते रहते हैं । घर हो या स्कूल

हर समय उन्हें चुप रहने के लिए बाध्य किया जाता है । उनकी मुखरता को उद्दण्डता तथा चुप्पी को सीधा मान लिया जाता है । घर पर आने वालो के सामने–"देख नहीं रहे हो हम बात कर रहे हैं । तुम चुपचाप नहीं बैठ सकते"–कहकर बच्चो को डॉट दिया जाता है । बच्चों के बोलने की इतनी घोर उपेक्षा ! ऐसे अभिभावक समझ ही नहीं पाते कि वे अनजाने में बच्चे की चिन्तन शक्ति और कल्पना शीलता के अंकुरो को कुचल देते हैं । धीरे–धीरे चुप्पी का कवच ऐसे बच्चों को जकड़ता चला जाता है चुप रहने को ही ऐसे बच्चे अनुशासन समझ कर ढोते रहते हैं ।

घर से विद्यालय में पहुँचने पर भी इसी जड़ता के दर्शन होते हैं । सवादहीन हो जाना एक छात्र की प्रगति में जीवन का सबसे बड़ा अवरोध हैं । **'पिन ड्रॉप साइलेंस'** की अवधारण से उबरना जरूरी है । यह स्थिति 'कक्षा–अनुशासन' का स्थान नहीं ले सकती । शिक्षक, ताबड़तोड़ पढ़ाई करके पाठ्यक्रम के प्रेत से छुटकारा पाना चाहते हैं लेकिन यह प्रेत अध्यापक के सिर से उतर कर चुपचाप छात्र के सिर पर सवार हो जाता है । छात्र भी जैसे–तैसे परीक्षा उत्तीर्ण करके इस 'मसान पूजा' से मुक्त होना चाहता है । कक्षा में छात्र को कम से कम बोलने का अवसर मिल पाता है । वह मूक श्रोता बनकर अपने पाठो में सिर खपाता रहता है । ऐसी स्थिति मे उसका न तो पाठ्यवस्तु से पूर्ण साक्षात्कार हो पाता है और न शिक्षक से तादाम्य ही । चुने हुए प्रश्नों के चुने हुए उत्तर बताकर शिक्षक अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं । कक्षा में इतनी फुर्सत किसे है कि वह छात्र की वैयक्तिक सीमाओं और क्षमताओ को समझे एव उसके अनुरूप ही उसे आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करे ? सस्ती कुजियाँ और घटिया गाइड उसके लिए **'डमी शिक्षक'** बन जाती हैं । धीरे–धीरे इनका प्रभाव इतना हो जाता है कि शिक्षक गौण हो जाता है । तब फेल करने का आंतक फैलाकर शिक्षक अपने डूबते अस्तित्व को बचाने का प्रयास करता है यहीं से छात्र की अभिव्यक्ति कुठित होने लगती है और वह विचारहीनता का शिकार होने लगता है ।

घर से रोपी गई चुप्पी विद्यालय मे जाकर वटवृक्ष बन जाती है । रटे हुए प्रश्न कक्षा में सुना देना कोई बहुत बड़ी उपलब्धि नहीं । दुःख तो तब होता है जब ये ही छात्र लीक से हटकर पूछे गए साधारण प्रश्नो का उत्तर देने मे हकलाने लगते हैं । किताबी प्रश्नों की भाषा से तनिक हटने पर सारी पोल खुल जाती है । यदि छात्रों को कोई साधारण सा निबन्ध या पत्र लिखने के लिए दे दिया जाए तो भगदड़ जैसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है । अगर विषयवस्तु प्रचलित पुस्तको से हटकर हो तब तो भगवान ही मालिक है । अपने मस्तिष्क को वे उस खाली डिब्बे की तरह पाते हैं जिसको पूर्णतया सीलबंद कर दिया हो । भाषा की उपेक्षा के दुष्परिणाम हमारे सामने है । अधूरे भाषा–ज्ञान पर लदे गणित–विज्ञान आदि विषय छात्रों के लिए सिरदर्द बन जाते हैं ।

भाषा–शिक्षक छात्रो को कक्षा मे बोलने का तर्क–वितर्क करने का अधिकाधिक अवसर दे, उन्हे अपने विचार प्रस्तुत करने दें तो कक्षा की जड़ता और संवादहीनता के 'आइसबर्ग' को तोड़ा जा सकता है । विचारहीनता की स्थिति को सक्रियता मे बदलने के लिए जरूरी है कि छात्रों को सुरूचिपूर्ण पुस्तकें पढ़ने के लिए दी जाएँ । उन पुस्तकों पर कक्षा में चर्चा की जाए । पाठ्यपुस्तको में भी ऐसे विषय समाविष्ट रहते हैं जिन पर अतिरिक्त जानकारी दी जा सकती है ।

शिक्षण का एक दुःखद पहलू यह है कि हम श्रेष्ठ शिक्षण उसे समझते हैं कि कालाश शुरू होते

ही शिक्षक प्रकरण के चक्रव्यूह मे कूद पड़े और कालांश के अन्तिम क्षण तक वीर अभिमन्यु की तरह जूझता रहे । कौन छात्र उदास है, कौन प्रसन्न है, कौन ध्यान से सुन रहा है कौन बाहर देख रहा है, यह जानने की आवश्यकता ही महसूस न हो । पलभर के लिए भी छात्रों को बोलने का मौका न दे या श्यामपट्ट पर ढेर सारा काम खुद ही कर डाले । बहुत से छात्रों को सालों–साल श्याम पट्ट पर लिखने का अवसर नहीं मिल पाता है ।

अध्यापन व्यवसाय अपनाने के बाद बहुत से शिक्षक स्वाध्याय को तिलाजलि दे देते हैं । पुस्तकालय का उपयोग भी कम से कम किया जाता है । बुहत से शिक्षकों का वर्षभर पुस्तकालय में खाता ही नहीं खुल पाता है । स्वाध्याय के बिना शिक्षक खण्डित मूर्ति की तरह है । मन्दिर में न तो खण्डित मूर्ति की स्थापना की जा सकती है और न उपासना । यही स्थिति हमारे विद्या–मन्दिरों की भी है । उलझी हुई विचारधारा, पंगु अभिव्यक्ति छात्रों को भ्रमित ही करेगी । दिशाबोध का प्रश्न ही नहीं उठता । छात्र किस प्रकार की पुस्तकें पढ़ते हैं ? यह न तो अभिभावकों का सिर दर्द है और न शिक्षकों का । इस दिशा में की जा रही लापरवाही वास्तव में चिन्ता का विषय है ।

सवादहीनता से विचारहीनता पनपती है और विचारहीनता के कारण छात्र बिना सोचे–समझे सड़ी–गली विषयवस्तु को पचाने मे ही अपने परिश्रम की सार्थकता समझने लगते हैं । इससे भाषा के अधकचरे स्वरूप को प्रोत्साहन मिलता है । विचार शून्यता और सवादहीनता के पहियों पर भाषा नहीं चल सकती । भाषा निरन्तर प्रवाहित हाने वाली सरिता है । प्रवाह खोकर सरिता नहीं रह जाती, पोखर बना जाती है । भाषा तभी तक सशक्त बनी रह सकती है जब तक वह विचारो एवं भावो का सार्थक सम्प्रेषण करती है । जिस छात्र की भाषा कमजोर होगी, उसे अन्य विषय समझने–समझाने मे भी कठिनाई का सामना करना पड़ेगा । प्रायः ऐसा भी देखने में आता है कि सही उत्तर की जानकारी होने पर भी छात्र उत्तर नहीं दे पाता क्योंकि वह प्रश्न को ही नहीं समझ पाया । प्रश्न को न समझ पाने में भाषा प्रमुख कारण बना जाती है । यह परेशानी शिक्षक के साथ भी हो सकती है ।

भाषा की कमज़ोरी के कारण अच्छे अक लाने वाले छात्र साक्षात्कार में बुरी तरह असफल हो जाते हैं । भाषा–ज्ञान तभी काम मे आता है जब वह व्यवहार में रचा–बसा हो । झिझक होने के कारण कोरा भाषा–ज्ञान साथ छोड़ देता है । भाषा की कमजोरी के कारण वक्ता की कही गई बात का आशय न समझ सकने के कारण प्रायः गलतफहमी और विवाद उत्पन्न हो जाते हैं । भाषिक दुर्बलता के कारण निर्दोष व्यक्ति जब अपने ऊपर लगाए गए आरोपो का निराकरण नहीं कर पाता तो बेचारा अकारण ही घृण का पात्र बन जाता है ।

शिक्षक का आत्मीयतापूर्ण व्यवहार ही वह शक्ति है जो छात्र के सामने विश्वास का पथ प्रशस्त करती है । दृड़ता की इस विषम स्थिति को तोड़ने के लिए निम्न उपाय किए जा सकते हैं ।

❐ शिक्षक ज्ञान की नवीनतम् जाककारी से जुड़े रहें । समय–समय पर शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया जाए । यह प्रशिक्षण खानापूर्ति न होकर व्यावसायिक कुशलता प्रदान करने वाला हो ।

❐ विद्यालयों का वातावरण जनतात्रिक हो जिसमे शिक्षक मनोयोग से कार्य कर सकें । 'खूब कमाई करो, चाहे जैसे भी हो' इस तरह की विचारधारा वाले शिक्षको को सही रास्ते पर लाया जाए ।

❐ छात्रों को उनकी मासिक अवस्था के

अनुसार उपयुक्त पुस्तकें पढ़ने के लिए दी जाएं । कक्षा–पुस्तकालय इस दिशा में कारगर सिद्ध हो सकता है ।

❐ छात्रों को नए और रोचक विषय बताएँ जाएँ जिनपर वह अपने विचार लिखित या मौखिक रूप में अभिव्यक्त कर सके । बड़ी कक्षाओं में पठित सामग्री पर यदा–कदा चर्चा की जाए । सामयिक राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर कक्षा में छात्रों के विचार पूछे जाएँ । मौलिक विचारों की उदारतापूर्वक सराहना की जाए ।

❐ विद्यालय के पाठ्येतर कार्यक्रमों में शिक्षक छात्रों का निर्देशन करें परन्तु उन्हें भाषण आदि लिखकर न दें उन्हीं से लिखवाएँ एवं उचित सशोधन भी उन्हे समझा दें ।

❐ अच्छा लिखने और बोलने वाले छात्रों को जहाँ तक संभव हो, प्रोत्साहन दिया जाए । विद्यालय में आयोजित कार्यक्रमों का संचालन छात्रों से ही कराया जाए ।

❐ पाठ्य सहगामी क्रियाओं की तैयारी एवं संयोजना का भार छात्रों को सौपा जाए । आशुभाषण एवं आशुलेखन पर बल दिया जाए ।

❐ विद्यालय में लेखकों की श्रेष्ठ रचनाओं पर चर्चाएँ आयोजित की जाएँ इससे छात्रो की भाषा को नया संस्कार मिलेगा ।

❐ अपने आसपास में घटित घटनाओं पर लिखने के लिए प्रेरित किया जाए । परिवेशगत विशेषताओं की जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया जाए ।

इस प्रकार भाषा को हम क्रियाशीलता से जोड़कर प्रखर एव व्यावहारिक बना सकते हैं । इन प्रयासों से दब्बू किस्म के छात्रों की चुप्पी भी तोड़ी जा सकती है और उन्हें 'संवाद' की सक्रियता से जोड़ा जा सकता है । ❐❐

स्नातकोत्तर शिक्षक,
केन्द्रीय विद्यालय जे. आर. सी.
बरेली कैण्ट (उ. प्र.)

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद् नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित प्राइमरी शिक्षक एक त्रैमासिक पत्रिका है।

इस पत्रिका का उद्देश्य केन्द्रीय सरकार की शिक्षा नीतियों से संबधित आधिकारिक जानकारी को शिक्षको और सम्बद्ध प्रशासको तक पहुचाना है। इसका उद्देश्य कक्षा मे इस्तेमाल की जा सकने वाली सार्थक और सम्बद्ध सामग्री प्रदान करना भी है। भारत के विभिन्न केन्द्रो मे चल रहे पाठ्यक्रमों और कार्यक्रमों आदि के बारे में समय समय पर इसमे सूचनाए प्रकाशित होती रहती हैं। शिक्षा-जगत में होने वाली हलचलो पर विचार-विमर्श के लिए यह एक मंच का काम भी करती है।

इस पत्रिका के प्रमुख स्तम्भ हैं–

(1) प्राथमिक शिक्षा से संबधित शैक्षिक नीतिया।

(2) प्रश्न और उत्तर।

(3) राज्यों के समाचार।

(4) कक्षा में इस्तेमाल की जा सकने वाली सचित्र सामग्री।

स्कूलो के शिक्षकों की रचनाए प्रकाशनार्थ आमंत्रित हैं। हर प्रकाशित रचना पर पारिश्रमिक की व्यवस्था हैं। लेख हिन्दी या अग्रेजी मे कागज के एक ओर लिखा होना चाहिए। सुविधा के लिए कृपया टाइप की गई या साफ-साफ, सुन्दर अक्षरो में लिखी रचना की दो प्रतियां भेजें।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद द्वारा प्रकाशित महत्वपूर्ण पत्रिकाएं

1.	भारतीय आधुनिक शिक्षा, त्रैमासिक	एक प्रति 4 रुपये, वार्षिक मूल्य	16.00 रु.
2.	प्राइमरी शिक्षक, त्रैमासिक	एक प्रति 2 रुपये, वार्षिक मूल्य	8.00 रु.
3.	इंडियन एजुकेशनल रिव्यू (अंग्रेजी), त्रैमासिक	एक प्रति 9 रुपये, वार्षिक मूल्य	34.00 रु.
4.	जरनल आफ इडियन एजुकेशन (अंग्रेजी), द्विमासिक	एक प्रति 4 रुपये, वार्षिक मूल्य	22.00 रु.
5.	स्कूल साइस (अंग्रेजी), त्रैमासिक	एक प्रति 4 रुपये, वार्षिक मूल्य	16 00 रु
6.	द प्राइमरी टीचर (अंग्रेजी), त्रैमासिक	एक प्रति 2 रुपये, वार्षिक मूल्य	8.00 रु.

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली–110016 के लिए सचिव द्वारा प्रकाशित तथा अरावली प्रिटर्स एंड पब्लिशर्स प्रा लि, ओखला फेज़–II. नई दिल्ली–110020

रजि नं. 32427/76